समरहिल
ए.एस. नील
हिन्दी रूपान्तर पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

समरहिल का विचार

यह एक आधुनिक स्कूल समरहिल की कहानी है।

समरहिल 1921 में स्थापित हुआ। इंग्लैंड के सफोल्क क्षेत्र के लाइस्टन गांव में लंदन से तकरीबन सौ मील दूर यह स्कूल स्थित है।

समरहिल के छात्र-छात्राओं के बारे में कुछ बता दिया जाए। कुछ बच्चे हमारे स्कूल में पांच साल की उम्र में आए तो कुछ पंद्रह साल के हो जाने पर। लगभग सभी बच्चे सोलह साल की उम्र तक स्कूल में रहे। सामान्य रूप से हमारे पास हर सत्र में करीब पच्चीस लड़के और बीस लड़कियां रहीं।

बच्चे आयु के अनुसार तीन समूहों में बांटे गए थे। सबसे छोटे बच्चों के समूह में पांच से सात साल के, बीच वाले समूह में आठ से दस साल के और बड़े बच्चों के समूह में ग्यारह से पंद्रह वर्ष के बच्चे थे।

समरहिल में शिक्षार्थियों में अक्सर कुछ विदेशी छात्र-छात्राएं भी होते थे। 1960 में पांच बच्चे स्कैन्डिनेविया के, एक हॉलेण्ड, एक जर्मनी और एक अमरीका का था।

बच्चे आयु के अनुसार समूहों में हाउस मदर के साथ रहा करते थे। बीच की उम्र के बच्चे पत्थर के बने एक भवन में रहते और बड़े बच्चे झोपड़ियों में। बड़े बच्चों में एक-दो ही ऐसे थे जिनके अपने कमरे थे। शेष लड़के एक कमरे में दो, तीन या चार की संख्या में एक साथ रहते थे। लड़कियां भी ऐसे ही रहती थीं। बच्चों के कमरों का निरीक्षण नहीं किया जाता था। उन्हें कमरों की हालत पर कोई टोकता नहीं था। उन्हें मुक्त छोड़ा जाता था। वे क्या पहनें, यह भी उन्हें कोई नहीं बताता था वे अपनी मर्जी के हिसाब से तैयार होते थे।

अखबारों में कई बार समरहिल के बारे में लिखा जाता कि यह 'मनमर्जी का स्कूल है।' ऐसा लिखते समय वे यह जताना देना चाहते थे कि यह जंगली लोगों का एक समूह है। जिसमें न कोई कायदा-कानून है, न शिष्टाचार। इसलिए समरहिल की कहानी, पूरी ईमानदारी के साथ बयान करना मुझे ज़रूरी लगता है। ज़ाहिर है कि मैं जो कुछ लिखूंगा उसमें पूर्वाग्रह होंगे। फिर भी कोशिश यह रहेगी कि मैं उसकी खूबियों के साथ उसकी तमाम कमियां भी बताऊं। इसकी खूबियां स्वस्थ और मुक्त बच्चों की होंगी जो भय और घृणा से विकृत न हो।

ज़ाहिर है कि जो स्कूल सक्रिय बच्चों को मेज़ों पर बैठाकर दिन भी निरर्थक विषय पढ़ाते हैं वे बेमानी है। ऐसे स्कूल केवल उनके लिए अच्छे हो सकते हैं जिनका स्कूलों में विश्वास है। अरचनात्मक नागरिक जो ऐसे रचनाहीन और आज्ञाकारी बच्चे चाहते हैं जो एक ऐसी सभ्यता का हिस्सा बन सकें जहां सफलता का एक ही मानक होगा - पैसा।

समरहिल एक प्रयोग के रूप में प्रारंभ हुआ। पर बाद में महज प्रयोग नहीं रह गया। बल्कि एक प्रदर्शन स्कूल में तब्दील हुआ। इसलिए क्योंकि समरहिल यह दर्शा सका कि आज़ादी सच में कारगर है।

जब मैंने और मेरी पहली पत्नी ने यह स्कूल शुरू किया उस वक्त हमारे मन में एक मुख्य विचार था। हमारी कोशिश यह थी कि बच्चों को स्कूल के अनुरूप ढालने के बदले स्कूल को बच्चों के अनुरूप बनाएं। वहां बच्चे 'फिट' न किए जाएं, स्कूल ही उनको 'फिट' हो।

मैंने बरसों सामान्य स्कूलों में अध्यापन किया था। मैं उस तरीके को बखूबी जानता था। यह भी कि वह तरीका गलत है। गलत इसलिए क्योंकि वह वयस्कों की इस धारणा पर आधारित है कि बच्चा कैसा होना चाहिए, उसे कैसे सीखना चाहिए। यह धारणा उस युग में पनपी थी जब मनोविज्ञान जन्मा ही नहीं था।

हम एक ऐसा स्कूल बनाने में जुटे जहां बच्चों को, जैसे वे दरअसल हैं, वैसे बने रहने की आज़ादी हो। यह कर पाने के लिए हमने हर तरह का अनुशासन, हर तरह का निर्देशन, सुझाव देना, नैतिक और धार्मिक उपदेश देने का मोह त्यागा। कई बार कहा गया कि हम बड़े साहसी हैं। पर सच पूछें तो ऐसा करने के लिए साहस की ज़रूरत न थी। ज़रूरत बस एक ही चीज की थी जो हमारे पास पर्याप्त रूप में मौजूद थी। ज़रूरत थी इस तथ्य में विश्वास की कि बच्चा दुष्ट नहीं अच्छा होता है। चालीस वर्षों के अनुभव में बच्चों की अच्छाई में हमारा विश्वास कभी नहीं डिगा, बल्कि उसने पुख्ता हो 'अंतिम आस्था' का रूप ले लिया है।

मेरी दृष्टि में बच्चा स्वाभाविक रूप से विवेकशील और यथार्थवादी होता है। अगर उसे वयस्कों के सुझावों के बिना अपने भरोसे छोड़ा जाए तो जिस सीमा तक विकसित होना उसके लिए संभव है, वह होता है। इसी तर्क से प्रेरित हो समरहिल वह जगह बनी जहां जो बच्चे स्वाभाविक रूप से विद्वान बनने की क्षमता रखते हों वे विद्वान बनें, पर जो महज इस लायक हों कि वे सिर्फ सड़कें साफ कर सकते हों, वे

वहीं करें। वैसे अब तक कोई सड़क सफाईकर्मी हमारे यहां बना नहीं है। यह बात मैं दंभ से नहीं कह रहा। मैं सच में मानता हूं कि मैं एक मनोरोगी विद्वान के बदले एक खुश मिजाज सफाईकर्मी ही बनना पसंद करूंगा।

समरहिल भला कैसी जगह है? एक बात तो यह है कि यहां कक्षाओं में जाना ज़रूरी नहीं, ऐच्छिक है। बच्चे चाहे तो जाएं, न चाहें तो सालों-साल तक न जाएं। एक टाइमटेबल ज़रूर है, पर वह सिर्फ शिक्षकों के लिए है।

कक्षाएं अमूनन आयु के हिसाब से लगती हैं, पर यदाकदा बच्चों की रुचि के हिसाब से भी लगती हैं। पढ़ाने के हमारे तरीके नए नहीं हैं, क्योंकि हमारा मानना है कि महज पढ़ाने का खास महत्व नहीं है। किसी स्कूल में विलंबित भाग पढ़ाने का एक खास तरीका है यह बात केवल उनके लिए अर्थ रखती है जो विलंबित भाग सीखना चाहते हैं। पर सच्चाई यह है कि जो बच्चा विलंबित भाग सीखना चाहता है वह उसे ज़रूर सीख लेगा चाहे उसे किसी भी तरीके से वह सिखाया जाए।

जो बच्चे शिशु कक्षा से, समरहिल में आते हैं वे शुरू से ही कक्षाओं में जाते हैं। पर जो बच्चे दूसरे स्कूलों से आते हैं वे कभी भी उबाऊ कक्षाओं में नहीं बैठने का संकल्प लेकर आते हैं। वे खेलते हैं, साइकिल चलाते हैं, दूसरों के रास्तें में अटकते हैं, पर कक्षाओं में जाने से बचते हैं। कई बार यह स्थिति महीनों तक बनी रहती है। उन्हें इस स्थिति से उबरने में जो समय लगता है, वह पिछले स्कूल में कक्षाओं के प्रति जन्मी घृणा के अनुपात में होता है। हमारे पास एक बच्ची एक कॉन्वेंट से आई थी। वह पूरे तीन साल तक मस्ती करती रही। सामान्यत: बच्चों को अभ्यस्त होने में करीब तीन महीने लगते हैं।

आज़ादी के विचार से जो लोग अपरिचित हैं वे सोच रहे होंगे कि वह पागलखाना कैसा होगा जहां बच्चे जी में आए तो दिन भर खेल सकते हैं। कई वयस्क यह भी कहेंगे कि ''अगर मुझे ऐसे किसी स्कूल में भेजा जाता तो मैं वहां कुछ भी नहीं करता।'' दूसरे लोग कहते हैं, ''ऐसे बच्चों को जब उन बच्चों के साथ स्पर्धा करनी होगी, जिन्हें सीखने की आदत डालनी पड़ी है तो वे स्वयं को अपंग पाएंगे।''

मुझे जैक की बात याद आती है जो सत्रह साल की उम्र में एक इंजीनियरिंग फैक्ट्री में यहां से गया था। एक दिन उसे उसके प्रबंध निदेशक ने बुलाया।

''तुम समरहिल के छात्र हो ना,'' उन्होंने पूछा, ''मैं यह जानना चाहता हूं कि अब तुम अपनी शिक्षा के बारे में क्या सोचते हो। क्योंकि अब तुम्हें दूसरे स्कूलों के छात्र से मिलने का मौका मिला है। अगर तुम्हें फिर से चुनने का मौका मिले तो तुम कहां पढ़ना चाहोगे, ईटन या समरहिल में? वहां ऐसा क्या मिलता है जो दूसरे स्कूलों में न मिले?''

जैक ने अपना सिर खुजलाया और धीरे से कहा ''मुझे पता नहीं।'' तब जोड़ा ''मुझे लगता है कि समरहिल पूर्ण आत्मविश्वास की भावना जगाता है।''

''हे भगवान!'' जैक हंसा ''अगर मैंने आपको यह आभास दिया हो, तो मुझे माफ कीजिएगा।

''नहीं यह बात तो मुझे अच्छी लगी''' निदेशक महोदय बोले ''अक्सर जब मैं किसी को अपने दफ्तर में बुलाता हूं तो वे बेहद बेचैन और असहज लगते हैं। तुम ऐसे घुसे मानों मेरे बराबर के व्यक्ति हो। अच्छा तुम किस विभाग में तबादला चाहते थे, वह तो बता दो।''

यह घटना दर्शाती है कि सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण। जैक विश्वविद्यालय की परिक्षा में फेल हो गया था। इसलिए क्योंकि उसे किताब पढ़ाई से नफरत थी। पर विद्वानों के लेखों और फ्रेंच भाषा के ज्ञान के अभाव ने उसे जीवन भर के लिए अपंग नहीं बना दिया। वह आज एक सफल इंजिनियर है। इसके बावजूद समरहिल में बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं। संभव है कि हमारे बारह वर्षीय छात्र-छात्राएं अपनी उम्र के दूसरे बच्चों की शायद सुलेख, वर्तनी या भिन्न के हिसाब में स्पर्धा नहीं कर पाएं। पर अगर कोई ऐसी परीक्षा हो जिसमें मौलिकता की ज़रूरत हो तो हमारे बच्चे दूसरों को पछाड़ सकते हैं।

हमारे स्कूल में कक्षा परीक्षाएं नहीं होती थीं। पर मैं कभी मज़े के लिए प्रश्नपत्र बना देता था। एक ऐसी ही परीक्षा की बानगी देखें -

ये कहां हैं : मैड्रिड, थर्सडे द्वीप, बीता हुआ कल, प्रेम, लोकतंत्र, घृणा, मेरा जेबी स्क्रूड्राईवर (मुझे अफसोस है कि इस अंतिम सवाल का कोई ऐसा जवाब न मिला, जो उसे वापस पाने में मेरी मदद करता)।

निम्न शब्दों का अर्थ लिखो : (शब्द के आगे लिखी गई संख्या अपेक्षित उत्तरों की संख्या बताती है-

हाथ (हैण्ड) 3, केवल दो ही बच्चों ने तीसरा अर्थ लिखा जो एक घोड़े को नापने का मानक है। पीतल (ब्रास 4) - धातु, ढिठाई, सेना का आला अफसर और ऑक्रस्ट्रा का एक हिस्सा। हैमलेट के 'टू बी और नॉट टू बी ' संवाद का समरहिल भाषा में अनुवाद करो।

ज़ाहिर है कि ये सवाल गंभीरता से नही पूछे गए थे और बच्चों को इनके जवाब लिखने में खूब-खूब मज़ा आया। नए आए बच्चों के जवाब देने का स्तर उन बच्चों का सा नहीं था जो यहां के वातावरण से वाकिफ हो चुके हों। इसलिए नहीं कि उनमें अक्ल नहीं है। बल्कि इसलिए क्योंकि सवालों के गंभीर जवाब देते-देते हल्का-फुल्का रहने का तरीका उन्हें परेशान करता है।

हमारे शिक्षण का यह एक विनोदी पक्ष है। वैसे सभी कक्षाओं में काफी काम होता है। अगर किसी कारण से कोई शिक्षक/शिक्षिका तयशुदा दिन पर अपनी कक्षा नहीं ले पाती तो छात्र-छात्राओं को बहुत बुरा लगता है।

नौ वर्षीय डेविड को कूकर-खांसी हो गई और उसे दूसरों से अलग रखना पड़ा। वह ज़ार ज़ार रोया। ''मैं रोजर की भूगोल की कक्षा में नहीं जा पाऊंगा।'' डेविड प्राय: अपने जन्म के समय से ही समरहिल में था। पाठों की उपयोगिता पर उसके स्पष्ट विचार थे। डेविड आज लंदन विश्वविद्यालय में गणित का व्याख्याता है।

कुछ साल पहले स्कूल की एक सामान्य बैठक में (जिसमें स्कूल के सभी नियम तय किए जाते हैं और प्रत्येक छात्रा-छात्र व शिक्षक का एक-एक मत होता है) यह तय किया गया कि कुछ खास तरह के नियम तोड़ने वालों को सप्ताह भर तक कक्षाओं से बाहर रखा जाए। बच्चों ने इस सुझाव का विरोध किया। उनका कहना था कि यह सज़ा बहुत कठोर है।

मेरे सहशिक्षकों और मुझे परीक्षाओं से घृणा है। हमारी नज़र में विश्वविद्यालय की परीक्षाएं अभिशाप हैं। पर हम उनमें पूछे जाने वाले

आवश्यक विषय पढ़ाने से मना नहीं कर सकते। ज़ाहिर है कि जब तक परीक्षाओं का अस्तित्व है हम उसके गुलाम हैं। इसलिए सहरहिल के सभी शिक्षक मानक शिक्षण की योग्यता रखते हैं।

अधिकांश बच्चे ये परीक्षाएं देना चाहते हैं। केवल वे बच्चे ही ये परीक्षाएं देते हैं जो विश्वविद्यालय में दाखिला चाहते हैं। उन्हें ये परीक्षाएं खास कठिन नहीं लगतीं। अमूमन वे चौदह साल की उम्र में पूरी गंभीरता से काम शुरू करते हैं। तकरीबन तीन साल तक इनकी तैयारी करते हैं। पहली कोशिश में इनमें उत्तीर्ण भी नहीं होते। पर जो महत्वपूर्ण है वह यह कि वे हताश न हो, फिर से कोशिश भी करते है।

समरहिल शायद दुनिया का सबसे खुश स्कूल है। यहां बच्चे नागा नहीं करते। उन्हें घर की याद नहीं सताती। बिरले ही लड़ाइयां होती हैं। हां उनकी आपसी तकरारें ज़रूर होती हैं। पर हम जब बच्चे थे उस समय हमारी जैसी लड़ाइयां होती थीं वैसी यहां कम होती हैं। मैं बच्चों को रोते नहीं सुनता, क्योंकि उनके मनमें उतनी नफरत नहीं होती जितनी दबाए गए बच्चों में होती है। घृणा से घृणा जन्मती है और प्यार से प्यारं प्यार का मतलब है बच्चों को समर्थन देना। यह किसी भी स्कूल के लिए ज़रूरी है। अगर आप उन्हें सज़ा देते हैं उन पर चीखते-चिल्लाते हैं, तो आप बच्चों के पक्ष में नहीं हैं। समरहिल एक ऐसा स्कूल है जहां बच्चे जानते हैं कि उनका पक्ष लिया जाता है।

हम इंसानी कमज़ोरियों से ऊपर नहीं हैं। एक बसन्त का मौसम मैंने आलू बोते बिताया था। और मैंने पाया कि जून में किसी ने आठ पौधे उखाड़ फेंकें मैंने खूब शोर मचाया। पर मेरे शोर मचाने और किसी तानाशाह से शोर मचाने में फर्क है। मेरा शोर आलुओं के बारे में था। पर कोई तानाशाह इसमें नैतिकता का सवाल उठाता। वह सही या गलत की बात करता। मैंने यह नहीं कहा कि आलू के पौधे चुराना गलत काम था। मैंने इसे अच्छे या बुरे का मुद्दा नहीं बनाया। मैंने इसे 'मेरे पौधों' का मुद्दा बनाया। वे मेरे पौधे थे और उन्हें छेड़ा नहीं जाना चाहिए था। आशा है मैं यह अंतर साफ कर पा रहा हूं।

चलिए, बात दूसरी तरह से रखता हूं। मैं बच्चों के लिए कोई ऐसी सत्ता नहीं हूं जिससे डरा जाए। मैं ठीक उनके समान हूं। और अगर मैं अपने पौधों के लिए शोर मचाता हूं तो उसका उतना ही महत्व है जितना किसी लड़के का उस वक्त शोर मचाना जब कोई उसकी साइकिल का टायर पंचर कर दे। अगर आप बच्चे के समान हैं तो ऐसा करने में कोई खतरा नहीं है।

ज़रूर कुछ लोग कहेंगे ''यह सब बकवास है। समता यहां हो ही नहीं सकती। नील बॉस है, वह बड़ा है, बुद्धिमान है।'' यह बात भी सच है। ज़ाहिर है कि मैं ही बॉस हूं। अगर कहीं आग लगे तो बच्चे मेरे पास ही आएंगे। उन्हें पता है कि मैं बड़ा हूं ज्यादा जानता हूं। पर इस बात का उस स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता जब हम एक ही धरातल पर मिलते हैं। जैसे आलू के खेत में।

जब पांच साल के बिली ने मुझे कहा कि मैं उसके जन्मदिन की पार्टी से चला जाऊं क्योंकि मुझे बुलाया नहीं गया था तो मैं बिना हिचक चला आया। ठीक वैसे ही जैसे बिली मेरे कमरे से उस वक्त बाहर चला जाता है जब मुझे उसका साथ नहीं चाहिए होता। छात्र-छात्राओं और शिक्षकों के इस रिश्ते को समझाना शायद आसान नहीं। पर समरहिल आने वाला हरेक व्यक्ति यह समझता है कि यही रिश्ता, आदर्श रिश्ता है। मेरे सहशिक्षकों के दृष्टिकोण में भी यह झलकता है। रूड जो रसायन शास्त्र पढ़ाता है उसे उसके नाम डेरेक, से बुलाया जाता है। शेष शिक्षक-शिक्षिकाएं भी हैरी, अला और पैम हैं। मैं नील हूं और रसोईदारिन एस्थर।

समरहिल में सबके अधिकार समान हैं। मेरे पियानो तक आने की किसी को अनुमति नहीं है और मैं बिना अनुमति किसी बच्चे की साइकिल नहीं छू सकता। हमारी सामान्य बैठक में किसी छह साल की बच्ची के मत का वज़न उतना ही है जितना मेरे मत का।

पर ज्ञानीजन कहेंगे कि व्यावहारिक रूप में तो वयस्कों की आवाजों का ही महत्व रहता है। क्या छह साल की बच्ची अपना हाथ उठाने के पहले तब तक रुकती नहीं जब तक वह यह नहीं देख लेती कि तुम्हारा मत क्या है? काश वे सच में रुकते, मेरे तमाम सुझाव धराशायी होते रहते हैं। जो बच्चे आज़ाद होते हैं वे आसानी से प्रभावित नहीं होते। इसका कारण है भय का ना होना। और सच तो यह है कि भय का ना होना ही किसी बच्चे के लिए सबसे उम्दा चीज़ है।

हमारे बच्चे अपने शिक्षकों से नहीं डरते। हमारा एक नियम यह है कि रात दस बजे के बाद रिहाइशी भवन की पहली मंजिल में शांति रहेगी। एक रात करीब ग्यारह बजे तकियों से युद्ध छिड़ा हुआ था। मैं अपनी मेज़ से जहां मैं बैठा लिख रहा था शिकायत करने उठा। मैं जब ऊपर पहुंचा तो मैंने पाया कि गलियारा शांत और खाली है। अचानक एक आवाज आई ''अरे यह तो नील है।'' और फिर से मस्ती चालू हो गई। जब मैंने समझाया कि मैं नीचे एक किताब लिखने में जुटा हूं तो उन्होंने चिंता जताई और शोर न मचाने का वादा किया। वे छुपे इसलिए थे क्योंकि उन्हें यह शक हुआ था कि उनका सोने का समय जांचने वाले अफसर (जो उनमें से ही एक होता था) उनकी टोह लेने पहुंच गया है।

मैं वयस्कों का डर न होने पर बल देना चाहता हूं। एक नौ वर्षीय बच्चा आकर मुझे खुद बताता है कि उसकी बॉल से एक खिड़की टूट गई है। वह यह इसलिए बता सकता है क्योंकि उसे मेरे नाराज़गी या नैतिक आक्रोश का भय नहीं है। हो सकता है उसे खिड़की सुधारने की लागत देनी पड़ें पर उसे भाषण सुनने या सज़ा पाने का डर नहीं रहता।

कुछ साल पहले एक वह समय भी आया कि स्कूल की सरकार से सबने त्यागपत्र दे दिया और कोई भी चुनाव लड़ने को तैयार नहीं था। मैंने मौके का फायदा उठाकर एक नोटिस लगाया। ''सरकार की नामौजूदगी में मैं खुद को तानाशाह घोषित करता हूं। नील की जय हो।'' तुरंत फुसफुसाहटें शुरू हो गईं दोपहर में छह साल का विविएन मेरे पास आया और उसने कहा ''नील मुझसे व्यायामशाला की एक खिड़की टूट गई है।''

मैंने इशारे से उसे हटाते हुए कहा ''ऐसी छोटी-छोटी बातें लेकर मेरे पास न आया करो।'' वह लौट गया।

कुछ देर बात वह लौटा और बताने लगा कि दो खिड़कियां टूट गई हैं। मैंने जानना चाहा कि माज़रा क्या है। उसने कहा ''मुझे तानाशाह पसंद नहीं हैं और मुझे भूखे रहना भी पसंद नहीं है।'' मुझे बाद में पता चला कि तानाशाही का विरोध रसोईदारिन पर ज़ाहिर करने की कोशिश की गई थी। इस पर वह रसोई बंद कर घर भाग गई थी।

मैंने पूछा ''तो तुम इस बारे में क्या करने वाले हो?''

''और खिड़कियां तोड़ूंगा!'

''ठीक है, जारी रखो,'' मैंने कहा और उसने तोड़-फोड़ जारी रखी।

जब वह लौटा तो उसने बताया कि वह सत्रह खिड़कियां तोड़ चुका है। ''पर जान लो वह पूरी गंभीरता से बोला,' मैं हरेक की मरम्मत के पैसे चुकाऊंगा।

''कैसे?''

''अपने जेब खर्च से। चुकाने में कितना समय लगेगा?''

मैंने फटाफट हिसाब लगाया। ''लगभग दस साल'' मैंने कहा। एक मिनट को वह उदास हुआ, तब अचानक उसका चेहरा चमक उठा।'' वह बोला पर, मुझे सबके पैसे नहीं चुकाने होंगे।''

''पर निजी संपत्ति के नियम का क्या होगा?'' मैंने जानना चाहा। ''वे खिड़कियां मेरी निजी संपत्ति हैं।'' ''वह तो मैं जानता हूं, पर अब यह नियम कहां है? सरकार ही नहीं है। सरकार ही तो नियम बनाती है।''

मेरे चेहरे का हावभाव देख उसने जोड़ा ''फिर भी मैं सबके पैसे चुकाऊंगा।''

पर उसे पैसे नहीं देने पड़े। घटना के कुछ समय बाद मैं लंदन में भाषण दे रहा था। वहां मैंने इस घटना का जिक्र किया। भाषण खत्म होन पर एक नौजवान मेरे पास आया, मुझे एक पाउंड का नोट थमाते हुए बोला ''ये पैसे नन्हें शैतान की खिड़कियों के लिए हैं।'' इस घटना के दो साल बाद एक दिन विविएन, लोगों को खिड़कियां तोड़ने और उसके पैसे चुकाने वाले व्यक्ति के बारे में बताता रहा। ''वह आदमी बड़ा बेवकूफ ही होगा क्योंकि उसने मुझे देखा तक नहीं था।''

बच्चे अपरिचित लोगों से उस वक्त सहज ही संपर्क बना लेते हैं, जब उनमें अनजान चीजों का भय नही होता। जिस विख्यात ब्रिटिश आत्मसंयम की बात की जाती है, उसकी जड़ में दरअसल भय होता है। इसलिए वे लोग ही अधिक मितभाषी होते हैं जो बेहद धनी होते हैं। समरहिल के बच्चे अपरिचित आगंतुकों से जिस दोस्ताना अंदाज से मिलते हैं वह मेरे और मेरे सहशिक्षकों के लिए गर्व का विषय है।

पर मैं यह भी स्वीकारता हूं कि हमारे कई मेहमान हमारे बच्चों के लिए रोचक होते हैं। उन्हें जिसके आने की खुशी नहीं होती है वे हैं शिक्षक। खासतौर से संजीदा शिक्षक जो बच्चों के बनाए चित्रों और उनके लेखन को देखना चाहता है। वे उनकी खुलकर अगवानी करते हैं जो उन्हें यात्रा या साहसिक भ्रमण के बारे में बताते हैं। सबसे रोचक उन्हें लगता है हवाई जहाज उड़ाने की बातें सुनना। कोई मुक्केबाज या टेनिस खिलाड़ी भी तुरंत बच्चों से घिर जाता है। पर सिद्धान्त छांटने वालों से बच्चे, कोसों दूर भागते हैं।

मेहमानों की एक टिप्पणी सबसे ज्यादा दोहराई जाती है। वह यह कि उन्हें यह पता नहीं चल पाता कि शिक्षक कौन है, और छात्र कौन। यह सच है। एकात्मता की भावना वहां खूब मजबूत होती है जहां बच्चों को अनुमोदन मिलता है। शिक्षक के रूप में उसकी छवि पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। शिक्षक और छात्र एक साथ खाना खाते हैं और उन्हें एक से सामुदायिक नियमों का पालन करना पड़ता है। अगर शिक्षकों को कुछ खास सुविधाएं दी जाएं तो बच्चों को यह पसंद नहीं आता।

जब मैंने शिक्षकों के साथ हर सप्ताह मनोविज्ञान पर चर्चाएं शुरू कीं, तो बच्चों में यह बड़बडाहट शुरू हुई कि यह उचित नहीं है। मैंने योजना बदली और इन बैठकों को बारह साल से अधिक उम्र के सभी लोगों के लिए खोल दिया। हर मंगलवार को मेरा कमरा उत्सुक बच्चों से भरने लगा। वे न केवल सब कुछ ध्यान से सुनते, बल्कि अपना मत भी ज़ाहिर करते। बच्चों ने जिन विषयों पर चर्चाएं कीं वे थे: हीन भावना, चोरी का मनोविज्ञान, गुंडे का मनोविज्ञान, हास्य-विनोद का मनोविज्ञान, मनुष्य नैतिकवादी क्यों बना?, हस्तमैथुन, भीड़ का मनोविज्ञान। ज़ाहिर है कि ऐसे बच्चे जब बाहरी जीवन में उतरेंगे तो उन्हें अपने और दूसरों के बारे में बहुत कुछ पता होगा।

समरहिल में आने वाले मेहमान एक सवाल हमेशा पूछते हैं ''क्या बच्चे बाद में स्कूल को यह दोष नहीं देंगे कि स्कूल ने उन्हें गणित या संगीत क्यों नहीं सिखाया?'' इस सवाल का जवाब यह है कि बीथोविन या आइंस्टीन को उनके विषयों से कोई दूर नहीं रखा जा सकता।

बच्चे का काम है कि वह अपनी जिंदगी जिए, वह जिंदगी नहीं जो उसके आतुर माता-पिता सोचते हैं उसे जीनी चाहिए। ना ही वह जो कोई शिक्षाविद् श्रेष्ठतम मानता हो। वयस्कों की दखलंदाज़ी और उनके निर्देश मशीनी इंसानों की पीढ़ी ही तैयार कर सकती है।

आप बच्चों को संगीत या कोई दूसरा विषय नहीं सिखा सकते। ऐसा करने का अर्थ होगा उन्हें इच्छाशक्ति हीन वयस्कों में तब्दील करना। मतलब आप उन्हें यथास्थित स्वीकारने वाले ही बना पाएंगे। यह उस समाज के लिए तो बिल्कुल सही है जो ऐसे आज्ञाकारी नागरिक चाहता हो जो उबाऊ मेज़ों पर बैठें, जो दुकानों में खड़े हों, ठीक साढ़े आठ बजे की भूमिगत रेल पकड़ने वाले हों। संक्षेप में ऐसा समाज जो डरे हुए छोटे मानवों के कंधों पर टिका हो। मौत के डर से आतंकित लोगों के कंधों पर जो सिर्फ हां में हां मिलाना जानते हों।

समरहिल पर एक नज़र

समरहिल के एक सामान्य दिन का ब्यौरा देता हूं। नाश्ता सुबह सवा आठ से नौ बजे के बीज निबटता है। शिक्षक और बच्चे रसोई से अपना-अपना नाश्ता लेकर पास के भोजनागार में आते हैं। साढ़े नौ बजे जब पाठ शुरू होते हैं उसके पहले बच्चों को अपने बिस्तर आदि समेट लेने होते हैं।

हर सत्र की शरुआत में एक टाइमटेबल लगा दिया जाता है उसके अनुसार सोमवार का डेरेक प्रयोगशाला में पहला घंटा और मंगलवार को दूसरा घंटा पढ़ा सकता है। अंग्रेजी और गणित के लिए मेरा भी ऐसा ही टाइमटेबल है और मॉरिस का भूगोल और इतिहास के लिए। छोटे बच्चे (सात से नौ साल वाले) अमूमन अपने शिक्षक के साथ सुबह बिताते हैं। पर वे भी विज्ञान या कला के कमरे में जाते हैं।

किसी भी बच्चे को पाठों के लिए उपस्थित रहने पर बाध्य नहीं किया जाता। पर अगर जिमी सोमवार को अंग्रेजी की कक्षा में आने के बाद अगले सप्ताह शुक्रवार तक न आए, तो दूसरे बच्चे इसपर आपत्ति करते हैं। क्योंकि वह सबकी प्रगति को अटका देता है। वे उसे आगे

बढ़ने में बाधक मान अपने समूह से निकाल भी सकते हैं।

पाठ करीब एक बजे तक चलते हैं। पर छोटे बच्चे साढ़े बारह बजे खाना खा लेते हैं। खाना दो खेपों में होता है। शिक्षक और बड़े बच्चे डेढ़ बजे खाने बैठते हैं। दोपहर सबके लिए पूरी तरह खाली होती है। वे उस समय क्या करते हैं मुझे पता नहीं। मैं बागवानी करता हूं। उस वक्त कोई बच्चे मुझे नज़र नहीं आते। मुझे छोटे बच्चे डाकू-डाकू खेलते नज़र आते हैं। कुछ बड़े बच्चे मोटरों और रेडियो या चित्रकला में व्यस्त हो जाते हैं। मौसम अच्छा हो तो बड़े बच्चे खेलते हैं। कुछ वर्कशॉप में खुटपुट करते हैं। अपनी साइकिलें सुधारते हैं, नावें या बंदूके बनाते हैं।

शाम चार बजे चाय होती है। पांच बजे अन्य गतिविधियां शुरू होती हैं। बीच का समूह कला कक्ष में काम करना पसंद करता है, चित्रकारी, लिनोनियम से काट कर बनाई गई आकृतियां, चमड़े का काम, टोकरियां बनाना। मिट्टी के बर्तन वाले कक्ष में भी काफी व्यस्तता रहती है। दरअसल वहां सुबह और शाम काफी भीड़ रहती है। सबसे बड़े बच्चे पांच बजे बाद वहां काम करते हैं। लकड़ी और धातु कार्यशालाएं भी हर रात पूरी तरह भरी रहती हैं।

सोमवार की शाम बच्चे सिनेमा देखने जाते हैं। बृहस्पतिवार को फिल्म बदलती है। जिन बच्चों के पास पैसे होते हैं, वे उस रात फिर से जाते हैं।

मंगल की रात शिक्षक और बच्चे मनोविज्ञान पर मेरा भाषण सुनते हैं। उस समय छोटे बच्चों के पठन समूह चलते हैं। बुध की रात नृत्य संध्या होती है। एक बड़ी ढेरी से वे नृत्य संगीत के रिकार्ड चुनते हैं। बच्चे बेहद अच्छा नाचते हैं। हमारे मेहमानों में से कई ने टिप्पणी की है कि हमारे बच्चों के साथ नाचने पर उनमें हीन भावना जगती है। बृहस्पतिवार रात कुछ खास नहीं होता। बड़े बच्चे लाइस्टन या एल्डबर्ग जाकर फिल्म देखते हैं। शुक्रवार की रात खास तैयारी के लिए छोड़ा जाता है, जैसे किसी नाटक की तैयारीं

हस्तशिल्प का कोई तयशुदा टाइमटेबल नहीं है। लकड़ी के काम के कोई तयशुदा पाठ नहीं हैं। जो उनकी इच्छा हो वह बच्चे बनाते हैं अक्सर वे रिवॉल्वर या बंदूक, नाव या पतंग बनाना पसंद करते हैं। बारीक, पेचीदा जोड़ लगाना सीखने में उनकी रुचि नहीं है। बड़े बच्चे भी पेचीदा खातीगिरी पसंद नहीं करतें मेरे पंसदीदा शौक, पीतल के काम में भी अधिक बच्चे रुचि नहीं लेते। आखिर किसी पीतल के कटोरे के साथ कल्पना शक्ति की कितनी उडानें भरी जा सकती हैं? किसी भी खुशनुमा दिन आप समरहिल में लड़कों को डाकू-डाकू खेलते पाएंगे। वे हर कोने में छिपे किसी साहसिक कारनामे में जुटे मिलेंगे। पर आप लड़कियों को देखें वे भवन में अंदर या आसपास ही मिलेंगी, जहां वे वयस्कों से ज्यादा दूर न हों।

कला कक्ष अक्सर लड़कियों से भरा मिलेगा। वे चित्रकारी करती, या कपड़े से खूबसूरत चीजें बनातीं मिलेंगी। मुझे लगता है कि छोटे लड़के अधिक रचनात्मक होते हैं। कम से कम मैंने यह किसी छोटे बच्चे से नहीं सुना कि वह ऊब रहा है क्योंकि उसे यह समझ नहीं आ रहा कि वह क्या करे। पर यह मैं कभी-कभार लड़कियों को कहते सुनता हूं।

संभव है कि मुझे लड़के अधिक रचनाशील इसलिए लगते हों कि हमारा स्कूल लड़कों के लिए अधिक तैयार है। दस साल या उससे अधिक उम्र की लड़कियों की लोहे या लकड़ी की कार्यशाला में खास रुचि नहीं रहती। इंजनों से छेड़छाड़ करने की इच्छा उनमें नहीं होती। ना ही वे बिजली या रेडियो से आकर्षित होती हैं। उन्हें कलात्मक काम पसंद आता है। इसमें मिट्टी के बर्तन, लिनोलियम की आकृतियां, चित्रकारी, सिलाई शामिल है। पर कई लड़के और लड़कियां अपने नाटक खुद लिखते और निर्देशित करते हैं। उनके लिए वेशभूषा और सीनरी भी वे खुद ही बनाते हैं। सामान्यतौर पर कहा जा सकता है कि उनके अभिनय कौशल का स्तर काफी ऊंचा है। क्योंकि उनका अभिनय ईमानदार है दिखवा भर नहीं है।

लड़कियां भी रसायनशास्त्र की प्रयोगशालाओं में उतना ही जाती हैं जितना लड़के। वर्कशॉप ही वह जगह है जहां नौ साल से बड़ी लड़कियां जाना पसंद नहीं करतीं।

हां, स्कूल बैठकों में भी लड़कियां, लड़कों की तुलना में कम सक्रिय भागीदारी करती हैं। पर इसका कोई स्पष्ट कारण मेरे पास नहीं है।

कुछ साल पहले तक लड़कियां जब समरहिल आतीं थीं तो कुछ बड़ी होने पर ही आती थीं। कॉन्वेंट और बालिका शालाओं में फेल हुई बच्चियों की संख्या काफी होती थी। ऐसे किसी बच्चे को मैं मुक्त शिक्षा का सच्चा उदाहरण नहीं मानता जो देर से आएं। उनके माता-पिता आज़ादी को पसंद करने वाले निश्चित रूप से नहीं है। क्योंकि अगर ऐसा होता तो उनके बच्चे समस्या ग्रस्त बच्चे भी नहीं होते। पर जब समरहिल में ऐसे बच्चों को उसकी खास कमजोरी से उबार लिया जाता है तो माता-पिता उसे फट से किसी ''अच्छे स्कूल'' में दाखिला दिलवाने ले जाते हैं जहां वह ढंग से ''शिक्षित'' हो सके। पर पिछले कुछ समय से हमारे यहां पर उन परिवारों की लड़कियां भी आ रही हैं जो समरहिल में विश्वास करते हैं। ये बेहद अच्छी लड़कियां हैं। उत्साही, मौलिकता लिए और पहल करने वाली।

कई बार लड़कियां आर्थिक कारणों से भी हटा ली जाती हैं। यह तब भी होता है जब उनके भाई किसी बेहद खर्चीले निजी सकूल में बरकरार रहते हैं। परिवार में लड़कों को अधिक महत्व देने की परंपरा अभी भी मरी नहीं है। कुछ लड़कियों और लड़कों को इसलिए भी हटा लिया गया है क्योंकि माता-पिता के मन में स्वामित्व के भाव से उपजी जलन पैदा हो जाती है। उन्हें यह डर लगने लगता है कि उनके बच्चे घर के बदले स्कूल के प्रति वफादार बनने लगे हैं।

समरहिल को चलाना हमेशा से ही कुछ कठिन रहा है। ऐसे माता-पिता कम हैं जिनमें इतना धीरज या विश्वास हो कि अपने बच्चों को एक ऐसे स्कूल भेजें जहां पढ़ने के विकल्प के रूप में वे खेलें। वे यह सोच कर भी थर्राते हैं कि कहीं इक्कीस साल का होने के बाद भी उनका बेटा अपना गुजारा चलाने लायक नहीं कमा पाए।

आज जितने छात्र-छात्राएं समरहिल में हैं उनके माता-पिता उन्हें नियामक अनुशासन के बिना बढ़ने देना चाहते हैं। यह स्थिति हमारे लिए बेहद आनंद की है। क्योंकि पहले मेरे पास कट्टर माता-पिता के बच्चे आते थे जो समरहिल को आखिरी विकल्प मान, मजबूरी में ही अपने बच्चों को भेजते थे। उनकी, बच्चों की आज़ादी में कोई रुचि नहीं होती थी। मन ही मन वे हमें पागल ही समझते थे। ऐसे

कट्टरवादियों को कुछ भी समझा पाना मुश्किल था।

एक अमीर मां ने मुझसे घंटे भर सवाल किए और तब अपने पति की ओर मुड़ कर बोली ''मैं यह तय नहीं कर पा रही हूं कि मार्जरी को यहां भेजा जाए या नहीं।''

''आप फिक्र न करें '' मैंने तय कर लिया है कि हम आपकी बेटी को दाखिला नहीं देंगे।''

मुझे अपनी बात उन्हें समझानी पड़ी। आप आज़ादी में विश्वास नहीं करतीं। अगर मार्जरी यहां आई तो मुझे अपनी आधी उम्र आपको यह समझाने में गुजारने पड़ेगी कि आज़ादी का मतलब क्या है। पर आप फिर भी विश्वास नहीं करेंगी। मार्जरी के लिए इसके घातक परिणाम होंगे। उसके सामने लगातार यह सवाल होगा कि दरअसल सही कौन है? घर या स्कूल।

हमारे लिए आदर्श माता-पिता दरअसल वे हैं जो खुद आकर कहते हैं ''हमारे बच्चों के लिए समरहिल ही सही है। हमें उसे कहीं और नहीं भेजना है।''

जब हमने स्कूल खोला तो हमारे सामने गंभीर कठिनाइयां आईं। हम उस वक्त मध्य और उच्च वर्ग के बच्चों को ही दाखिला दे सके। क्योंकि हमें खर्चे पूरे करने थे। हमारे पीछे कोई धन्ना सेठ नहीं था। एकाध बार एक व्यक्ति ने अनाम रह हमें कठिनाइयों से उबारा। बाद में एक अभिभावक ने हमें कुछ बेहद उदार उपहार दिए। एक नई रसोई, रेडियो, हमारे कॉटेज में नया हिस्सा, एक नई वर्कशॉप। वे एक आदर्श दानदाता थे क्योंकि उन्होंने कोई शर्तें नहीं लगाईं, बदले में कुछ भी नहीं चाहा। ''समरहिल ने मेरे जिमी को वह शिक्षा दी जो मैं उसके लिए चाहता था।'' जेम्स शॉड बच्चों की आज़ादी में सच्चा विश्वास रखते थे।

पर सच में गरीब बच्चों को हम कभी दाखिल नहीं कर पाए। हमें इसका बेहद अफसोस है। क्योंकि इस कारण हमारा अध्ययन मध्यवर्गीय बच्चों तक सिमट गया। कई बाद बच्चों की सहज प्रकृति इसलिए नज़र नहीं आती क्योंकि वह पैसे और मंहगे कपड़ों के पीछे छुप जाती है। जब किसी लड़की को यह पता हो कि इक्कीस साल की उम्र में वह लखपति बनने वाली है तो उसकी बाल-प्रकृति का अध्ययन करना कठिन बन जाता है। हमारा सौभाग्य रहा कि समरहिल के वर्तमान और पूर्व छात्र-छात्राएं अपनी अमीरी से बिगड़े नहीं। उनमें से हरेक को यह पता रहा कि स्कूल से निकलने के बाद उन्हें अपनी रोजी-रोटी खुद कमानी है।

समरहिल में कुछ सेविकाएं है जो शहर से आती हैं। वे दिन भर काम करती हैं और रात को अपने घर लौटती हैं। वे नौजवान लड़कियां हैं जो खूब मेहनत करती हैं, अच्छा काम करती हैं। ऐसे वातावरण में जहां उन पर कोई हुक्म नहीं चलाता, वे अधिक मेहनत करती हैं, बेहतर काम करती हैं। वे हर अर्थ में बेहतरीन लड़कियां है। मुझे हमेशा इस बादे से शर्म आती रही कि उन्हें इसलिए इतनी कठोर मेहनत करनी पड़ती है क्योंकि वे गरीब हैं। और मेरे पास बिगड़ैल अमीरजादियां हैं, जिनमें अपना बिस्तर तक समेटने की उर्जा नहीं है। पर ईमानदारी इसी में है कि मैं यह बता दूं कि बिस्तर समेटना मुझे भी बेहद नापसंद था। मेरा बहाना हमेशा यह रहता कि मुझे ढेरों काम करने पड़ते हैं, पर बच्चे इससे संतुष्ट नहीं होते। वे मेरे इस उदाहरण तक का माखौल उड़ाते कि किसी सेना नायक से कूड़ा उठाने की उम्मीद तो नहीं रखी जा सकती है ना।

मैं कई बार कह चुका हूं कि समरहिल के वयस्क नैतिकता की मिसाल नहीं थे। हम भी दूसरों की तरह इंसान थे और कई बार हमारी इंसानी कमजोरियां हमारे सिद्धांतों के आड़े आती थीं। सामान्य घरों में अगर बच्चा एक प्लेट तोड़े तो मां या पिता शोर करते हैं। उस पल अचानक प्लेट बच्चे से अधिक महत्वपूर्ण बन उठती है। समरहिल में अगर कोई बच्चा या कोई परिचारिका प्लेटों की एक ढेरी गिरा देती हैं, तो मैं या मेरी पत्नी कुछ नहीं कहते। दुर्घटनाएं तो होती ही हैं। पर अगर कोई बच्चा एक किताब लेता है और उसे बरसात में बाहर छोड़ आता है तो मेरी पत्नी शोर करती है। इसलिए क्योंकि उसकी नज़र में किताबें महत्वपूर्ण है। पर मैं तटस्थ रहता हूं। मेरे लिए किताबों की इतनी अहमियत नहीं है। पर जब मैं एक छेनी टूटी पाता हूं और शोर करता हूं तो मेरी पत्नी को आश्चर्य होता है। मेरे लिए सभी औजार महत्वपूर्ण हैं, पर मेरी पत्नी के लिए नहीं।

समरहिल में हमें अपना पूरा समय देना पड़ता है। पर सच्चाई यह है कि बच्चों से कहीं ज्यादा मेहमान हमें थकाते हैं। संभव है कि पाने से देना कहीं बेहतर काम हो, पर वह बेहद थकाने वाला भी है।

शनिवार की रात स्कूल की आमसभा में बच्चों और व्यस्कों का टकराव उभरता है। यह स्वभाविक भी है। क्योंकि अगर आपका समुदाय मिश्रित उम्र के लोगों का है और वहां बच्चों के नाम पर अगर सभी लोग सब कुछ त्यागते जाएंगे तो बच्चे पूरी तरह बिगड़ैल बन जाएंगे। बैठक में हम बड़े शिकायत करते हैं कि बड़े बच्चों का झुंड सबके सो जाने के बाद इतना हंसाता है कि वे सो नहीं सकते। हैरी शिकायत करता है कि घंटे भर उसने बाहरी दरवाजे के लिए एक पैनल की योजना बनाई, तब खाना खाने गया। लौटने पर उसने पाया कि उसकी लकड़ी से बिली ने शैल्फ बना डाली है। मैं उन लड़कों की शिकायत करता हूं जो मुझसे सोल्डर करने के उपकरण मांग कर ले गए पर लौटाना भूल गए। मेरी पत्नी कहती है कि तीन छोटे बच्चे एक रात भूखे होने के कारण उससे डबलरोटी और जैम मांग कर ले गए। पर अगली सुबह डबलरोटी बाहर पड़ी मिली। पीटर दुखी होते हुए बताता है कि पॉटरी कक्ष में बच्चों के एक झुंड ने उसकी बेशकीमती चिकनी मिट्टी एक दूसरे पर फेंकी। वयस्कों के नजरिए और बच्चों में चेतना के अभाव के बीच लगातार खींचतान चलती रहती है। पर यह लड़ाई कभी व्यक्तियों के स्तर पर नहीं उतरती। किसी एक के प्रति कडुवाहट नहीं पैदा होती। यह टकराव समरहिल को हमेशा चौकन्ना बनाए रखता है। उसे जिंदा रखता है। साल भर कुछ न कुछ ज़रूर होता है। कोई दिन उबाऊ नहीं रहता।

सौभाग्य से हम शिक्षकों में स्वामित्व की भावना नहीं है। फिर भी मुझे मानना पड़ेगा कि जब मैं कोई मंहगा और खास रंग खरीद कर लाता हूं, और तब पाता हूं कि कोई लड़की उसे खाट को रंगने ले गई है, तो मुझे तकलीफ होती है। अपनी गाड़ी, अपने टाइपराइटर, अपने वर्कशॉप के औजारों के लेकर मेरे में निजता की भावना है। पर लोगों को लेकर नहीं। अगर आप लोगों के प्रति स्वामित्व भाव रखते हैं तो आपको स्कूल में नहीं पढ़ाना चाहिए।

समरहिल में सामग्री की टूट-फूट एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसे केवल भय द्वारा ही रोका जा सकता है। पर मानसिक शक्ति की

टूट-फूट किसी तरह रोकी नहीं जा सकती। बच्चे समय मांगते हैं, और वह उन्हें देना ही पड़ता है। दिन में पचासों बार मेरे कमरे का दरवाजा खुलता है और कोई बच्चा सवाल पूछता है: ''क्या आज फिल्म देखने की रात है?'' ''मुझे निजी पाठ क्यों नहीं दिए जाते?'' ''आपने पैम को देखा है?'' ''ईना कहां है?'' यह सब मेरे काम का हिस्सा है और मुझे उस समय इसका कोई दबाव भी महसूस नहीं होता। यद्यपि इसका मतलब यह है कि हमारी कोई निजी जिंदगी नहीं होती। इसका कारण यह भी है कि हमारा भवन स्कूल के लिए उपयुक्त नहीं है। यह मैं वयस्कों के नजरिए से कह रहा हूं। बच्चे हमेशा हमारे ऊपर रहते हैं। सत्र के खत्म होने तक मैं और मेरी पत्नी पूरी तरह पस्त हो जाते हैं।

समरहिल की एक खासियत यह भी है कि हमारे शिक्षक गुस्सा नहीं होते। यह शिक्षकों के साथ बच्चों के बारे में भी बहुत कुछ बताता है। सच में हमारे बच्चे बेहद अच्छे हैं। उनके साथ रहने में मजा आता है। नाराज होने के मौके कम आते हैं। अगर बच्चा खुद को पसंद करता है तो सामान्यत: वह नफरत से भरा नहीं होता। उसे किसी वयस्क को जानबूझ कर, उकसा कर नाराज करने में कोई मजा नहीं आता।

हमारी एक शिक्षिका आलोचना झेल नहीं पाती थीं। उन्हें लड़कियां बेहद सताती रहीं। वे दूसरे शिक्षकों को इसलिए नहीं चिढ़ा सकीं क्योंकि वे कोई प्रतिक्रिया ही नहीं करते थे। आप केवल उन लोगों को ही छेड़ सकते हैं जो अपने मान और प्रतिष्ठा की भावना से भरे हों।

क्या समरहिल के बच्चों में भी साधारण बच्चों की तरह आक्रामक भावनाएं दिखती हैं? सच्चाई यह है कि जिंदगी में अपनी राह बनाने के लिए हरेक बच्चे में कुछ आक्रामकता होना ज़रूरी है। पर आज़ादीहीन बच्चों में जो बढ़ी-चढ़ी आक्रामकता होती है वह उस नफरत के विरोध का नतीजा है उसकी ओर दिखाई जाती है। समरहिल में जहां किसी बच्चे को यह नहीं लगता कि वयस्क उससे घृणा करते हैं, आक्रामकता की ज़रूरत नहीं रहती। जो बच्चे हमारे यहां आक्रामक हैं वे इसलिए ऐसे हैं क्योंकि उन्हें घर में प्यार और समझ नहीं मिलती।

जब मैं एक ग्रामीण स्कूल का छात्र था तो तकरीबन हर सप्ताह ही कोई ऐसी घटना होती थी जिससे किसी की नाक से खून निकल आए। जो आक्रामकता लड़ाई पर आमदा कर दे वह नफरत ही तो है। जो बच्चे घृणा से भरे हैं, वे लड़ते ही हैं। जब बच्चों को घृणाहीन वातावरण मिलता है तो वे घृणा दर्शाना भी बंद कर देते हैं।

फ्रॉयड ने आक्रामकता पर जो बल दिया है वह घरों और स्कूलों की वास्तविकता के कारण ही दिया था। आप अगर कुत्तों के मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहें तो उसे जंजीरों से बांधे रखकर नहीं कर सकते। इसी तरह अगर आपको मानव मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर कुछ कहना हो आप पीढ़ियों की परिपाटियों के बंधनों में जकड़े मानव के आधार पर क्या कह सकेंगे? मैं समरहिल की आज़ादी के वातावरण में उतनी आक्रामकता नहीं पाता जितनी कठोर अनुशासन वाले स्कूलों में नज़र आती है।

समरहिल की आज़ादी का मतलब सहजबुद्धि को तिलांजलि देना नहीं है। यहां बच्चों की सुरक्षा की हर समय सावधानी बरती जाती है। बच्चे केवल उस समय तैर सकते हैं जब हर छह बच्चों पर एक रक्षक मौजूद हो। ग्यारह साल से कम उम्र का कोई बच्चा सड़कों पर अकेला साइकिल नहीं चला सकता। ये सारे नियम बच्चों की ओर से ही सुझाए जाते हैं और हमारी आमसभा में इन पर मतदान होता है।

पर पेड़ों पर चढ़ने के बारे में कोई नियम नहीं है। उन पर चढ़ना जीवन-शिक्षा का हिस्सा है। और फिर अगर उन सभी गतिविधियों को रोक दिया जाए जो खतरनाक हो सकती हैं तो बच्चे पूरी तरह से डरपोक न बन जाएं? परंतु छतों पर चढ़ने पर पाबंदी है। एयर-गन या दूसरे हथियारों, जिनसे कोई घायल हो सकता है, पर पाबंदी है। जब कभी लकड़ी से बनी तलवारों की झक चढ़ती है तो मुझे बेहद चिंता होती है। मैं तब इस बात पर बल देता हूं कि उन तलवारों की नोकों पर रबर या कपड़ा लगाया जाए। और जब यह झक उतरती है तो मुझे बेहद खुशी होती है। सच तो यह है कि सावधानी और चिंता में फर्क करना हमेशा आसान भी नहीं होता।

मेरे कभी पसंदीदा छात्र-छात्राएं नहीं रहे। ज़ाहिर है कि मुझे हमेशा ही कुछ बच्चे दूसरों से अधिक अच्छे लगते हैं, पर यह बात मैंने कभी उजागर नहीं की। शायद समरहिल की सफलता का एक राज यह है कि यहां सभी बच्चों से समान व्यवहार किया जाता है, सबको सम्मान दिया जाता है। स्कूल में छात्र-छात्राओं के प्रति अनावश्यक भावनात्मक दृष्टिकोण से मुझे डर लगता है। अपनी बत्तखों को हंस मान लेना या जो बच्चा रंगों से खिलवाड़ करे उसमें भावी पिकासो तलाशना बड़ा आसान भी तो है।

जितने भी स्कूलों में मैंने पढ़ाया है वहां शिक्षक-कक्ष षडयंत्र, घृणा और जलन से भरा नर्क था। हमारा शिक्षक-कक्ष एक खुशनुमा कमरा है। दूसरी जगहों पर नज़र आने वाला दुर्भाव यहां नामौजूद है। आज़ादी के वातावरण में वयस्कों को भी वही खुशी और सदभाव मिलता है। जो छात्र-छात्राओं को मिलता है। कई बार नए शिक्षकों की आज़ादी के प्रति वही प्रतिक्रिया होती है, जो बच्चों की होती है। वे बिना दाढ़ी बनाए घूमते हैं, सुबह अलसाते रह जाते हैं। यहां तक कि वे स्कूल के नियम भी तोड़ते हैं। सौभाग्य से अपनी कुंठाओं से निपटने में वयस्कों को बच्चों की तुलना में कम समय लगता है।

हर दूसरे इतवार को मैं छोटे बच्चों को उनके ही साहसिक कारनामों की कहानियां सुनाता हूं। यह मैं सालों-साल करता आया हूं। मैं उन्हें अफ्रीका के दुर्गम इलाकों में, समुद्र की गहराइयों में, बादलों के ऊपर ले गया हूं। कुछ समय पहले एक किस्से में मैं खुद को मार चुका हूं। समरहिल पर मगिन्स नाम के एक शख्स का कब्जा हो चुका है। उसने पढ़ाई को अनिवार्य बना दिया। अगर मुंह से चूं तक निकलती तो समरहिल की बच्चों को बेंत से ठोका जाता। मैंने बच्चों को चुपचाप मगिन्स का हुक्म बजाने की कल्पना की।

तीन से आठ साल के वे नन्हें मुझसे नाराज हो गए। ''कोई हुक्म नहीं माना हमने। हम सब तो भाग गए थे। हमने हथौड़े से मगिन्स को मार डाला। क्या सोच रखा है तुमने? हम भला उसे झेल सकते हैं?''

उन्हें तब चैन आया जब मैं वापस जिंदा हुआ और मगिन्स महोदय को दरवाजे के बाहर किया। कहानी सुनने वाले ज्यादातर वे बच्चे थे जिनका किसी कठोर स्कूल से परिचय तक न था। उनका गुस्सा स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। उन्हें समरहिल का अनुभव था, बल्कि इसलिए भी उनके पारिवारिक अनुभव में भी उनके मां-बाप उनके साथ थे।

एक अमरीकी मनोविज्ञान के प्रोफेसर ने हमारे स्कूल की आलोचना यह कहते हुए की कि यह एक द्वीप है और समुदाय के मुनासिब

नहीं है। अर्थात वह एक बड़ी सामाजिक इकाई का हिस्सा नहीं है। मेरा जवाब है अगर मैं किसी छोटे शहर में स्कूल खोलूं और उसे समुदाय का हिस्सा बनाना चाहूं तो क्या होगा? सौ अभिभावकों में कितने अभिभावक ऐसे होंगे जो पाठों में उपस्थित होने के बारे में बच्चों की मर्जी की बात मान सकेंगे? ऐसे में मुझे शुरू से ही अपनी आस्थाओं से समझौता करना पड़ेगा।

समरहिल यकीनन एक द्वीप है। क्योंकि यहां पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावक मीलों दूर बसे शहरों और कस्बों में या फिर विदेशों में रहते हैं। उन सबको लाइस्टन में इकट्ठा करना संभव नहीं है। सो समरहिल को लाइस्टन के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन का हिस्सा भी नहीं बनाया जा सकता।

यहां मैं यह ज़रूर जोड़ दूं कि लाइस्टन से हम कटे हुए नहीं हैं। स्थानीय लोगों से हमारा संपर्क है। हमारे आपसी रिश्ते दोस्ताना है। इसके बावजूद हम स्थानीय समुदाय का हिस्सा नहीं हैं। मुझे कभी यह ख्याल तक नहीं आएगा कि मैं स्थानीय अखबार के संपादक को कहूं कि वे मेरे पुराने छात्र-छात्राओं की सफलता की कहानियां छापें।

शहर के स्कूली बच्चों के साथ हम खेलते ज़रूर हैं पर हमारे शैक्षणिक लक्ष्य अलग-अलग हैं। धार्मिक आस्थाओं से जुड़ाव न होने के कारण हम शहर की किसी स्थानीय धार्मिक संस्था से भी नहीं जुड़े हैं। अगर समरहिल को हम स्थानीय समुदाय का हिस्सा बनाना चाहें तो हमें अपने छात्र-छात्राओं को धार्मिक शिक्षा देनी होगी।

मुझे लगता है कि हमारे अमरीकी मित्र को यह पता ही नहीं था कि उनकी आलोचना का दरअसल क्या अर्थ है। शायद वे कहना चाहते थे कि ''नील समाज विद्रोही है। उसकी शिक्षा पद्धति दुनिया को एक सामंजस्यपूर्ण इकाई में नहीं बदल सकेगी। बाल-मनोविज्ञान और उसके बारे में समाज की अज्ञानता, जीवन समर्थक और जीवन विरोधी तत्वों, स्कूल और घर के बीच जो फासले हैं उसे यह पद्धति पाट नहीं सकती।'' इसका जवाब यह है कि मैं कोई सक्रिय धर्मप्रचारक या समाज सुधारक नहीं हूं। मैं तो समाज को यह बताने की कोशिश ही कर सकता हूं कि वह अपनी जड़ों में जमी बैठी नफरत की भावना को, अपनी सज़ा को अपने रहस्यवाद को हटाए। मैं समाज के बारे में जो कुछ सोचता हूं वह मैं लिखता भी हूं। पर अगर मैं समाज सुधारने में जुड़ जाऊं तो मुझे एक सार्वजनिक खतरा मान कर खत्म कर डाला जाएगा।

समझौते मुझे नापसंद है, फिर भी मैंने समझौता किया है। क्योंकि मैं यह समझता हूं कि मेरा मुख्य काम समाज सुधारने का नहीं है, बल्कि कुछ बच्चों के जीवन को आनंददायक बनाने का है।

समरहिल की शिक्षा बनाम मानक शिक्षा

मेरा मानना है कि जीवन का लक्ष्य है आनंद हासिल करना। इसका अर्थ है अपनी वास्तविक रुचि को तलाश पाना। शिक्षा जीवन की तैयारी होनी चाहिए। हमारा समाज इस दिशा में बहुत सफल नहीं रहा है। हमारी शिक्षा, राजनीति और अर्थव्यवस्था युद्ध की ओर ले जाती हैं। हमारी औषधियों से रोग समाप्त नहीं हुआ है। हमारे धर्म ने सूदखोरी और चोरी खत्म नहीं की है। जिस मानवतावाद का हम इतना बखान करते हैं वह आज भी आम जनता को शिकार जैसे बर्बर खेल की स्वीकृति देता है। हमारी प्रगति दरअसल मशीनीकरण की दिशा में प्रगति है। वह प्रगति रेडियो, टी.वी., इलैक्ट्रोनिक्स और जेट विमानों की प्रगति है। आए दिन एक नए विश्व युद्ध का खतरा हमारे सिर पर मंडराता है। यह सब इसलिए होता है क्योंकि हमारी विश्व चेतना अभी भी आदिम है।

अगर आज हम सवाल उठाना चाहें तो कुछ अटपटे सवाल खड़े कर सकते हैं। हम पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों लगता है कि पशुओं की तुलना में, इंसानों में रोग अधिक होते हैं? आदमी लड़ाई के दौरान इतनी घृणा और हत्या क्यों करता है, जबकि पशु ऐसा नहीं करते? कैंसर का रोग बढ़ क्यों रहा है? आत्महत्या की वारदातें क्यों बढ़ती जा रही हैं? इतने वहशी यौन-अपराध क्यों होते हैं? यहूदियों के प्रति इतनी घृणा क्यों हैं? किसी हब्शी को, घृणा से उद्वेलित भीड़ क्यों मार डालती है? एक दूसरे के लिए कड़वी बातें, एक दूसरे की बुराई क्यों की जाती है? ऐसे धर्म जो अपना प्रेम, आशा और औदार्य खो चुके हैं आज भी क्यों प्रचलित हैं? ख्याति के उच्चतम शिखरों पर पहुंची हमारी सभ्यता को लेकर ऐसे सैकड़ों 'क्यों' हमारे सामने हैं।

लगातार मैं ये तमाम सवाल इसलिए उठा रहा हूं क्योंकि मेरा पेशा शिक्षक का है। ऐसा शिक्षक जिसका वास्ता किशोर किशोरियों से है। मैं ये सवाल इसलिए उठा रहा हूं क्योंकि अक्सर शिक्षक स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विषयों के संबंध में गैर-महत्वपूर्ण सवाल उठाते हैं। मैं पूछता हूं कि जीवन के स्वाभाविक लक्ष्य - व्यक्ति की आंतरिक शांति - के अहम सवाल की तुलना में फ्रेंच, प्राचीन इतिहास, या किसी भी विषय पर चर्चा का क्या अर्थ हो सकता है?

हमारी शिक्षा का कितना भाग वास्तविक रूप से कुछ करने या वास्तविक आत्म अभिव्यक्ति का है? हमारी हस्तकला का मतलब किसी विशेषज्ञ के निर्देशन में एक पिन ट्रे बनाना भर रह जाता है। निर्देशों के साथ खेल की विश्वविख्यात मॉन्सेरी पद्धति भी, कुछ करते हुए सीखने का एक निहायत कृत्रिम तरीका है। उसमें मुझे कुछ भी रचनात्मक नज़र नहीं आता है।

घर में बच्चे को हमेशा सिखाया जाता है। हरेक घर में एक ऐसा वयस्क ज़रूर होता है जो दरअसल ऐसे काम करता है। अगर नन्हीं दीवार पर टंगी कोई चीज देखना चाहें, तो हमेशा कोई न कोई उसे कुर्सी पर खड़ा कर देना वाला भी मौजूद होता है। जब जब हम टॉमी को उसके इंजन के बारे में बताते हैं तो दरअसल हम उससे जीवन का आनंद छीनते हैं। खोज का आनंद, एक बाधा पार करने का आनंद। और इतना भर ही नहीं हम उसे विश्वास दिलाते हैं कि वह बड़ा आश्रित है, हीन है। उसे दूसरों पर निर्भर होना चाहिए।

अभिभावक दरअसल यह बात बड़ी देर से समझते हैं कि स्कूल में सीखने-सीखाने का पक्ष कितना बेमानी है। वयस्कों की तरह बच्चे भी वही सीखते हैं जो वे दरअसल सीखना चाहते हैं। सारे इनाम, अंक और परीक्षाएं वास्तविक व्यक्तित्व विकास से बच्चे को बहुत दूर ले जाते हैं। केवल पंडिताऊ लोग ही यह दावा करते हैं कि किताबी शिक्षा, असल में शिक्षा है।

किताबें स्कूल का सबसे गैर-ज़रूरी उपकरण हैं। बच्चे को तीन चीजों की (पढ़ना, लिखना, हिसाब करना) ज़रूरत है। उसके बाद

केवल औजार, मिट्टी, खेल-कूद, नाटक, रंग और आज़ादी ही होनी चाहिए।

स्कूलों में किशोर-किशोरियां जितना काम करते हैं वह दरअसल ऊर्जा, समय और धीरज को जाया करता है। वह बच्चों से उसने खेलने का अधिकार छीनता है। किशोर कंधों पर बुढ़ापा लादता है।

मैं जब कभी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण ले रहे शिक्षार्थियों के भाषण देने जाता हूं तो निरर्थक ज्ञान से भरे इन शिक्षार्थियों में बड़प्पन की कमी देख भौचक्क रह जाता हूं। वे बहुत कुछ जानते हैं। उनकी अभिव्यक्ति अच्छी होती है। वे तमाम पोथों को उद्धत करते हैं। पर उनका नज़रिया शिशुओं का सा होता है। क्योंकि उन्हें 'हमेशा सिर्फ जानना सिखाया गया है' पर महसूस करना नहीं। उनका अंदाज दोस्ताना होता है, वे मनोहर और उत्साही होते हैं। फिर भी उनमें कुछ कमी सी लगती है। यह है भावनात्मकता की कमी। उनमें विचारों को अहसास के स्तर पर उतारने की क्षमता नहीं होती। मैं उन्हें उस दुनिया की बात बताता हूं जो उन्होंने कभी देखी तक नहीं है। उनकी पाठ्यपुस्तकों में मानव चरित्र का, या प्रेम का, आज़ादी का या तय करने की स्वतंत्रता का उल्लेख नहीं होता। यह परिपाटी यूं ही आगे चलती जाती है। किताबें ज्ञान के स्तरों को पा लेने के लक्ष्य की बैसाखियां हैं। पर वे दिल और दिमाग को लगातार अलग रखती हैं।

वह समय आ चुका है जब हम स्कूली काम की धारणा को चुनौती दें। अमूनन यह मान कर चला जाता है कि हरेक बच्चे को गणित, इतिहास, भूगोल, थोड़ा सा विज्ञान, कुछ कला और निश्चित रूप से साहित्य सीखना ज़रूरी है। पर वास्तव में एक औसत बच्चे की इन विषयों में कोई रुचि नहीं होती। यह समझ लेने का समय भी आ चुका है।

यह बात मैं हर नए छात्र, नई छात्रा के साथ सिद्ध करता हूं। जब उन्हें बताया जाता है कि समरहिल मुक्त शाला है। तो वे चीख कर कहते हैं ''हुर्रा। क्या बात है। मुझे आप गणित और दूसरी उबाऊ चीजें नहीं सिखाएंगे।''

मैं ज्ञान का माखौल नहीं उड़ा रहा। कह इतना भर रहा हूं कि पढ़ाई-लिखाई, खेल के बाद आनी चाहिए। और उसे जानबूझ कर खेल के साथ परोसा जाना चाहिए ताकि वह भी स्वादिष्ट लगे।

ज्ञान महत्वपूर्ण है, पर सबके लिए नहीं। निजिंस्की सेंट पीटर्सबर्ग में अपनी स्कूली परीक्षाएं पास नहीं कर सका। उसे परीक्षाएं पास किए बिना राजकीय बैले नृत्यशाला में दाखिला नहीं दिया गया। वह स्कूली विषय सीख ही नहीं सकता था, उसका ध्यान तो कहीं और था। उसकी जीवनकथा लेखक ने बताया है कि उसकी नकली परीक्षा ली गई। प्रश्नपत्र के साथ उसे सवालों के जवाब भी दिए गए। अगर निजिंस्की इन इम्तहानों में पास नहीं होता तो दुनिया को कितना भारी नुकसान होता।

जो रचनाकार होते हैं वे तो कुछ सीखना चाहते हैं वह सिर्फ इसलिए ताकि वे उन औजारों को हासिल कर सकें जो उनकी मौलिकता और प्रतिभा के लिए ज़रूरी है। हमें शायद इस बात का अंदाज ही नहीं है कि स्कूली कक्षाओं में सीखने पर बल देने पर कितनी रचनात्मकता कुचली जाती है।

मैंने एक लड़की को हर रात ज्यामिति को लेकर रोते देखा है। वह चाहती थी कि वह विश्वविद्यालय में दाखिला ले। पर इस लड़की की आत्मा कलाकार की थी। जब मैंने सुना कि वह बार-बार भी दाखिले की परीक्षा में असफल हो गई है, तो मुझे खुशी हुई। इसलिए कि शायद अब उसकी मां उसे रंगमंच में जाने देगी, जहां वह हमेशा से जाना चाहती थी।

कुछ समय पहले मुझे कॉपेनहैगन में एक चौदह साल की लड़की मिली जिसने तीन साल समरहिल में बिताए थे। यहां वह अंग्रेजी बोलती थी। मैंने पूछा, ''तो तुम अंग्रेजी में अपनी कक्षा में अव्वल रहती होगी।''

उसने मुंह बिगाड़ा, ''ना मैं सबसे नीचे हूं क्योंकि मुझे अंग्रेजी व्याकरण नहीं आता।'' वयस्क किसे शिक्षा समझते हैं, उस पर यह एक उम्दा टिप्पणी है।

ठीक-ठाक छात्र-छात्राएं अनुशासन के डंडे के जोर पर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों से किसी तरह निकल कर आखिर कल्पनाहीन शिक्षक, साधारण चिकित्सक, अदक्ष वकील ही तो बनते हैं। पूरी संभावना यह है कि वे शायद बेहतरीन मैकेनिक, चिनाई करने वाले या अच्छे पुलिस वाले बनते।

हमने पाया कि जो लड़का तकरीबन पंद्रह साल की उम्र तक ढंग से पढ़ना सीख नहीं पाता, या सीखना नहीं चाहता, उसका रुझान हमेशा मशीनों की ओर होता है। वह बाद में उम्दा इंजीनियर या बिजली मिस्त्री बनाता है। मैंने उन लड़कियों के बारे में ऐसा कोई सिद्धांत देने की हिम्मत नहीं कर सकता जो कक्षाओं में, खासकर गणित या भौतिकशास्त्र की कक्षाओं में, नहीं जातीं। अक्सर ये लड़कियां अपना ज्यादातर समय सिलाई-कढ़ाई में बिताती हैं। बाद में कपड़े बनाने या डिजाइन करने के काम से जुड़ती हैं। वह पाठ्यक्रम बेवकूफी भरा होगा जो इन बच्चियों को व चतुष्कोणीय समीकरण या बॉयल्स का सिद्धांत पढ़ता है।

कैल्डवेल कुक ने 'द प्ले वे' शीर्षक से एक किताब लिखी थी। पुस्तक में खेल-खेल में अंग्रेजी भाषा सिखाने की उनकी विधि बताई गई है। किताब बेहद सम्मोहक है। उसमें तमाम बेहतरीन चीजें हैं। फिर भी मुझे लगता है कि यह उसी सिद्धांत पर बल देती है कि सीखना सबसे महत्वपूर्ण है। कुक का मानना था कि सीखना इतना ज़रूरी है कि इस कड़वी दवा को खेल को चीनी से लपेट कर दिया जाना चाहिए। यह धारणा कि 'अगर बच्चा कुछ सीख नहीं रहा तो वह अपना समय बर्बाद कर रहा है' एक भारी अभिशाप है। यह अभिशाप हजारों शिक्षकों और अधिकांश स्कूल निरीक्षकों को अंधा बना देता है। पचास साल पहले का नारा था ''करते हुए सीखो।'' आज का नारा है ''खेल-खेल में सीखो।'' यहां भी खेल एक लक्ष्य तक पहुंचने का माध्यम भर है। पर वह लक्ष्य क्या है यह मुझे अब तक समझ नहीं आया।

अगर शिक्षक बच्चों को मिट्टी में खेलता पाता है। और उस पल को और यादगार पल बनाने के उद्देश्य से वह उन्हें नदी तट में भूझरण की बात बताने लगता है तो उसका उद्देश्य क्या होता है? कई शिक्षाविदों का विश्वास है कि बच्चा क्या सीखता है दरअसल इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ज़रूरी दरअसल सिर्फ इतना भर है कि उन्हें कुछ न कुछ सिखाया जाए। और स्कूलों में सिखाना अपने आप में सबसे

काम महत्वपूर्ण है?

जब शिक्षकों को भाषण देता हूं तो अपनी बात यह कहकर शुरू करता हूं कि मैं पढ़ाए जाने वाले विषयों, अनुशासन या कक्षाओं पर कुछ नहीं बोलूंगा। तकरीबन एक घंटे तक श्रोतागण पूरे ध्यान से मुझे सुनते हैं। ईमानदारी से तालियां बजाते हैं, तब अध्यक्ष प्रश्नोत्तर सत्र की घोषणा करते हैं। तब पाता हूं कि तीन-चौथाई सवाल विषयों और पढ़ने के तौर-तरीकों से जुड़े हैं।

यह बात मैं दंभ से नहीं कर रहा। मैं दुख के साथ कहता हूं कि कक्षाओं की दीवालें और जेलनुमा स्कूल भवन शिक्षकों के नजरिए को कितना संकुचित कर देते हैं। शिक्षा के वास्तविक तत्वों को वे देख तक नहीं पाते। शिक्षक का समूचा काम बच्चे के गरदन से ऊपर वाले हिस्से के साथ होता है। ऐसे में बच्चे का भावनात्मक पक्ष जो उसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है, शिक्षक के लिए अनजाना रह जाता है।

मेरी तमन्ना है कि मैं युवा शिक्षकों में एक व्यापक आंदोलन देख सकूं। उच्च शिक्षा और विश्वविद्यालयों की डिग्रियां दरअसल सामाजिक बुराइयों का सामना कर पाने की क्षमता में रत्ती भर असर नहीं करतीं। एक पढ़े-लिखे मनोरोगी और अशिक्षित मनोरोगी में कोई फर्क नहीं है।

सभी देशों में, फिर चाहे वे पूंजीवादी, समाजवादी या साम्यवादी हों, बच्चों को शिक्षित करने के लिए भारी भरकम योजनाएं बनाता है, स्कूल खोले जाते हैं। ये उम्दा प्रयोगशालाएं और कार्यशालाएं किसी जॉन, पीटर या ईवान को पहुंची भावनात्मक ठेस को दूर करने में कतई मददगार नहीं होतीं? भावनात्मक क्षति बच्चे के अभिभावक, शिक्षक और हमारी सभ्यता के दमनकारी रूप के कारण बालक पर लगातार दबाव डाने से पहुंचती है।

समरहिल से निकले बच्चों की क्या स्थिति रहती है

भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में बसा डर उनके बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह भय इस इच्छा के रूप में झलकता है कि उनका बेटा/बेटी उनसे कहीं ज्यादा पढ़े। इस तरह का कोई पिता अपने बेटे को अपनी रफ्तार से पढ़ना-लिखना सीखने नहीं देता। उसे डर रहता है कि अगर उसने दबाव नहीं बनाया तो विली असफल हो जाएगा। ऐसे माता-पिता अपने बच्चों को उनकी गति से बढ़ने नहीं देते। वे सवाल करते हैं कि अगर मेरे बेटे या बेटी ने बारह साल की उम्र तक पढ़ना नहीं सीखा है तो जीवन में सफल होने की उसकी क्या संभावना है? अगर अठारह साल की उम्र में वह कॉलेज दाखिले का इम्तहान नहीं पास कर सकता तो एक अकुशल नौकरी के अलावा वह क्या करेगा? पर मैंने इंजतार करना, धीरज रखना सीखा है। बच्चा अपनी रफ्तार से आगे बढ़े या रुका रहे, मुझे कोई शक नहीं कि अगर उसे छेड़ा न जाए, उसे तोड़ा न जाए तो वह अपने जीवन में ज़रूर सफल रहेगा।

मेरे विरोधी कहेंगे ''वाह! एक ट्रक ड्राइवर बनने को भला क्या जीवन में सफल होना कहा जा सकता है?'' सफलता का मेरा अपना मानदंड है, खुशी-खुशी काम करने और सकारात्मक जीवन जी पाने की क्षमता। और इस परिभाषा से चलें तो समरहिल के अधिकांश छात्र-छात्राएं जीवन में सफल ही होते हैं।

टॉम पांच साल की उम्र में समरहिल आया। सत्तरह साल का हुआ तब उसने स्कूल छोड़ा। इस दौरान वह एक भी कक्षा में, एक भी पाठ के लिए नहीं गया। उसने ज्यादातर समय वर्कशाप में कुछ न कुछ बनाते बिताया उसके माता-पिता उसके भविष्य की कल्पना कर थर्राते थे। उसने कभी पढ़ना-लिखना सीखने की इच्छा तक नहीं दर्शाई। जब वह तकरीबन नौ साल का था, मैंने उसे एक रात बिस्तर पर पसरे 'डेविड कॉपरफील्ड' पढ़ते पाया।

''हलो!'' मैंने कहा ''भई तुम्हें पढ़ना किसने सिखाया?''

''मैंने ही खुदको सिखाया!''

कुछ साल बाद वह मेरे पस यह पूछने आया आधा और एक बटा पांच कैसे जोड़ते हैं? ''मैंने उसे बता दिया। मैंने पूछा कि वह भिन्नों के बारे में कुछ और जानना चाहता है? तो उसका कहना था ''नहीं, धन्यवाद!''

स्कूल से निकलने के बाद उसे एक फिल्म स्टूडियो में कैमरा बॉय की नौकरी मिली। जब वह काम सीख ही रहा था कि मुझे उसके बॉस से एक डिनर पार्टी में मुलाकात करने का मौका मिला। मैंने जानना चाहा कि टॉम का काम कैसा चल रहा है।

''अब तक जितने लड़के आए, उन सबसे बढ़िया,''उन्होंने बताया। ''वह चलता नहीं दौड़ता है। पर सप्ताह अंत में वह सिरदर्द बन जाता है। शनिवार हो या इतवार वह स्टूडियो से दूर रहता ही नहीं!''

एक लड़का था जैक, जो पढ़ना-लिखना सीख नहीं पा रहा था। उसे कोई सिखा भी नहीं सकता था। जब वह खुद पठन कक्षा का आग्रह करता तो भी नहीं। कोई अंदरूनी बाधा थी जो उसे बी और पी, एल और के अक्षरों का अंतर समझने नहीं देती थी। सत्रह साल की उम्र में बिना पढ़ना सीखे वह स्कूल से निकला।

जैक आज औजार बनाने में उस्ताद है। उसे धातुकर्म की बात करना बेहद पसंद है। वह मशीनों के बारे में लेख पढ़ता है। कभी-कभार मनोविज्ञान से संबंधित लेख भी पढ़ता है। मुझे नहीं लगता कि उसने कभी एक उपन्यास तक पढ़ा होता। वह व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध अंग्रेजी बोलता है, और उसका सामान्य ज्ञान विलक्षण है। एक अमरीकी मेहमान जो उसकी कहानी नहीं जानते थे, ने उससे मिलने पर टिप्पणी की ''यह लड़का बड़ा चतुर है।''

सामने प्यारी सी लड़की थी। वह कक्षाओं में खास रुचि नहीं लेती थी। विद्वता के प्रति उसका रूझान नहीं था। सोलह साल की उम्र में कोई भी विद्यालय निरीक्षक उसे पढ़ाई-लिखाई में कमजोर लड़की का दर्जा देते। डायाने आज लंदन में एक भिन्न तरह की पाक कर्ता के प्रदर्शन देती है। वह अपने काम में बेहद कुशल है। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह बहुत खुश है।

एक फर्म की मांग थी कि उसमें काम करने वाले सभी लोग कम से कम कॉलेज दाखिले की परीक्षा पास कर चुके हों। मैंने उसे रॉबर्ट के बारे में खत लिखा। ''इस लड़के ने कोई परीक्षा पास नहीं की है। उसका रूझान विद्वता की ओर नहीं है, पर उसमें साहस है।'' रॉबर्ट को नौकरी मिल सकी।

विनफर्ड तेरह साल की नई छात्रा है। उसने मुझे बताया कि उसे सभी विषयों से नफरत है। जब उसे पता चला कि वह जो चाहे कर सकती है, तो वह खुशी से चीख पड़ी।'' तुम्हारी इच्छा न हो तो तुम्हें स्कूल जाने की भी ज़रूरत नहीं है,'' मैंने कहा।

उसने तय किया कि वह मस्ती काटेगी। यह उसने कुछ सप्ताह किया। मैंने देखा कि इसके बाद वह ऊबने लगी।

''मुझे कुछ तो सिखाओ'' उसने एक दिन मुझसे कहा, ''मैं बेहद बोर हो रही हूं।''

''ठीक है,'' मैंने खुशी से कहा ''तुम क्या सीखना चाहोगी?''

''पता नहीं'' उसका जवाब था।''

''मुझे भी पता नहीं'' मैंने कहा, और चल दिया।

महीनों बीत गए। तब वह फिर से आई। ''मैं कॉलेज में दाखिले की परीक्षा पास करना चाहती हूं। मुझे आप पढ़ाएं ,'' वह बोली।

हर सुबह वह मेरे और दूसरे शिक्षकों के साथ काम करने लगी। खूब मेहनत की। उसने बताया कि उसे विषयों में खास मजा नहीं आ रहा था। पर अपने लक्ष्य में उसकी रुचि थी। विनिफ्रेड स्वयं अपने लक्ष्य को तलाश पाई क्योंकि उसे यह अनुमति मिली कि वह जैसी है वैसी बनी रहे।

मजे की बात यह है कि मुक्त बालक-बालिकाएं गणित पसंद करने लगते हैं। इतिहास और भूगोल में आनंद पाते हैं वे विभिन्न विषयों में से उन विषयों को छांट पाते हैं जो उन्हें रोचक लगे। मुक्त बच्चे अपना ज्यादातर समय अपनी दूसरी अभिरुचियों में बिताते हैं। वे लकड़ी या धातु का काम करने, चित्रकारी करने, कहानियां-उपन्यास पढ़ने अभिनय करने या अपनी कल्पनाओं को खेल में बदलने, जैज-संगीत के रिकॉर्ड बजाने में अपना समय बिताते हैं।

आठ साल का टॉम हमेशा मेरा दरवाजा खोलता और पूछता ''मुझे अब क्या करना चाहिए?'' पर उसे कोई यह नहीं बताता कि वह क्या करे।

छह महीने बाद अगर आप टॉम को तलाशते हुए उसके कमरे में जाते तो उसे कागजों के समुन्दर में डूबा पाते। वह घंटो नक्शे बनाने में गुजारता। एक बार विएना विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर साहब ने बताया ''मैंने उसके लड़के से भूगोल पर सवाल पूछने चाहे। वह ऐसी जगहों की बात कर रहा था जिनके नाम तक मैंने नहीं सुने हैं।''

पर मुझे हमारी असफलताओं के बारे में भी बताना है। बारबेल नामक पंद्रह वर्षीया स्वीडिश लड़की हमारे पास साल भर रही। उसे इस दौरान कोई ऐसा काम नहीं मिला जो उसे रोचक लगा हो। दरअसल वह बहुत देर से समरहिल आई। तकरीबन दस साल से उसकी शिक्षिकाएं उसके लिए निर्णय लेती रहीं थीं। समरहिल आने तक उसकी पहल करने की ताकत खो चुकी थी। वह ऊब गई। सौभाग्य इतना भर था कि वह अमीर परिवार की थी सो आराम की जिंदगी काट सकती थी।

हमारे यहां यूगोस्लाविया से आई दो बहनें थीं। एक ग्यारह और दूसरी चौदह साल की। उनकी रुचि बांधने में स्कूल असफल रहा। उन्होंने अपना ज्यादातर समय क्रोएशियन भाषा में मेरी आलोचना करने में लगाया। मेरे एक क्रूर मित्र हमेशा टिप्पणियों का अनुवाद कर मुझे बताते। इस स्थिति में सफलता हाथ लगती तो चमत्कार ही होता। हमारे बीच एक ही समान भाषा थी। वह थी कला और संगीत की। जब उनकी मां उन्हें वापस लेने आई तो मुझे बेहद खुशी हुई।

हमने सालों के अनुभव से पाया कि जो लड़के इंजिनियरिंग के क्षेत्र में जाते हैं, वे मैट्रिक के इम्तहान की परवाह नहीं करते। वे सीधे ही व्यावहारिक प्रशिक्षण केन्द्रों में जाना पसंद करते हैं। डेरिक डॉक्टर बनना चाहता था, पर उसके पिता आर्थिक कारणों से उसे उस वक्त पढ़ा नहीं सकते थे। उसने सोचा कि वह बीच का समय दुनिया देखने में बिताएगा। वह लंदन के बंदरगाह पर गया। दो दिन उसने नौकरी तलाशने में बिताए। उसे कोई भी नौकरी मंजूर थी। जहाज की भट्टी में कोयला झोंकने वाले की भी। उसे बताया गया कि वैसे ही सैकड़ों प्रशिक्षित नाविक बेरोजगार हैं। वह काफी उदास हो घर लौटा।

कुछ ही दिनों में उसे उसके किसी साथी ने बताया कि स्पेन में रहने वाली एक अंग्रेज महिला को ड्राइवर चाहिए। डैरिक ने मौका लपक लिया और स्पेन चला गया। वहां उसने महिला का मकान बनाने और उसकी मरम्मत करने में मदद की। उसे यूरोप भी घुमाया और तब आगे की पढ़ाई करने लौटा। महिला ने उसकी फीस में सहायता करने का निर्णय लिया। दो साल बाद उस महिला ने आग्रह किया कि वह साल भर छुट्टी ले और उसके साथ केन्या जाए। वहां भी उसका मकान बनवा दे। डेरिक ने अपनी पढ़ाई केन्या के केपटाउन में पूरी की।

लैरी हमारे पास बारह साल की उम्र में आया, विश्वविद्यालय में दाखिले की परीक्षा देकर सोलह साल में निकला और तब ताहिती में फलों की खेती करने चला गया। उसने पाया कि इस काम में कमाई कम है तो उसने टैक्सी चलानी शुरू की। बाद में वह न्यूजीलैंड गया। वहां उसने तमाम काम किए, टैक्सी भी चलाई। तब ब्रिसबेन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। उस विश्वविद्यालय के डीन जब मिलने आए तो उन्होंने लैरी की तारीफ की। ''जब छुट्टियां हो गई और हमारे सब छात्र घर चले गए तो लैरी एक लकड़ी काटने की मिल में मजदूरी करने चला गया।'' आज लैरी एसेक्स में डॉक्टर है।

समरहिल के ऐसे भी पूर्व छात्र हैं जिन्होंने कोई पहल नहीं दर्शाई है। ज़ाहिर कारणों से मैं उनके बारे में लिख नहीं सकता। जहां-जहां हम सफल हुए हैं उन बच्चों की पृष्ठभूमि में अच्छे घर थे। डैरिक, जैक और लैरी के माता-पिता की स्कूल के साथ हमदर्दी थी। इसलिए इन लड़कों को थकाने वाला द्वन्द नहीं झेलना पड़ा। द्वन्द यह कि दरअसल सही कौन है- स्कूल या घर?

क्या समरहिल में कोई 'जीनियस' हुआ है? नहीं, अब तक नहीं। कुछ रचनाकर हैं, जो अब तक विख्यात नहीं हुए हैं। कुछ उम्दा कलाकार हैं। कुछ अच्छे संगीतज्ञ हैं। सफल लेखक हुआ हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। बेहद अच्छे फर्नीचर डिजाइनर और खाती हुए हैं। कुछ अभिनेत्रियां और अभिनेता। कुछ वैज्ञानिक और गणितज्ञ, जो भविष्य में मौलिक काम कर सकते हैं। मुझे लगता है कि हमारी संख्या के अनुपात में - जो एक साल में तकरीबन पैंतालीस छात्र-छात्राओं की रहती है - काफी छात्र-छात्राएं रचनात्मक और मौलिक कामों से जुड़े हैं।

पर मैं हमेशा कहता हूं कि आज़ाद बच्चों की एक पीढ़ी कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकती। समरहिल में भी बच्चों के मन में अपराध बोध घर कर जाता है। उन्हें लगता है कि वे दरअसल पढ़ाई नहीं कर रहे हैं। जिस दुनिया में परीक्षाएं ही किसी व्यवसाय का दरवाजा हों वहां यह स्वाभाविक ही है। और फिर बच्चें के ज़रूर कोई ऐसे अंकल-आंटी भी होते ही हैं जो कहते हैं ''क्या? ग्यारह साल की उम्र में आकर भी तुम ठीक से पढ़ नहीं पाते हो?'' बच्चों में इस बात की अस्पष्ट सी समझ बनने लगती है कि बाहर का पूरा वातावरण खेल विरोधी और काम के पक्ष में है।

सामान्य रूप से कहें तो मुक्त शिक्षा की विधि बारह साल से कम उम्र के बच्चों के लिए अमूमन सफल रहती है। पर बारह साल से बड़े बच्चों को जोर-जबरदस्ती परोसी गई शिक्षा से उबरने में काफी लंबा समय लगता है।

समरहिल में निजी सत्र

पहले मेरा काम कक्षा में पढ़ाना नहीं बल्कि बच्चों को निजी स्तर पर पढ़ाना था। अधिकांश बच्चों को मनोवैज्ञानिक ध्यान की भी ज़रूरत थी। पर अक्सर कुछ बच्चे ऐसे होते थे जो दूसरे स्कूलों से आते थे। आज़ादी से अभ्यस्त होने की प्रक्रिया को तेज बनाने के लिए ''निजी सत्र'' ज़रूरी होते थे। अगर बच्चा अंदर से पूरी तरह बंधा हो तो वह आज़ाद होने की स्थिति से समझौता नहीं कर पाता।

निजी सत्र दरअसल, अलाव के पास बैठकर खुली बातचीत के सत्र होते थे। मेरे मुंह में पाइप होता था, और अगर बच्चा सिगरेट पीने का आदी हो तो वह भी सिगरेट पी सकता था। सिगरेट अक्सर वातावरण की औपचारिकता को तोड़ने में मदद करती थी।

एक बार मैंने एक चौदह वर्षीय लड़के को बातचीत के लिए बुलाया। वह एक निजी स्कूल से समरहिल आया ही आया था। मैंने देखा कि उसकी उंगलियां सिगरेट से पीली पड़ी थीं। सो मैंने अपनी सिगरेट का पैकेट निकाला और उसे सिगरेट लेने को कहा ''धन्यवाद'' वह हकलाते हुए बोला, ''मैं सिगरेट नहीं पीता, सर!''

''झूठे कहीं के एक सिगरेट उठा लो'' मैंने मुस्कराते हुए कहा। और उसने सिगरेट ली। मैं एक ही ढेले से दो शिकार कर रहा था। मेरे सामने एक ऐसा लड़का था जिसके लिए हेडमास्टर का मतलब था एक कठोर, नैतिक अनुशासन लागू करने वाला व्यक्ति, जिससे हर बार झूठ बोलने की ज़रूरत पड़ती है। उसे झूठा कह मैं खुद उसके स्तर पर उतर रहा था। साथ ही सत्ता के प्रति उसके नजरिए पर भी चोट कर रहा था। काश उस पहले साक्षात्कार के समय उसके चेहरे के हावभाव की मैं फोटो ले पाता।

उसे उसके पिछले स्कूल से चोरी के इल्जाम के कारण निकाल दिया गया था। ''सुना है तुम कुछ उचक्के से हो'' मैंने कहा। बताओ तो रेल कंपनी को ठगने के लिए तुम्हारे पास सबसे अच्छी तरकीब कौन सी है?'' ''मैंने कभी रेल कंपनी को ठगने की कोशिश नहीं की है, सर।'' ''ओहो,'' मैंने कहा, ''कैसे चलेगा। तुम्हें कोशिश तो करनी चाहिए। मुझे तो कई तरीके पता है।'' मैंने उसे कुछ तरीके बताए। वह मुंह बाए रह गया। उसे लगा वह ज़रूर किसी पागलखाने में आ पहुंचा है। स्कूल का प्रिंसिपल उसे बेहतर चोर बनने के गुर सिखा रहा है? सालों बाद उसने बताया कि वह साक्षात्कार उसके जीवन का सबसे बड़ा धक्का था।

ऐसे निजी सत्रों की ज़रूरत कैसे बच्चों को होती है? सबसे अच्छा जवाब कुछ उदाहरणों से मिल सकेगा। शिशु कक्षा की शिक्षिका लूसी मेरे पास आकर कहने लगी कि पैगी बड़ी दुखी और असामाजिक लगती है। मैंने कहा, उसे मेरे पास निजी सत्र के लिए भेजना। पैगी मेरी बैठक में आई।

''मुझे कोई सत्र-वत्र नहीं चाहिए'' वहां बैठते हुए बोली। ''वे बड़े बेवकूफी भरे होते हैं।'' ''बिल्कुल ठीक,'' मैंने हां में हां मिलायी। ''इसमें समय बर्बाद ही होता है। हम कोई पाठ-वाठ नहीं करेंगे।''

उसने बात पर कुछ विचार किया। तब धीरे से बोली, ''अगर छोटा सा हो तो मुझे कोई ऐतराज नहीं होगा।'' इस बीच वह मेरी गोद में बैठ गई। मैंने उसकी मां और पिता के बारे में और खासकर उसके छोटे भाई के बारे में पूछा। उसने बताया कि उसका भाई बिल्कुल गधा है।

''ज़रूर होगा'' मैंने सहमति जताई। ''क्या तुम्हें लगता है मां उसे तुमसे ज्यादा चाहती है?''

''वह दोनों को बराबर चाहती है,'' उसने जल्दी से कहा, पर साथ ही जोड़ा ''कम से कम वह कहती तो यही है।''

कई बार बच्चे किसी दूसरे बच्चे से झगड़े के कारण भी दुखी हो जाते हैं। पर ज्यादातर घर से आई चिट्ठी ही परेशानी का कारण बनती है। खासकर जब चिट्ठी में जब यह लिखा कि किसी भाई या बहन को नई गुड़िया या साइकिल मिली है। हमारा सत्र खत्म हुआ और पैगी बाहर निकलते समय खुश नज़र आई।

हर नए बच्चे के साथ बात इतनी आसान नहीं होती। एक बार एक ग्यारह साल का बच्चा आया जिसे यह बताया गया कि डाक्टर बच्चे को दुनिया में लाते हैं। उस बच्चे को झूठ और भय से उबारने में काफी मेहनत करनी पड़ी। क्योंकि ऐसे बच्चे अपराध-बोध के तले दबे होते हैं।

अधिकांश छोटे बच्चों को नियमित सत्रों की ज़रूरत नहीं पड़ती। आदर्श स्थिति जिसमें नियमित रूप से निजी पाठ दिए जाएं, वह होती है जब बच्चा स्वयं उसकी मांग करे। कुछ बच्चे इसकी मांग करते भी हैं। पर छोटे विरले ही ऐसा करते हैं।

सिल्विया के पिता सख्त मिजाज के थे। वे कभी उसकी तारीफ नहीं करते थे। बल्कि हमेशा उसकी आलोचना करते उसके पीछे पड़े रहते। उसके जीवन की एक ही तमन्ना थी कि वह अपने पिता का प्यार पा सके। अपनी कहानी बताते वह खूब रोई। ज़ाहिर था कि बेटी के मनोविश्लेषण से पिता का व्यवहार तो नहीं बदला। सिल्विया जब तक बड़ी हो घर से दूर न चली जाती उसकी स्थिति बदलने वाली न थी। मैंने उसे चेताया कि कहीं वह अपने पिता से बच निकलने के चक्कर में किसी गलत व्यक्ति से विवाह न कर ले।

''कैसे गलत व्यक्ति से?'' उसने जानना चाहा।

''जो तुम्हारे पिता जैसा हो, जो तुम्हें मानसिक यातना देना चाहता हो।''

सिल्विया की दुखद कहानी थी। समरहिल में वह सबसे मिलती-जुलती थी। उसका व्यवहार दोस्ताना था, वह किसी को आहत नहीं करती थी पर घर पर उसे शैतान कहा जाता था। ज़ाहिर है कि मनोविश्लेषण की दरकार बेटी को नहीं पिता को थी।

एक और केस था। नन्हीं फ्लोरेन्स का जिसका कोई समाधान नहीं था। वह एक अवैध संतान थी, पर उसे इस बात का पता नहीं था। मेरा अनुभव बताता है कि हरेक अवैध बच्चे को अवचेतन रूप से यह पता होता है कि वह अवैध है। फ्लोरेन्स निश्चित रूप से यह जानती थी कि उसके पीछे कोई रहस्य ज़रूर है। मैंने उसके मां को सुझाया कि उसकी बेटी में घृणा और दुख खत्म करने का एक ही इलाज है कि उसे सच बताया जाए।

''ना, मेरी हिम्मत नहीं होगी नील। मुझे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पर अगर मैं उसे बता दूं तो वह बात अपने तक नहीं रख पाएगी। और मेरी मां उसका नाम अपनी वसीयत से काट देगी।''

मुझे डर है कि फ्लोरेन्स की मदद करने के लिए हमें तब तक इंतजार करना होगा जब तक नानी जी स्वर्ग न सिधारें। जब तक उससे सच्चाई छुपाई जाएगी कुछ नहीं हो सकेगा।

हमारा एक पुराना छात्र बीस बरस का होने पर वापस आया और उसने कुछ निजी पाठ चाहें।

''पर जब तुम यहां थे, उस दौरान हम दर्जनों बार मिल चुके हैं।''

''जानता हूं'' उसने कुछ उदासी से कहा, ''पर उन दर्जनों बार मैंने कोई परवाह न की थी, पर मुझे अब लगता है कि मुझे उसकी ज़रूरत है।''

आजकल मैं नियमित थेरेपी नहीं देता। सामान्य बच्चों को जब जन्म और प्रजनन के जवाब मिल जाते हैं। जब वे यह समझने लगते हैं कि परिवारिक परिस्थितियां किस प्रकार घृणा और जलन को पैदा करती है तो आगे करने को कुछ खास नहीं रह जाता। बच्चों का इलाज यही है कि उसकी भावनाओं को निर्बाध निकलने दिया जाए। बच्चों को मनोचिकित्सा के सिद्धान्त बताने में या उसे यह कहने से कि तुम्हारे मन में फलां ग्रन्थि है कोई फायदा नहीं होता।

मुझे एक पन्द्रह साल की बच्चे की याद आती है। जिसकी मैंने मदद करनी चाही थी। वह हफ्तों तक मेरे पास आता रहा और एक शब्द में जवाब देता रहा। मैंने अगले सत्र के दौरान रुख पलटा और कहा, ''मैं तुम्हें आज बताऊंगा कि मैं तुम्हारे बारे में क्या सोचता हूं। तुम आलसी, बेवकूफ, अभिमानी और द्वेष से भरे हो।''

''मैं ऐसा हूं?'' उसने गुस्से से लाल होकर पूछा ''और आप खुद को क्या समझते हैं? उस पल के बाद वह सहज हो गया और उसके लिए मतलब की बात करना आसान बन गया।

एक ग्यारह साल का लड़का था जार्ज। उसके पिता ग्लैसगो के पास के एक गांव में छोटे व्यापारी थे। बच्चे के चिकित्सक ने उसे मेरे पास भेजा। उसकी समस्या थी मन में गहरा पैठा डर। उसे घर से दूर गांव के स्कूल तक जाने में डर लगता था। घर से निकलना हो तो वह डर से चीखने-चिल्लाने लगता। बड़ी परेशानी के साथ उसके पिता उसे समरहिल ला पाए। वह खूब रोया और पिता से लिपट गया ताकि वे घर न लौटें। मैंने उसके पिता को सुझाया कि वे कुछ दिन रुकें।

उसके चिकित्सक ने मुझे उसका इतिहास भेज दिया था। उनकी टिप्पणियां मुझे सही और उपयोगी लगीं। पिता के घर लौटने का सवाल हमारे सामने था। मैंने जॉर्ज से बात करने की कोशिश की, पर वह बिलखता रहा कि वह घर लौटना चाहता है। ''यह तो जेल है,'' उसने सुबकते हुए कहा। मैं उसके आंसुओं की परवाह किए बिना बात करता चला।

''जब तुम चार साल के थे, तब तुम्हारे भाई को अस्पताल ले जाया गया था। वह वहां से ताबूत में बंद लौटा था (जार्ज और सुबकने लगा)। तुम्हें घर से निकलने में यही डर सताता है कि कहीं तुम्हें भी कुछ हो जाएगा और तुम ताबूत में बंद लौटोगे। पर दरअसल बात यह नहीं है जॉर्ज। तुमने अपने भाई को मार डाला था।''

उसने बात को जोरदार विरोध किया, मुझे लतियाने की कोशिश की।

''तुमने उसे सच में नहीं मारा था, पर तुम्हें लगता था कि उसे तुम्हारी मां का ज्यादा प्यार मिलता है। इसलिए तुम अक्सर इच्छा करते थे कि वह मर जाए। जब वह सच में मर गया तो तुम्हारे मन में अपराध बोध बैठ गया। तुम्हें लगा कि तुम्हारे चाहने से ही उसकी मौत हो गई। और अब तुम्हें लगता है कि तुम घर से दूर जाओगे तो तुम्हें भगवान सज़ा देने के लिए मार डालेगा।'' उसका सुबकना थम गया। अगले दिन थोड़े नाटक के बाद उसने अपने पिता को लौटने दिया।

कुछ समय तक जॉर्ज को घर की याद सताती रही। पर अगली कड़ी यह थी कि अठारह महीने बाद जब वह छुट्टियों में घर लौटा तो उसने अकेले यात्रा की। लंदन पहुंच कर खुद स्टेशन बदला और तब घर गया। समरहिल लौटते समय भी उसने ठीक वही किया।

मुझे अब यह और भी यही लगने लगा है कि उपचार की ज़रूरत बच्चों को उस वक्त नहीं होती जब वे आज़ादी के वातावरण में अपनी मनोग्रंथियों क्रमशः खोल सकें। पर जॉर्ज जैसे मामले में केवल आज़ादी से काम नहीं चलता।

पहले मैंने चोरों के साथ भी ऐसे सत्र किए हैं उसका परिणाम देखा है। पर ऐसा भी हुआ है कि कुछ चोरी करने वाले बच्चों ने इन

सत्रों के लिए आने से इंकार किया है। फिर भी तीनेक साल आज़ादी की हवा में सांस लेने के बाद उनकी चोरी की आदत छूट गई।

समरहिल में दरअसल प्रेम ही इलाज करता है। बच्चों को यहां समर्पन मिलता है और स्वयं के प्रति ईमानदार बने रहने की आज़ादी भी। हमारे पैंतालीस बच्चों में चंद ही ऐसे हैं जिन्हें निजी सत्रों की दरकार पड़ती है। मेरा यह विश्वास दिनों दिन बढ़ रहा है कि रचनात्मक कार्य द्वारा इलाज किया जा सकता है। चाहता हूं कि बच्चे ज्यादा से ज्यादा हाथ का काम, नाटक और नृत्य आदि करें।

मैं सभी बच्चों के लिए पिता का प्रतीक हूं जो स्वाभाविक भी है। और मेरी पत्नी मां का। सामाजिक रूप से मेरी पत्नी को मां के प्रति लड़कियों के अवचेतन में पली नफरत झेलनी पड़ती है, जबकि मुझे उनका प्रेम मिलता है। लड़के मेरी पत्नी को अपनी मां का सा प्यार देते हैं। और मुझे मिलता है उनका आक्रोश।

पर लड़के अपना आक्रोश उतनी आसानी से ज़ाहिर नहीं करते जितनी आसानी से लड़कियां करती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि लड़के अपना गुस्सा चीजों पर निकाल लेते हैं। एक नाराज लड़का गेंद को लतियाता है जबकि गुस्से से भरी लड़की किसी मां प्रतीक को अपशब्द कहती है।

फिर भी सच्चाई यह है कि एक खास समय ही है जब लड़कियों को झेलना सच में मुश्किल होता है। वह है किशोरावस्था के पहले का समय पर किशोरावस्था का पहला वर्ष सभी लड़कियां इस चरण से गुजरें यह ज़रूरी भी नहीं है। यह सब उनके पिछले स्कूल के अनुभव और खासकर सत्ता के प्रति उनकी मां के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

निजी सत्रों के दौरान मैं घर और स्कूल के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं के बीच रिश्तों की ओर संकेत करता था। अपनी आलोचना को मैं पिता की आलोचना होने की बात बताता। मेरी पत्नी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को मैं मां के विरुद्ध आरोप दर्शाता था। मैं इस विश्लेषण को वस्तुगत स्तर तक रखता क्योंकि आत्मगत गहराइयों तक उतरना बच्चों के लिए अनुचित होता।

ज़ाहिर है कि ऐसे कुछ मौके भी आते हैं जब एक आत्मगत विश्लेषण ज़रूरी होता है, जैसा जेन को लेकर हुआ। तेरह वर्षीय जेन स्कूल भर में घूमती और तमाम बच्चों से कहती कि नील उन्हें बुला रहा है।

मेरे पास बच्चों का तांता बंध गया ''जैन ने कहा कि आपने बुलाया है।'' मैंने जेन को बाद में बताया कि दूसरों को मेरे पास भेजने का मतलब है कि दरअसल वह खुद आना चाहती थी।

इन सत्रों के दौरान मैं क्या विधि अपनाता था? मेरा कोई तयशुदा तरीका नहीं था। कभी मैं सवाल पूछता ''जब आइने में अपनी शक्ल देखते हो तो क्या वह पसंद आती है? जवाब हमेशा 'नहीं' होता।

अपने चेहरे का सबसे खराब हिस्सा क्या लगता है? जवाब हमेशा होता 'मेरी नाक'।

वयस्क भी यही जवाब देते हैं। बाहरी दुनिया के लिए चेहरा ही व्यक्ति है। जब लोगों को याद करते हैं तो चेहरे ही उभरते हैं। जब हम बात करते हैं तो हम चेहरे ही देखते हैं। यों हमारे आंतरिक स्व का बाहरी चित्र हमारा चेहरा बन जाता है। जब कोई बच्चा कहता है कि उसे अपना चेहरा पसंद नहीं है तो उसका मतलब है कि उसे अपना व्यक्तित्व पसंद नहीं है। मेरा अगला सवाल चेहरे से हटकर 'स्व' से जुड़ा होता है। ''अपने आप में सबसे घृणा किस चीज से होती है?'' मैं पूछता।

अमूमन जवाब शरीर से जुड़ा होता। 'मेरे पैर बेहद बड़े हैं।' ''बेहद मोटा हूं।'' ''बहुत छोटी हूं।'' ''मेरे बाल।'' मैं कोई मत ज़ाहिर नहीं करता। कभी सहमत नहीं होता कि वह लड़का या लड़की बहुत मोटा या पतली है। न मैं बातचीत को किसी खास दिशा में बढ़ाने की कोशिश करता। अगर शरीर में रुचि लगती हो हम उसके बारे में तब तक बात करते जब तक कुछ और कहने को नहीं बचता। तब हम व्यक्तित्व की ओर बढ़ते।

कई बार मैं एक परीक्षा भी ले लेता। ''मैं कुछ चीजें लिखता हूं, उनसे तुम्हें जाचूंगा। तुम्हें जितने सही लगे, उतने नंबर तुम खुदको देना। उदाहरण के लिए तुमसे पूछूंगा कि तुम खुदको खेल-कूद में या साहस में सौ में से कितने नंबर दोगे?'' और यूं परीक्षा शुरू हो जाती।

एक चौदह साल के लड़के को दी गई परीक्षा कुछ यूं थी:

शक्ल सूरत : ''ओह, तकरीबन पैंतालीस प्रतिशत''

दिमाग : ''साठ''

साहस : ''पच्चीस''

वफादारी : ''मैं अपने दोस्तों से दगा नहीं करता''

संगीत का ज्ञान : ''शून्य''

हाथ का काम : (कुछ बुदबुदाया, अस्पष्ट उत्तर)

घृणा : ''कठिन सवाल है। मुझे पता नहीं।''

खेल-कूद : ''छियासठ''

सामाजिक भावना : ''नब्बे।''

बेवकूफी : ''ओह करीब एक सौ नब्बे प्रतिशत''

ज़ाहिर है कि बच्चे के उत्तरों से चर्चा का मौका मिलता था। मैं हमेशा बच्चे के अहं से शुरू करता था क्योंकि इससे उसकी रुचि जगती थी। इससे जब हम उसके परिवार की चर्चा करते तो बच्चा सहज होता और रुचि भी लेता।

छोटे बच्चों के साथ बातचीत अधिक स्वत:स्फूर्त होती। मैं बच्चे के जवाबों के सहारे आगे बढ़ता। छह साल की मारगिट का उदाहरण

लें। वह मेरे कमरे में आई और बोली ''मुझे पी.एल. चाहिए।''

''ठीक है,'' मैंने कहा।

वह आरामकुर्सी में बैठी।

''पी.एल. आखिर होता क्या है?''

''खाने की चीज नहीं है यह'' मैंने कहा ''पर मेरी जेब में कहीं एक गोली थी ज़रूर। ये रही'' मैंने उसे मीठी गोली दी।

''तुम्हें पी.एल. क्यों लेना है?''

''एविलिन को पी.एल. दिया था, इसलिए मुझे भी चाहिए।''

''बढ़िया! तुम शुरू करो। तुम्हें किस बारे में बात करनी है?''

"मेरी एक गुड़िया है। (चुप्पी) वो आले में रखी चीज कहां से लाए?" (ज़ाहिर है कि सवाल का जवाब पाने तक उसे रुकना नहीं है।) "इस घर में तुम आए उससे पहले यहां कौन रहता था?" उसके सवालों से पता चला कि वह कोई सच्चाई जानना चाहती है। मुझे अंदाज से यह लगता है कि वह जन्म के बारे में जानना चाहती है।

"बच्चे कहां से आते हैं?" मैं अचानक पूछता हूं।

मारगिट उठ कर दरवाजे तक जाती है।

"मुझे पी. एल. पसंद नहीं है," इतना कह वह बाहर निकल जाती है। पर कुछ ही दिनों बाद फिर से पी. एल. चाहती है - और हम आगे बढ़ते हैं।

कई बच्चों को कभी पी. एल. नहीं दिया गया। क्योंकि वे इसे चाहते ही नहीं थे। उनके अभिभावकों ने उन्हें झूठ और उपदेशों के सहारे नहीं पाला था।

थेरेपी तुरंत इलाज नहीं करती। जिस बच्चे का उपचार चल रहा हो उसे लगभग साल भर तक कुछ फायदा नहीं होता। इसलिए मैं उन बड़े छात्र-छात्राओं को लेकर हताश नहीं होता जो स्कूल से उस स्थिति में ही निकल जाते हैं जिसे हम अधपकी मानसिक स्थिति कह सकते हैं।

टॉम को हमारे पास बस इसलिए भेजा गया क्योंकि वह अपने स्कूल में असफल रहा था। मैंने उसके साथ कई सत्र किए। परंतु इसका कोई ज़ाहिर असर नहीं हुआ। जब उसने समरहिल छोड़ा तो लगता यह था कि वह जीवन में भी असफल ही रहेगा। पर साल भर बाद उसके अभिभावकों का पत्र आया। उन्होंने बताया कि वह डॉक्टर बनना चाहता है और खूब जम कर पढ़ाई कर रहा है।

बिल तो और भी लाइलाज लगता था। उसे तीन साल तक पी. एल. देने पड़े। जब स्कूल छोड़ा तो वह एक दिशाहीन अट्ठारह साल वर्षीय लड़का था। साल भर वह छुटपुट नौकरियां करता रहा। तब उसने तय किया कि वह खेती करना चाहता है। मैंने सुना है कि वह अच्छा काम कर रहा है और उसे अपना काम पसंद भी है।

दरअसल ये निजी सत्र पुनर्शिक्षा ही थे। इनका लक्ष्य था कि उन तमाम ग्रंथियों को छांटना जो नैतिकता के उपदेशों व भय से उपजती हैं।

समरहिल जैसी मुक्तशाला बिना ऐसे सत्रों के भी चलाई जा सकती है। वे तो दिमागी सफाई कर पुनर्शिक्षा की प्रक्रिया को तेज भर करते हैं, ताकि आज़ादी का सुहाना मौसम शुरू हो सके।

स्वशासन

समरहिल एक स्वशासित शाला है, जिसका स्वरूप लोकतांत्रिक है। सामाजिक या सामूहिक जीवन से जुड़ी सभी बातों को, जिसमें सामाजिक अपराधों की सज़ा भी शामिल है, शनिवार की आमसभा में वोट द्वारा तय किया जाता है।

हरेक शिक्षक और बच्चे का एक-एक वोट होता है, फिर चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो। मेरे और एक सात साल के बच्चे के मत का दर्जा समान है।

कोई मुस्करा कर कह सकता है "पर तुम्हारी आवाज़ की कीमत तो ज्यादा होगी ना?" इसे भी जांच लें। एक बार मैंने सुझाव रखा कि सोलह साल से कम उम्र वाले किसी बच्चे को धूम्रपान न करने दिया जाए। मैंने अपनी बात के तमाम तर्क पेश किए - तम्बाकू नशा है, जहरीला है, बच्चों में दरअसल इसकी चाहत भी नहीं होती। वे तो यह जताने के मकसद से सिगरेट पीते हैं कि वे बहुत बड़े हो गए हैं। इन तर्कों के विरुद्ध तमाम तर्कों की बौछार हुई। तब वोट पड़े। मेरा सुझाव काफी वोटों से पिट गया।

पर इसके बाद जो हुआ वह गौर करने लायक है। मेरे परास्त होने के बाद एक सोलह साल के लड़के ने प्रस्ताव रखा कि बारह साल से कम उम्र वाले बच्चों को सिगरेट पीने की छूट हो। उसका सुझाव मान लिया गया। पर अगले ही सप्ताह बारह साल के एक बच्चे ने नया नियम वापस लेने की बात यह कह की "हम सब पाखानों में लुकछिप पर सिगरेट पी रहे हैं, जैसे कठोर स्कूल के चंट बच्चे करते हैं। मेरा मानना है कि यह समरहिल के विचार के विरुद्ध है।" उसके भाषण पर खूब तालियां बजीं और सभा ने नियम वापस ले लिया। आशा है मैं स्पष्ट कर सका हूं कि मेरी आवाज़ हमेशा एक बच्चे की आवाज़ से ज़्यादा ताकतवर नहीं होती।

एक बार मैंने सोने के समय के नियम को तोड़ने और उसके फलस्वरूप अगली सुबह उनींदे बच्चों के इधर-उधर घूमने की कड़ी आलोचना की। मैंने सुझाव दिया कि जब कोई बच्चा यह नियम तोड़े तो सज़ा के बतौर उसका पूरा जेबखर्च कट जाना चाहिए। जवाब में एक चौदह वर्षीय बच्चे ने कहा "जो रातजगे के बावजूद अगली सुबह जग पाएं उन्हें हर घंटे के हिसाब से एक पैसा इनाम मिलना

चाहिए।'' मुझे कुछ वोट मिले परंतु अधिकतर वोट उसे ही मिले।

समरहिल की सरकार में कोई अफसरशाही नहीं है। हर सभा का सभापति एक अलग व्यक्ति होता है, जिसे पिछली सभा का सभापति नियुक्त करता है। सचिव का काम स्वैच्छिक होता है। सोने के समय के अधिकारी कुछ सप्ताह में बदल दिए जाते हैं।

हमारा लोकतंत्र अच्छे कानून बनाता है। उदाहरण के लिए बिना लाइफ गार्ड की मौजूदगी के समुद्र में कोई नहीं तैरेगा। और लाइफ गार्ड हमेशा शिक्षक होते हैं। छतों पर चढ़ना मना है। समय से सोना ज़रूरी है, नहीं तो स्वत: फाइन लगता है। छुट्टी होने के पहले वाले बृहस्पति या शुक्रवार को कक्षाएं लगें या नहीं यह आमसभा में हाथ खड़े कर तय कर लिया जाता है।

सभाओं की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सभापति कमजोर है या मजबूत। क्योंकि पैंतालीस जोशीले बच्चों के बीच व्यवस्था बनाए रखना आसान काम नहीं है। सभापति शोर मचाने वालों पर फाइन लगा सकता है। किसी कमजोर सभापति के कार्यकाल में ढेरों फाइन लगते हैं।

शिक्षक चर्चा में हिस्सा लेते हैं। मैं भी लेता हूं। पर कई ऐसी स्थितियां होती हैं जहां मुझे निष्पक्ष रहना पड़ता है। मैंने कभी यह भी देखा है कि जिस पर किसी जुर्म का आरोप लगाया गया वह गवाही के बूते पर साफ छूट गया जबकि उसने अकेले में मुझे बताया था कि उसने गुनाह किया था। ऐसे में मैं हमेशा उसी व्यक्ति का पक्ष लेता हूं।

अपना वोट डालने या प्रस्ताव रखने में मेरी भागीदारी रहती है। इसका एक उदाहरण देखें। मैंने एक बार सवाल उठाया कि बैठकघर में फुटबॉल खेली जानी चाहिए या नहीं। बैठकघर मेरे दफ्तर के नीचे है। मैंने बताया कि काम करते समय मुझे फुटबॉल का शोर पसंद नहीं है। सो मेरा सुझाव था कि कमरों के अंदर फुटबॉल खेलने पर मनाही लगा दी जाए। कुछ लड़कियों, कुछ बड़े लड़कों और अधिकांश शिक्षकों ने मेरा समर्थन किया। पर मेरा प्रस्ताव पारित न हो सका। मतलब हुआ कि मुझे शोर-शराबे को झेलने पर बाध्य होना पड़ा। कई बैठकों में इस पर काफी बसहबाजी हुई। अंतत: मुझे बहुमत का समर्थन मिला और बैठकघर में फुटबॉल खेलना बंद हो सका। यही वह तरीका है जिससे हमारे स्कूल के लोकतंत्र में अल्पमत को अपने अधिकार मिलते हैं। उन्हें अपने अधिकार बारबार मांगने पड़ते हैं। यह बात छोटे बच्चों पर उतनी ही लागू होती है जितनी व्यस्कों पर।

स्कूली जीवन के कुछ पक्ष ऐसे भी हैं जो स्वशासन के तहत नहीं आते। मेरी पत्नी सोने के कमरों की व्यवस्था, खाने में कब, क्या बनेगा और बिलों का लेनदेन संभालती है। मैं शिक्षकों को नियुक्त करता हूं, और अगर वे अनुपयुक्त हों तो उन्हें जाने को कहता हूं।

समरहिल में स्वशासन का मकसद केवल कानून बनाना नहीं है, बल्कि एक समुदाय के सामाजिक पक्षों पर चर्चा करना भी है। हर सत्र की शुरुआत में सोने के समय के नियम मतदान से तय किए जाते हैं। यह उम्र के अनुसार तय किया जाता है। तब सामान्य व्यवहार संबंधी मसले उठते हैं। खेलकूद की समिति चुनी जाती है, साल शेष होने पर नृत्य आयोजन की समिति और नाट्य समिति, सोने के समय के अधिकारी, शहर में जाने पर निगरानी करने वाले अधिकारी (जो स्कूल के बाहर किए गए दुर्व्यवहार की रपट देते हैं) आदि भी चुने जाते हैं।

जो विषय हमेशा उत्तेजना पैदा करता है वह है खाने का। मैंने कई मर्तबा उबाऊ बैठकों को इस प्रस्ताव से गर्माया है कि बच्चों को दूसरी बार कोई चीज लेने की मनाही कर दी जाए। रसोई में अगर किसी के साथ पक्षपात होता नज़र आता है तो उससे सख्ती से निपटा जाता है। जब रसोईघर से खाना बर्बाद करने की शिकायत होती है तो उसमें सभा की खास रुचि नहीं रहती है। खाने के बारे में बच्चों का दृष्टिकोण निहायत व्यक्तिगत और आत्मकेंद्रित होता है।

आमसभा में किसी भी तरह की पढ़ाई संबंधी चर्चाओं से सब बचते हैं। बच्चे व्यवहारिक होते हैं। उन्हें सिद्धांत बेहद उबाते हैं उन्हें ठोस चीजें पसंद आती हैं, अमूर्त नहीं। मैंने एक बार प्रस्ताव रखा कि गाली देना कानूनन बंद किया जाए और मैंने इसके कारण भी सामने रखे। मैं एक महिला को उसके बेटे के साथ स्कूल दिखा रहा था। वह बच्चा भावी छात्र था। अचानक से एक तेज-तर्रार विशेषण सुनाई दिया। वह मां अपने बेटे को लेकर भागी। "भावी अभिभावकों को सामने किसी बेवकूफ की गालियों की वजह से मेरी आय में नुकसान क्यों होना चाहिए? यह नैतिकता का सवाल नहीं है, वित्त का सवाल है। तुम गाली देते हो, और मैं एक छात्र खो बैठता हूं।" मेरे सवाल का जवाब एक चौदह साल के लड़के ने दिया। "नील बकवास कर रहा है। अगर महिला सच में इससे सकते में आ गई है तो ज़ाहिर है कि समरहिल में उसका विश्वास नहीं था। अगर वो अपने बेटे का दाखिला भी करवा देती, और जब वह पहली बार घर लौटकर कोई हल्की सी गाली देता, तो वह उसे तुरंत स्कूल से निकाल लेती।" सभा ने उसकी बात मानी और मेरा प्रस्ताव गिर गया।

आमसभा में अक्सर दादागिरी के मसले से निपटना पड़ता है। हमारा समुदाय दादाओं से सख्ती बरतता है। मैंने पाया है कि हमारे सूचना-पट पर स्कूल नियमों में दादागिरी वाले नियम को अक्सर रेखांकित कर दिया जाता है। "दादागिरी की सभी घटनाओं से सख्ती से निपटा जाएगा।" फिर भी हमारे यहां दादागिरी उतनी नहीं होती जितनी कठोर स्कूलों में होती है। इसका कारण तलाशने की ज़रूरत भी नहीं है। वयस्कों के अनुशासन में बच्चों में नफरत पनपती है। क्योंकि वह इसे वयस्कों पर निकाल नहीं सकता, वह अपने से छोटे या कमजोर बच्चे पर निकालता है। ऐसा समरहिल में कम ही होता है। तहकीकात करने पर पता चलता है कि आरोप के पीछे की घटना महज इतनी थी कि जैनी ने पैगी को पगली कहा था।

कई बार आमसभा में चोरी की वारदात उठाई जाती है। चोरी की सज़ा कभी सख्त नहीं होती। पर चुराई चीज हमेशा लौटानी पड़ती है। अक्सर बच्चे मुझसे आकर पूछते हैं "जॉन ने डेविड के कुछ सिक्के चुरा लिए। क्या यह मनोविज्ञान का मसला है? या हम इसे सभा में उठाएं?"

अगर मुझे लगता है कि बात किसी तरह उस बच्चे के मनोविज्ञान से जुड़ी है, जिसमें बच्चे पर व्यक्तिगत ध्यान देने की ज़रूरत है तो मैं उन्हें मामला छोड़ देने को कहता हूं। अगर जॉन एक खुश और सामान्य लड़का है, जिसने कोई छुटपुट चीज उठा ली है, तो मैं उस पर आरोप लगाने देता हूं। इससे सबसे बुरा बस यही हो सकता है कि जब तक वह पूरे पैसे लौटा न दे, उसके पास जेब खर्च के लिए फूटी

कौड़ी नहीं बचती।

आमसभा की बैठकें कैसे चलाई जाती हैं? हर सत्र के प्रारंभ में एक बैठक के लिए एक सभापति चुना जाता है। बैठक के अंत में वह दूसरे सभापति को चुनता है। ऐसा पूरे सत्र भर होता है। जिस किसी की कोई शिकायत हो, कोई आरोप लगाना हो, सुझाव रखना हो या कोई नए कानून का प्रस्ताव रखना हो, तो वह अपनी बात को आमसभा में रख सकता है।

इसका एक उदाहरण देखें : जिम ने जैक की साइकिल के पैडल ले लिए क्योंकि, उसकी खुद की साइकिल दुरुस्त नहीं थी और वह दूसरे लड़कों के साथ सप्ताह के अंत में होने वाले भ्रमण के लिए जाना चाहता था। सारे सबूतों को देखने के बाद सभा ने तय किया कि उसे यात्रा में जाने नहीं दिया जाए।

सभापति ने पूछा "कोई आपत्तियां?"

जिम खड़ा हुआ और जोर से बोला, कि आपत्तियां तो होंगी ही। पर उसने जिस विशेषण का उपयोग किया वह कुछ और था। "यह उचित नहीं है" वह बोला "मुझे पता ही नहीं था कि जैक अपने पुराने खटारे का कभी इस्तेमाल भी करता है। वह साइकिल तो कब से झाड़ियों में पड़ी हुई थी। मैं उसका पैडल वापस लगा दूंगा, पर मुझे सज़ा सही नहीं लगती। मुझे यात्रा से निकालना नहीं चाहिए।"

इस पर बहस छिड़ी। बातचीत में पता चला कि जिम को हमेशा घर से साप्ताहिक जेब खर्च मिलता था। पर पिछले छह सप्ताह से उसके पैसे आए ही नहीं थे। उसके पास फूटी कौड़ी न थी। सभा ने तय किया कि सज़ा न दी जाए। और सज़ा नहीं दी गई।

पर जिम का क्या हो? अंतत: तय होता है कि सब चंदा करके उसकी साइकिल सुधरवा देंगे। उसके स्कूली साथी मिलजुल कर साइकिल के पैडल खरीद देते हैं और जिम खुशी-खुशी अपनी यात्रा पर जाता है।

आमतौर पर दोषी बच्चा सभा का फैसला मानता है। पर अगर फैसला किसी को बिल्कुल मान्य न हो तो वह अपील कर सकता है। ऐसी स्थिति में सभापति बैठक के अंत में मामला फिर से उठाता है। अपील के समय मसले को और गौर से देखा जाता है और अमूमन मूल फैसले को असंतोष के चलते कुछ कम कर दिया जाता है। बच्चे यह बात समझते हैं कि अगर दोषी बच्चे को यह लग रहा है कि उसके साथ अन्याय हो रहा है, तो संभवत: सच में अन्याय ही हो रहा हो।

समरहिल का कोई भी दोषी समुदाय की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह या नफरत नहीं जताता है। मुझे हमेशा आश्चर्य होता है कि वे सज़ा पाने पर भी विनय जताते हैं।

एक सत्र के दौरान चार बड़े बच्चों पर आमसभा में आरोप लगा कि वे एक गैर-कानूनी काम कर रहे हैं। वे अपने कपड़े बेच रहे थे। इस पर कानूनी पाबंदी है क्योंकि यह दरअसल माता-पिता के साथ अन्याय तो है ही जो कपड़े खरीदते हैं, साथ ही स्कूल के साथ भी अन्याय है, क्योंकि अभिभावक कपड़े गायब हो जाने पर स्कूल पर अव्यवस्था का दोष मढ़ते हैं। चारों को सज़ा मिली। सज़ा यह कि वे चार दिन स्कूल के बाहर नहीं निकलेंगे और हर रात आठ बचे सोने चले जाएंगे। उन्होंने फैसला बिना चूं-चपड़ किए मान लिया। सोमवार रात जब सब शहर में फिल्म देखने चले गए, मैंने अपराधियों में से एक, डिक को बिस्तर पर पसरे पढ़ते पाया।

"तुम भी अजीब गधे हो" मैंने कहा "सब फिल्म देखने चले गए हैं। तुम उठकर घूमते-फिरते क्यों नहीं हो?"

"मजाक मत करो," उसने कहा।

अपने लोकतंत्र के प्रति समरहिल के छात्र-छात्राओं की निष्ठा अद्‌भुत है। इसमें न तो भय है न ही नाराजगी। मैंने लड़कों को किसी असमाजिक कृत्य के लिए एक लंबी जांच से गुजरते देखा है। उसे सज़ा मिलते देखा है। अक्सर जिस लड़कों को सज़ा मिली हो उसे अगली बैठक में सभापति भी चुना जाता है।

बच्चों में न्याय का जो भाव है वह मुझे हमेशा आश्चर्य से भर देता है। उनकी प्रशासनिक क्षमताएं भी खूब हैं। शिक्षा के रूप में स्वशासन बेहद कीमती है।

कुछ ऐसे भी अपराध होते हैं जो स्वत: दंड की श्रेणी में आते हैं। जैसे बिना अनुमति लिए किसी दूसरे की साइकिल चलाना। इस पर छह पेन्स (सिक्कों) का फाइन है। शहर में जाकर गाली-गलौज करना (स्कूल में इसकी छूट है), फिल्म देखते समय दुर्व्यवहार करना, छत पर चढ़ना, भोजनागार में खाना बर्बाद करना आदि। ये और ऐसे दूसरे अपराधों पर स्वत: फाइन लगता है।

सज़ा अमूमन फाइन ही होती है : सप्ताह भर का अपना जेबखर्च दो या एक फिल्म देखने न जाओ।

जो बच्चे जज बनते हैं उन पर एक आरोप हमेशा लगता है, वह यह कि वे बेहद कठोर दंड देते हैं। मुझे ऐसा नहीं लगता। बल्कि लगता यह है कि वे बड़े उदार हैं। कोई ऐसी घटना याद नहीं आती जब किसी को कठोर सज़ा मिली हो। साथ ही दी गई सज़ा का अपराध से रिश्ता होता है।

तीन लड़कियों ने दूसरों की नींद में खलल डाली। सज़ा थी सप्ताह भर तक एक घंटे पहले सोने जाओ। दो लड़कों ने एक बच्चे पर ढेले फेंके। उनकी सज़ा थी कि वे हॉकी के मैदान तक ढेले ढोकर ले जाएं।

कई बार ऐसा भी होता जब सभापति कहता "यह आरोप बेवकूफी का है," और वह तय कर लेता कि किसी सज़ा की ज़रूरत नहीं है।

जब हमारे सचिव पर आरोप लगा कि उसने बिना अनुमति के जिंजर की साइकिल चलाई है तो उसे और दो अन्य शिक्षकों को, जिन्होंने भी ठीक यही किया था, कहा गया कि वे एक-दूसरे को जिंजर की साइकिल पर बैठा कर सामने वाले बाग के दस चक्कर लगाएं।

जब चार छोटे बच्चे नई वर्कशाप बनाने वाले मजदूरों की सीढ़ी पर चढ़े तो उन्हें यह सज़ा दी गई कि वे लगातार दस मिनट तक सीढ़ी पर ऊपर-नीचे चढ़ें और और उतरें।

सज़ा के मामले में सभा किसी वयस्क की सलाह नहीं लेती। मुझे बस एक वाकया याद आता है जब ऐसा किया गयां तीन लड़कियों ने

रसोई पर गुपचुप धावा बोला। बैठक में उनका जेबखर्च जब्त करने की सज़ा दी। उसी रात उन्होंने फिर से यही किया, सज़ा के रूप में एक फिल्म देखने की मनाही हुई। वे तीसरी बार फिर रसोई में खाना चुराने पहुंची। बैठक में खूब विचार हुआ। सभापति ने मुझसे सलाह की। "हरेक को दो-दो पेन्स का इनाम दो," मैंने सुझाया। "क्यों? पता है ऐसा किया तो पूरा स्कूल ही रात को रसोई में घुसने लगेगा।"

"ऐसा कुछ नहीं होगा," मैंने कहा "आजमा कर देखो।"

उसने नई सज़ा आजमाई। दो लड़कियों ने इनाम का पैसा लेने से इंकार कर दिया। तीनों को घोषणा करने सुना गया कि वे कभी रसोईघर से खाना नहीं चुराएंगी। और सच में उन्होंने खाना नहीं चुराया - लगभग दो महीने तक।

आमसभा में दूसरों पर उपदेश छांटने का रवैया बिरले ही अपनाया जाता है। इसका आभास तक समुदाय नापसंद करता है। एक ग्यारह साल का लड़का था। उसे आत्म प्रर्दशन की आदत थी। वह अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के मकसद से लंबी, पेंचीदा, पर बेतुकी टिप्पणियां करता था। यानि वह यह कोशिश करता था, पर बाकी बच्चे उसे शोर मचा कर चुप कर देते थे। बच्चे पाखंड को फौरन ताड़ लेते हैं।

मेरा विश्वास है कि हम समरहिल में यह सिद्ध कर चुके हैं कि स्वशासन कारगर है। जिस स्कूल में यह न हो उसे किसी सूरत में प्रगतिशील नहीं कहना चाहिए। वह महज समझौता स्कूल है। अगर बच्चों को अपने सामाजिक जीवन को खुद पूरी तरह नियमित करने की आज़ादी न हो, तो वह मुक्तशाला हो ही नहीं सकती। जहां कोई एक बॉस हो, वहां वास्तविक आज़ादी नही होती। यह बात किसी अनुशासक की बनिस्बत किसी सहृदय बॉस ज्यादा लागू होती है। किसी कठोर बॉस के विरुद्ध एक साहसी बच्चा विद्रोह कर सकता है, पर ढुलमुल बॉस बच्चे में अपनी वास्तविक भावनाओं के बारे में अनिश्चिय जगाता है।

किसी स्कूल में स्वशासन तब ही संभव है जब वहां कुछ ऐसे बड़े बच्चे भी हों जो शांत जीवन पसंद करते हों और उस उम्र के बच्चों की उदासीनता या विरोध से लड़ सकते हैं, जब उनमें उजड्डपन हावी होती है। क्योंकि इस उम्र में वे अपनी बातचीत में तो सामाजिक हो चलते हैं पर समुदाय की व्यवस्था चलाने के लिए छोटे होते हैं। वे खुद ढेरों कानून बनाते हैं फिर उन्हें खुद ही तोड़ने लगते हैं। स्कूल में जो थोड़े से बड़े बच्चे थे वे व्यक्तिनिष्ठ बन चले थे। अपना जीवन अपने समूह में बिताते थे। स्कूल के कायदे-कानून तोड़ने की शिकायत शिक्षकों की ओर से ज्यादा होने लगी। एक आमसभा में मुझे बच्चों पर आक्षेप लगाने पर बाध्य होना पड़ा। मैंने उन्हें असामाजिक नहीं, बल्कि स्वयं को समाज से ऊपर समझने वाला कहा। आरोप लगाया कि वे सोने के समय के बाद भी जगे रहते हैं और छोटे बच्चों के असामाजिक व्यवहार में कोई रुचि नहीं लेते। सच कहें तो छोटे बच्चों की व्यवस्था चलाने में रुचि सीमित होती है। अगर सब कुछ उन पर छोड़ दिया जाए तो मुझे शक है कि वे कभी सरकार तक बनाएं। उनके मूल्य हमारे मूल्य नहीं हैं। न ही उनका शिष्टाचार हमारा शिष्टाचार है।

वयस्कों के लिए अमन और चैन से जीने का सबसे आसान तरीका है कठोर अनुशासन। ड्रिल सार्जेन्ट तो कोई भी बन सकता है। समरहिल में हमारी कोशिशें और भूलें वयस्कों को चैन की जिंदगी जीने नहीं देतीं। पर साथ ही बच्चों की जिंदगी भी उतने शोर-शराबे से भरी नहीं हो पाती है जितनी वे चाहते हैं। शायद स्थिति को बच्चों की प्रसन्नता से ही नापा जा सकता है। इस मानदंड से चलें तो समरहिल की स्वशासन प्रणाली में हम एक असरकार समझौता तलाश सकें हैं।

खतरनाक हथियारों का हमारा नियम इसी प्रकार का समझौता है। एयरगन पर मनाही है। चंद बच्चे जो एयरगन चाहते हैं उन्हें यह कानून नापसंद है। फिर भी वे अमूमन इस नियम को मानते हैं। जब मनाही कम हो तो बच्चे को किसी बात पर इतना बुरा नहीं लगता जितना वयस्कों को लगता है।

समरहिल की एक समस्या सतत है। उसे आप 'व्यक्ति बनाम समुदाय' कह सकते हैं। शिक्षक और छात्र-छात्राएं उस वक्त आजिज का जाते हैं जब किसी समस्यात्मक लड़की के नेतृत्व में कुछ लड़कियां दूसरों को परेशान करती हैं। किसी पर पानी फेंकना, सोने के समय का नियम तोड़ना और सबको तंग करना। उनकी नेता जीन पर आमसभा में आरोप लगाती है। कठोर शब्दों में कहा जाता है कि वह आज़ादी का दुरुपयोग कर उसे उच्छृंख्लता में बदल रही है।

एक मेहमान मनोवैज्ञानिक ने मुझ से कहा " यह गलत हो रहा है। लड़की का चेहरा बताता है कि वह बड़ी दुखियाई हुई है। उसे कभी प्यार नहीं मिला है। यह खुली आलोचना उसे यही बता रही है कि उसे कोई प्यार नहीं करता। जीन को विरोध नहीं प्रेम की ज़रूरत है।"

मैंने उनसे कहा "देवीजी, हम उसे प्यार से बदलने की कोशिश कर चुके हैं। कई सप्ताहों तक उसे असामाजिक काम पर इनाम दिया गया है। हमने उसके प्रति स्नेह और सहनशीलता दिखाई है। पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई है। उसने हम सबको बेवकूफ मान लिया है। उसे लगता है कि वह आसानी से अपना आक्रोश हम पर निकाल सकती है। हम एक के पीछे पूरे समुदाय को बलि नहीं दे सकते।"

सच यह है कि इस द्वंद का पूरा जवाब मेरे पास नहीं है। मुझे पता है कि जब जीन पंद्रह साल की होगी तो वह एक गुंडाटोली की नेता नहीं रहेगी। उसका व्यवहार भी दोस्ताना हो जाएगा। यह मैं इसलिए कह रहा हूं क्योंकि मेरी सार्वजनिक राय में अटूट आस्था है। कोई भी बच्चा सालों-साल तक नापसंदी और आलोचना को नहीं झेल सकता। जहां तक स्कूल की आमसभा का सवाल है तो ज़ाहिर है कि समस्यात्मक बच्चों के पीछे शेष बच्चों की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।

हमारे पास एक बार एक बच्चा आया था जिसकी समरहिल आने से पहले की जिंदगी बड़ी दुखद थी। वह आक्रामक दादागीरी करता था, बेहद तोड़फोड़ करता था और घृणा से भरा था। चार-पांच साल की उम्र वाले बच्चों को उसने खूब यातना दी, वे ज़ार-ज़ार रोए। समुदाय को उनके बचाव का उपाय करना था। ऐसा करना उस दादा लड़के के विरुद्ध ही होता। पर माता-पिता की गल्तियों की सज़ा उन बच्चों को तो नहीं दी जा सकती जिनके माता-पिता ने बेहद लाड़-प्यार से अपने बच्चों को पाला हो।

कुछ ऐसे मौके भी आए जब मुझे किसी बच्चे को इस कारण घर वापस भेजना पड़ा, क्योंकि दूसरे बच्चों के लिए उसने स्कूल नरक बना दिया था। यह बात मैं बड़े दुख और असफलता की भावना के साथ बता रहा हूं। पर दूसरा कोई चारा मेरे सामने था ही नहीं।

क्या इस लंबी अवधि में मुझे स्वशासन पर अपने विचार बदलते पड़े है? मोटामोटी रूप में नहीं। मैं उसके बिना समरहिल की कल्पना तक नहीं कर सकता। यह तरीका हमेशा लोकप्रिय रहा। हमारे मेहमानों के लिए भी यह एक देखने लायक चीज है। मेहमानों की उपस्थिति में नुकसान भी हैं। जैसे एक बैठक में पास बैठी लड़की फुसफुसाई "मैं सैनिटरी नैपकिन्स फेंक कर खुड्डी का मुंह बंद कर देने की बात उठाना चाहती थी। पर देखो तो कितने मेहमान बैठे हैं।" मैंने सुझाया "उनकी परवाह न करो, जो बात कहनी है वह ज़रूर कहो।" उसने यही किया।

व्यावहारिक नागरिकशास्त्र का शैक्षणिक लाभ है। इसकी महत्ता पर बल देना ही चाहिए। समरहिल के छात्र-छात्राएं स्वशासन के अधिकार की रक्षा में लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। मेरी राय तो यह है कि स्कूली विषयों की सप्ताह भर की पढ़ाई की तुलना एक आमसभा का अधिक मूल्य है। सार्वजनिक रूप से भाषण देने के अभ्यास का भी यह एक उम्दा मंच है। अधिकांश बच्चे बिना हिचक के और बेहद अच्छी तरह से बोलते हैं मैंने कई बार ऐसे बच्चों को जो न पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं को अपनी बात बड़ी तरतीब के साथ रखते सुना है।

हमारे समरहिल के लोकतंत्र का कोई विकल्प मुझे तो नहीं सूझता। राजनैतिक लोकतंत्र की तुलना में शायद यह अधिक न्यायपूर्ण भी है। क्योंकि बच्चे एक दूसरे के प्रति कहीं अधिक उदार होते हैं और उनके आमतौर पर शायद निहितस्वार्थ भी नहीं होते। यह एक वास्तविक लोकतंत्र इसीलिए भी है क्योंकि सारे नियम प्रारंभिक आमसभा में बनाए जाते हैं और निरंकुश चयनित प्रतिनिधियों का प्रश्न भी नहीं उठता।

स्वशासन से आज़ाद बच्चे जो व्यापक नज़रिया पाते हैं वही स्वशासन को इतना महत्वपूर्ण बनाता है। उनके नियम दिखाने के नहीं होते। वे आवश्यक चीजों से निपटने के लिए होते हैं। शहर में जाने पर उपेक्षित व्यवहार के नियम कम आज़ाद सभ्यता के साथ समझौता है। "शहर" - बाहरी दुनिया – अपनी ऊर्जा छोटी-मोटी, गैर-ज़रूरी चीजों पर बर्बाद करती है। मानों आपने कैसे कपड़े पहने हैं या कोई अपशब्द कहा हो तो उसका जीवन पर सच में कोई असर पड़ेगा। जीवन के बाहरी शून्य से अलग होने के कारण ही समरहिल में एक सामुदायिक चेतना पनप सकती है, और पनपी भी है। यह चेतना अपने समय से काफी आगे है। सच है कि यहां एक फावड़े को "साला बेलचा कहा जाता है। पर सच यह है कि अगर आप किसी गड्ढा खोदने वाले से पूछें तो वह भी फावड़े को 'साला बेलचा' ही कहेगा।

सहशिक्षा

अधिकांश स्कूलों में योजनाबद्ध तरीके से लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग रखा जाता है। उनके बीच संबंधों को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। समरहिल में भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता, पर हतोत्साहित भी नहीं किया जाता। उनके बीच स्वस्थ संबंध बनते है। एक दूसरे के प्रति भ्रम या भ्रांतियां नही पनपतीं।

वास्तविक सहशिक्षा में लड़के-लड़कियां साथ-साथ रहते और पढ़ते हैं। ऐसे में शर्मभरी जिज्ञासा नहीं पनपती। समरहिल में तांक-झांक करने वाले नहीं होते। दूसरे स्कूलों की तुलना में बच्चों में चिंताएं भी कम होती हैं।

अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि उनके क्योंकि लड़के -लड़कियों की सीखने की क्षमताएं अलग-अलग होती हैं, इसलिए उन्हें पढ़ाना भी अलग-अलग चाहिए।

सहशिक्षा इसलिए आवश्यक है क्योंकि जीवन भी सहशिक्षा पर आधारित है। जब बच्चों को जबरन अलग-अलग रख अनुकूलन किया जाता है तब वे एक दूसरे से सहज संबंध नहीं बना पाते।

जो लोग सहशिक्षा के विरुद्ध हैं उनकी आपत्ति यह होती है कि इस पद्धति से लड़के स्त्रैण (औरतों जैसे) बनतें हैं और लड़कियों में पौरुष जागता है। पर सच्चाई यह है कि व्यस्कों के मन में अंदर कहीं एक भय पैदा होता है। वह भय है आपसी संबंधों को लेकरं यही कारण है कि अमूमन लड़के-लड़कियों की भावनाओं को दबाया जाता है। या फिर इस मुद्दे से ही बचा जाता है।

जो बच्चे प्रारंभ से समरहिल में रहे हैं उनके बीच संबंधों को लेकर मुझे कोई चिंता नहीं होतीं चिंता इसलिए नहीं होती क्योंकि उनका दमन नहीं किया जाता। यही कारण है कि उनमें आपसी संबंधों को लेकर अस्वाभाविक रुचि नहीं जगती।

काम

समरहिल का एक सामुदायिक नियम हुआ करता था जिसके अनुसार बारह वर्ष से ऊपर के हरेक बच्चे और शिक्षक को सप्ताह में दो घंटे, स्कूल परिसर में काम करना ज़रूरी था। इस काम का एक सांकेतिक पारिश्रमिक मिलता थां काम नहीं करने पर एक छोटा सा फाइन देना पड़ता था। कुछ लोग, जिसमें शिक्षक भी शामिल थे फाइन देकर खुश रहते थे। जो काम करते थे उनमें से अधिकांश की नज़रें घड़ी पर होती थीं। इसमें खेल का कोई पुट नहीं था, सो यह सबको उबाऊ लगता था। इस नियम को जांचा गया और बच्चों ने सर्वसम्मति से उसे वापस ले लिया।

कुछ साल पहले हमें समरहिल में एक अस्पताल की ज़रूरत थी। हमने तय किया कि भवन हम खुद ही बनाएंगे। ईंट-सीमेंट वाला पक्का भवन। हममें से किसी ने पहले एक ईंट तक नहीं चिनी थी, पर काम शुरू किया गया। कुछ बच्चों ने नींव खोदी और ईंटों के लिए कुछ पुरानी दीवारें तोड़ीं। पर बच्चों ने पारिश्रमिक की मांग की। दिहाड़ी देने से मना किया गया। अंततः भवन शिक्षकों और मिलने आने वाले मेहमानों ने पूरा किया। यह काम बच्चों को बेहद नीरस लगा। उनके अपरिपक्व दिमाग में अस्पताल की ज़रूरत की संभावना भी नहीं उपजी। अस्पताल से उनका स्वार्थ भी नहीं जुड़ा था। पर कुछ ही समय बाद उन्हें साइकिल रखने का शैड चाहिए था, जिसे उन्होंने बिना शिक्षकों की मदद के खुद-ब-खुद बनाया।

मैं, बच्चे जैसे होते हैं, वैसे ही उनका बयान कर रहा हूं। जैसा वयस्क चाहते हैं वे हों, उसका नहीं। उनकी सामुदायिक भावना,

सामाजिक जिम्मेदारी की भावना तब तक विकसित नहीं होती जब तक वे अठारह साल या उससे अधिक उम्र के नहीं हो जाते। उनकी रुचियां तात्कालिक होती हैं, उनके लिए भविष्य का अस्तित्व ही नहीं होता।

मैंने अब तक कोई आलसी बच्चा नहीं देखा। जिस चीज को हम आलस कहते हैं वह रुचि या स्वास्थ्य का अभाव होता है। स्वस्थ बच्चा खाली नहीं बैठता दिन भर कुछ न कुछ करता ही है। मैं एक स्वस्थ बच्चे को जानता था जिसे बेहद आलसी माना जाता था। दरअसल उसकी गणित में कोई रुचि नहीं थी, पर स्कूल के पाठ्यक्रम में गणित पढ़ना ज़रूरी था। ज़ाहिर है उसे गणित सीखनी ही नहीं थी। इस कारण उसके गणित शिक्षक को वह आलसी नज़र आता था।

हाल में मैंने पढ़ा कि अगर कोई दंपत्ति किसी शाम नाचने जाए और हरेक नाच में शरीक हो तो वह दम्पत्ति तकरीबन पच्चीस मील पैदल चलेगा। पर नाचते समय वे थकते नहीं हैं। क्योंकि उन्हें इसमें पूरी शाम आनंद आता है। यही बात छात्रों पर लागू होती है। जो बच्चा कक्षा में आलस करता है, वही फुटबाल के खेल के दौरान मीलों दौड़ लगाता है।

आलू बोने या प्याज की खरपतवार निकालते समय कोई भी सत्रह साल के लड़कों की मदद मुझे नहीं मिलती। जबकि यही लड़के किसी गाड़ी के इंजन से छेड़छाड़ करने, गाड़ी धोने या रेडियो बनाने में घंटों बिता देते हैं। इस स्थिति को स्वीकारने में मुझे लंबा समय लगा। मुझे यह सच्चाई उस वक्त समझ आने लगी जब मैं स्कॉटलैण्ड में अपने भाई के बगीचे में खुदाई कर रहा था। मुझे काम में मजा नहीं आ रहा था। मुझे अचानक समझ आया कि गड़बड़ दरअसल यह है कि मैं उस बाग में खुदाई कर रहा हूं जिसका मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। ज़ाहिर है लड़कों के लिए मेरा बाग अर्थहीन है, जबकि उनकी साइकिलें और रेडियो उन्हें बेहद सार्थक लगते हैं। वास्तविक परोपकारिता उनमें पनपे इसमें लंबा समय लगता है और तब भी स्वार्थ का पुट उसमें से पूरी तरह जाता नहीं है।

काम के प्रति छोटे बच्चों का नज़रिया, किशोर बच्चों से फर्क होता है। तीन से आठ साल के समरहिल के छात्र-छात्राएं दारा सिंह की तरह काम करते हैं। सीमेंट मिलाना, रेत ढोकर लाना, ईंटें हटाना। वे यह सब ईनाम की इच्छा के बिना करते हैं। वे स्वयं को वयस्कों के साथ जोड़ कर देखते हैं और अपनी कल्पनाओं को वास्तविक रूप में साकार करते हैं।

पर आठ-नौ साल से तकरीबन उन्नीस-बीस साल की उम्र तक उन्हें उबाऊ शारीरिक श्रम रास नहीं आता। यह बात अमूमन सभी बच्चों के लिए सच है। फिर भी कुछेक ऐसे बच्चे भी होते हैं जो बचपन से ही ताउम्र काम करने वाले बने रहते हैं।

सच यह भी है कि हम वयस्क लोग बच्चों का अक्सर शोषण भी करते हैं। "मौरिएन दौड़ कर यह चिट्ठी डाक के डब्बे में डाल आओ तों" बच्चों को इस्तेमाल होना पसंद नहीं आता। एक औसत बच्चा अस्पष्ट रूप से यह बात समझता भी है कि उसके माता-पिता उसके किसी प्रयास के बिना भी उसकी देखभाल करते हैं, उसे खिलाते-पहनाते हैं। उसे लगता है कि ऐसी देखभाल पाना उसका स्वाभाविक अधिकार है। पर साथ ही उसे यह भी समझ आता है कि ऐसे सैकड़ों छोटे-बड़े उबाऊ कामों की अपेक्षा उससे रखी जाती है और उसे करने भी पड़ते हैं, जिनसे उसके माता-पिता खुद बचना चाहते हैं।

मैंने एक बार अमेरिका के एक स्कूल के बारे में पढ़ा जिसका भवन छात्रों ने खुद बनाया था। मैं सोचा करता था कि यही आदर्श स्थिति है। पर दरअसल ऐसा है नहीं। अगर बच्चे अपना स्कूल भवन खुद बनाते हैं तो यकीनन कोई सद्भावपूर्ण सत्ता उनके सर पर खड़ी उन्हें जोश दिला रही होगी। जैसे ही सत्ता हटा ली जाएगी बच्चे स्कूल भवन का काम बंद कर देंगे।

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि कोई भी समझदार सभ्यता बच्चों से अठारह साल की उम्र के पहले काम करने की अपेक्षा नहीं रखती। अठारह वर्ष के पहले अधिकांश लड़के-लड़कियां खूब काम करेंगे बर्शेते यह काम उनके लिए खेल समान हो और उनके माता-पिता की नज़र में आर्थिक रूप से बेकार भीं बच्चों को परीक्षाओं के लिए जितनी मेहनत करनी पड़ती है उसकी कल्पना ही मुझे उदास कर देती है। मैंने सुना है कि दूसरे विश्वयुद्ध के पहले बुडापेस्ट में आधे छात्र-छात्राएं अपनी मैट्रिक की परीक्षा के बाद शारीरिक या मानसिक रूप से टूट जाते थे।

हमारे पुराने छात्र-छात्राओं द्वारा स्कूल से निकलने के बाद जिम्मेदार पदों पर बेहतरीन प्रदर्शन का कारण यह है कि वे अपने आत्मकेंद्रित काल्पनिक चरण को समरहिल में भरपूर जी पाते हैं। नवयुवक और नवयुवतियों के रूप में अपने जीवन की वास्तविकता का सामना, बचपन को फिर से जीने की अवचेतन चाहना के बिना, कर पाते हैं।

खेल

समरहिल को एक ऐसे स्कूल की परिभाषा दी जा सकती है जिसमें खेल सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। बच्चे और बिलौटियां क्यों खेलते हैं, यह मुझे पता नहीं। मुझे लगता है कि बात ऊर्जा की है।

यहां जब मैं खेल की बात करता हूं तो कसरती अखाड़ों या व्यवस्थित खेल-कूद के बारे में नहीं सोच रहा होता। मैं कल्पना के स्तर के खेल के बारे में सोच रहा होता हूं। व्यवस्थित खेलकूद में कौशल, स्पर्धा और टोली में काम शामिल होता है। पर बच्चों के खेल में अमूमन किसी कौल की ज़रूरत नहीं होती। वहां न स्पर्धा होती है और न ही टीम में काम करने की ज़रूरत पड़ती है। छोटे बच्चे डाकू-डाकू का खेल खेलते हैं जिसमें गोलियां दागी जाती हैं, तलवारें खनकती हैं। चलचित्रों का युग शुरू हुआ उसके बहुत पहले से बच्चे डाकूओं की टोली का खेल खेलते आए हैं। कहानियां और फिल्में इस खेल को कोई दिशा ज़रूर दे सकते हैं पर उसका मूल तत्व सभी प्रजातियों के बच्चों की आत्मा में बसता है।

समरहिल में छह साल के बच्चे पूरे दिन खेलते हैं, अपनी कल्पना जगत के खेल। छोटे बच्चों के लिए वास्तविकता और काल्पनिक जगत काफी पास-पास होते हैं। जब कोई दस साल का लड़का भूत बनकर डराता है तो नन्हे-मुन्ने खुशी के मारे चीख पड़ते हैं। उन्हें पता है कि सामने सिर्फ टॉमी है, उसने उनके सामने ही तो सफेद चादर ढकी है। फिर भी जब वह उनकी और बढ़ने लगता है तो हरेक बच्चा डर से चिल्लाने लगता है।

छोटे बच्चे काल्पनिक जीवन जीते है और उसी कल्पना जगत को अपने कार्यों में उतारते है। आठ से अठारह साल के लड़के गिरोह

बनाने का खेल खेलते हैं। वे लोगों के सिर काटते हैं या फिर अपने लकड़ी के हवाई जहाजों में बादलों से भी ऊपर उड़ते हैं। छोटी लड़कियां भी गिरोह बनाने के उस चरण से गुजरती हैं, पर उसमें बंदूके या तलवारें नही घुसतीं मेरी के गिरोह को नैली के गिरोह से आपत्ति होती है और दोनों में कहा-सुनी होती हैं, कठोर शब्द कहे जाते हैं। लड़कों के गिरोह बस खेल-खेल के दुश्मन होते हैं। यही कारण है कि छोटी लड़कियों के बनिस्बत छोटे लड़कों के साथ जीना आसान होता है।

काल्पनिक जगत की सीमा कहां शुरू और कहां खत्म होती है यह मैं आज तक तलाश नहीं सका हूं। जब कोई बच्चा किसी गुड़िया के लिए खिलौने की तश्तरी में खाना लाता है तो क्या वह उस पल यह मानता है कि गुड़िया जीवित है? क्या लकड़ी का घोड़ा सच में एक घोड़ा है? जब कोई लड़का पीछे से "हाथ ऊपर उठाओ" कह कर गोली दागता है, तो क्या उसे लगता है कि उसके हाथ में असली बंदूक है? मैं सोचता हूं कि बच्चे अपने खिलौनों को असली ही मानते हैं, जब तक कोई असंवेदनशील वयस्क खेल में टांग अड़ा कर उन्हें काल्पनिक जगत की याद नहीं दिला देता। वे तब धपाक से धरती पर आ गिरते हैं। कोई भी संवेदनशील अभिभावक बच्चों की काल्पनिक जगत को भंग नहीं करतां

लड़के आमतौर पर लड़कियों के साथ नहीं खेलते। वे डाकू-डाकू खेलते हैं, पकड़म-पकड़ाई खेलते हैं, वे पेड़ों पर घर बनाते हैं, गढ्ढे और खाईयां खोदते हैं।

लड़कियां व्यवस्थित खेल नहीं खेलतीं। टीचरजी या डॉक्टर बनने के खेलों की परिपाटी मुक्त बालकों में नहीं मिलती, क्योंकि सत्तावन लोगों की नकल करने की उन्हें ज़रूरत नहीं लगती। छोटी लड़कियां गुड़ियों से खेलती हैं, पर बड़ी लड़कियों को दूसरे लोगों से संपर्क करने में बेहद रस आता है। उन्हें चीजों से खेलना पसंद नहीं आता।

हमारी हॉकी की टीम मिश्रित होती है, ताश और अंदर खेले जाने वाले दूसरे खेल भी लड़के लड़कियां साथ-साथ खेलते है।

बच्चों को शोर और मिट्टी पसंद है। वे धड़धड़ाते हुए सीढ़ियां चढ़ते है। उन्हें सामने धरे फर्नीचर का ध्यान तक नहीं रहतां अगर वे पकड़म-पकड़ाई खेल रहे हों, और रास्ते में चीनी मिट्टी के गुलदान धरे हों, तो वे उन्हें भी रौंद डालें।

अक्सर माताएं अपने बच्चों से खेलती ही नहीं हैं। उन्हें लगता है कि उनकी धक्का गाड़ी में एक मुलायम सा भालू रख देने से दो एक घंटे की छुट्टी हो जाती हैं। वे भूल जाती हैं कि बच्चों को गुदगुदाना, चिपटाना, दुलराना पसंद है।

ज़ाहिर है कि बाल्यावस्था खेल की अवस्था है। पर हम सभी वयस्कों की अमूमन प्रतिक्रिया क्या रहती है? हम इसकी उपेक्षा करते हैं। हम इस बारे में सब कुछ भूल जाते हैं - क्योंकि हम इसे समय की बर्बादी मान बैठते हैं। सो हम बड़े-बड़े शहरी स्कूल खड़े करते हैं। उनमें ढेरों कमरे और मंहगी-मंहगी शिक्षण सामग्री इकट्ठा करते हैं। पर खेलने की प्रवृति के लिए हम एक छोटी सी पक्की जगह भर उपलब्ध करवाते हैं।

शायद ईमानदारी से यह दावा भी किया जा सकता है कि हमारी सभ्यता की कई बुराइयां इस कारण हैं कि बच्चे पर्याप्त खेल नहीं सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो हर बच्चे को मानो अलाव में पका कर वयस्क होने की उम्र के काफी पहले ही वयस्क बना डाला जाता है।

खेल के प्रति वयस्कों के नज़रिए में काफी मनमानापन होता है। हम बच्चों के लिए टाइम टेबल बनाते हैं, सुबह नौ से दोपहर बारह बजे तक पढ़ाई, तब एक घंटे की खाने की छुट्टी, फिर तीन बजे तक वापस पढ़ाई। अगर किसी आज़ाद बच्चे से यही टाइम टेबल बनाने को कहा जाए तो वह खेल के घंटे ज्यादा रखे और पढ़ाई के केवल कुछ ही।

बच्चों के खेल के प्रति वयस्कों के विरोध की जड़ में है क्या? मुझसे सैंकड़ों बार पूछा जाता है कि "अगर मेरा बेटा दिन भर खेलेगा तो वह कुछ सीखेगा कैसे?" "वह परीक्षाएं कैसे पास करेगा?'"मेरा उत्तर कम ही लोग स्वीकार पाते हैं "अगर आपका बच्चा जी भरकर खेलता है, तो वह दो साल की सघन पढ़ाई से ही कॉलेज दाखिले के इम्तहान पास कर सकता है। जबकि जिन स्कूलों के जीवन में खेल के घंटे को ही हटा दिया जाता है, वहां बच्चों को इसी काम में पांच, छह या सात साल लगते हैं।"

पर मुझे हमेशा इसके साथ यह भी जोड़ना पड़ता है, "यह तब, जब वह खुद अपनी मर्जी से परीक्षाएं पास करना चाहे। संभव है कि वह बैले नर्तक या रेडियो इंजीनियर बनाना चाहे। या ड्रेस डिजाइनर या बच्चों की नर्स बनना चाहे।" जी हां, बच्चों के भविष्य की चिंता के कारण, वयस्क उनके खेलने के अधिकार को बाधित करते हैं। पर इसमें और भी बातें जुड़ी हैं। खेल को लेकर कुछ अस्पष्ट नैतिक नापसंदगी भी हम दर्शाते हैं। हम अक्सर किशोर - किशोरियों को कहते हैं "बच्चों की सी हरकतें न करो।"

जो माता-पिता बचपन की ललक भूल जाते हैं, खेलना और कल्पनाएं करना भूल जाते हैं, वे अच्छे अभिभावक नहीं बन पाते। जब बच्चा अपने खेलने की क्षमता खो बैठता है तो वह मानसिक रूप से मर चुका होता है। वह उन बच्चों के लिए भी खतरनाक होता है जिनके संपर्क में वह आता है।

इजराइल के शिक्षकों ने मुझे अपने सामुदायिक केंद्रों के बारे में बताया है। मुझे बताया गया कि वहां स्कूल स्थानीय समुदाय का हिस्सा होते हैं जिनकी प्राथमिक ज़रूरत है कठोर शारीरिक श्रमं एक शिक्षक ने बताया कि वहां दस साल के बच्चों को अगर बाग में काम न करने दिया जाए तो वे सज़ा के बतौर रोते हैं। अगर समरहिल में किसी बच्चे को आलू खोदने से रोका जाए और वह रो पड़े तो मैं ज़रूर यह सोचने लगूंगा कि कहीं बच्चा मानसिक रूप से अस्वस्थ तो नहीं है। बचपन का मतलब खिलेदड़ापन। जो सामुदायिक व्यवस्था इस सच्चाई की उपेक्षा करती है उसकी शिक्षा-दीक्षा भी गलत है। मुझे लगता है कि इजराइल की व्यवस्था आर्थिक ज़रूरत की वेदी पर बाल जीवन की बलि चढ़ाती है। यह ज़रूरत हो सकती है, पर मैं ऐसी प्रणाली को आदर्श सामुदायिक जीवन का नाम नहीं दे सकतां

जिन बच्चों को इच्छानुसार खेलने नहीं दिया जाता उनको जो हानि होती है उसे जानना रोचक होने के बावजूद बेहद कठिन है। व्यावसायिक फुटबॉल खिलाड़ियों को खेलते देखने वाली भीड़ को देख मुझे अक्सर लगता है कि लोग खुद को खिलाड़ियों की जगह मान, कहीं बचपन की बाधित रुचि को फिर से जीने की चेष्टा तो नहीं कर रहे। समरहिल से निकले अधिकांश बच्चे फुटबॉल के मैच नहीं

देखते, उसकी तड़क-भड़क में उनकी रुचि नहीं होती। मुझे लगता है उनमें भी बच्चे कम ही ऐसे होंगें जो जुलूस देखने जाएं। आखिर उस जुलूस में भी तो बचकानापन होता है। उसके चटकीले रंग, उसकी औपचारिकताएं, उसकी धीमी गति, सभी कुछ खिलौनों की दुनिया और सजी-धजी गुड़ियों का आभास देती हैं। शायद यही कारण हो कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को जुलूस और लवाजमें इतने पसंद आते हैं। जैसे-जैसे लोगों की उम्र बढ़ती है, वे सुसंस्कत होते चलते हैं, उन्हें तामझाम आकर्षित नहीं करती। मुझे शक है कि सेना के उच्च अधिकारी, राजनीतिज्ञों और राजनायिकों को राजकीय जुलूसों में ऊब से अधिक कुछ हासिल होता होगा।

कुछ प्रमाण इस तथ्य के भी है कि जिन बच्चों को आज़ादी से पाला-पोसा जाता है, जिन्हें खूब खेलने का समय मिलता है वे भीड़ के पीछे चलने वाले नहीं बनते। समरहिल के पुराने छात्र-छात्राओं में केवल वे ही भीड़ में शामिल हों नारे लगातें हैं, जिनके माता-पिता की पृष्ठभूमि साम्यवादी है।

नाटक

सर्दियों में समरहिल में इतवार की शाम अभिनय की होती है। नाटकों में उपस्थिति हमेशा अच्छी रहती है। मैंने लगातार छह इतवारों के नाटक कार्यक्रम देखे हैं। पर नाटकों की बाढ़ के बाद ऐसा भी होता है कि कुछ सप्ताह पूरी शांति रहे।

दर्शकों की दृष्टि मीनमेख निकालने वाली नहीं होती। वे शिष्टाचार बरतते हैं। लंदन के दर्शकों की तुलना में कहीं अच्छा व्यवहार हमारे बच्चे करते हैं। ताने-फब्तियां कसना, पैर पटकना या सीटियां बजाना आदि बिरले ही होता है।

हमारा पुराना स्क्वैश का मैदान ही नाट्यशाला में बदल दिया गया है। उसमें तकरीबन सौ लोग बैठ सकते हैं। उसका मंच बक्सों से बना है। बक्सों को जहां मर्जी वहां हटाया जा सकता। यानि उन बक्सों को सीढ़ीनुमा आकार या सपाट मंच का रूप बच्चे दे सकते हैं। प्रकाश की व्यवस्था बेहतरीन है। प्रकाश कम करने और स्पॉटलाईट की अच्छी व्यवस्था है। मंच सज्जा की चीजें नहीं है, सिर्फ एक पर्दा है। जब नाटक कहता हो 'गांववासी भाईयों के बीच से घुसते है' तो अभिनेता पर्दा एक तरफ से धकिया देते हैं।

हमारी परंपरा है कि हम समरहिल में रचे गए नाटक ही खेलते हैं। एक अनलिखा नियम यह भी है कि किसी शिक्षक का लिखा नाटक तब ही खेला जाएगा जब बच्चों के लिखे नाटकों की कमी हो। अभिनेता स्वयं अपनी पोशाकें बनाते हैं। अकसर वे बेहद अच्छी होती हैं। हमारे यहां के नाटक प्रहसन या स्वांग अधिक होते हैं, दुखान्तक कम। पर जब भी दुखान्तक नाटक खेले जाते हैं, वे अच्छे होते हैं, कभी-कभार तो बेहद खूबसूरत अदाकारी के साथ।

लड़कों की तुलना में लड़कियां अधिक नाटक लिखती हैं। छोटे लड़के अपने नाटक खुद ही तैयार करते हैं। पर उसमें पात्रों के संवाद लिखे नहीं होते। और उसी ज़रूरत भी आखिर क्या है क्यों हरेक चरित्र "हाथ ऊपर करो!" ही तो कहता है। इन नाटकों में हमेशा लाशों की ढेर पर पर्दा गिरता है क्योंकि छोटे लड़के अमूमन समझौता - पसंद नहीं होते और विरोधियों का काम तमाम करना ही पसंद करते हैं।

तेरह वर्ष की डेफने शरलक होम्स के नाटक बनाया करती थी। याद आता है कि उनमें से एक में हवलदार सार्जेन्ट की बीबी को भगा ले गया था। सार्जेन्ट ने तब एक निजी जासूस और "माय डियर वॉटसन" की मदद से अपनी पत्नी को ढूंढ़ा था। तब उस नाटक में एक आश्चर्यजनक दृश्य नज़र आया। हवलदार सोफे पर दगाबाज बीबी के साथ बैठा था, उनके चारों ओर औरतें नाच रहीं थीं। और हवलदार अपनी वर्दी तक में नहीं था। डेफने अपने नाटकों में 'फर्राटेदार जीवन' को उतारने की कोशिश करती थी।

चौहद-एक साल की लड़कियां कभी-कभार छंद में नाटक लिखा करती थीं। अक्सर वे काफी अच्छे भी होते थे। ज़ाहिर है कि सभी शिक्षक और बच्चे नाटक नहीं लिखतें

दूसरों के नाटक चुराने की वृति से सब परहेज करते हैं। कुछ समय पहले अचानक नाटक कार्यक्रम से एक नाटक निकाला गया। जल्दबाजी में मुझे ही एक नाटक तैयार करना था। मैंने डब्ल्यू.डब्ल्यू. जेकब की कहानी को आधार बना एक नाटक लिखा। हर ओर "नकलची ! चोर !" का शोर मच गया।

समरहिल के बच्चों को किसी कहानी का नाटक बनाना पसंद नहीं। न ही वे दूसरे स्कूलों मे खेले जाने वाले नाटक पसंद करते हैं। हमारे बच्चे कभी शेक्सपीयर के नाटक नहीं करते। पर कभी-कभार मैं कोई एकांकी लिख डालता हूं-जैसे जूलियस सीज़र और एक अमरीकी दादा की मुठभेड़। वहां भाषा मिश्रित होती है। एक ओर शेक्सपीयर के जमाने की अंग्रेजी तो दूसरी ओर जासूसी पत्रिकाओं की भाषा।

मेरी ने उस वक्त तहलका मचा दिया जब उसने क्लिओपेट्रा के किरदार में मंच पर मौजूद हरेक पात्र की हत्या कर दी। तब छुरी पर पढ़ा "स्टेनलेस स्टील" और उसे अपनी छाती में छुरी घुसेड़ा, हमारे छात्र-छात्राओं की अभिनय क्षमता काफी ऊंची है। वे मंच पर आने से नहीं डरते। छोटे बच्चों को देखना बड़ा आनंद देता है, वे पूरी ईमानदारी से अपने पात्र चरित्र जीते हैं। लड़कियां लड़कों से अधिक आसानी से अभिनय करती हैं। दस साल से छोटे लड़के अपने गुण्डाटोली के नाटकों के अलावा दूसरे नाटकों में भागीदारी नहीं करते। और कुछ अभिनय का कोई मौका नहीं पाते, न पाना ही चाहते हैं।

हमारे लंबे अनुभव से हमें पता चला है कि सबसे खराब अभिनेता वे होते हैं जो वास्तविक जीवन में अभिनय करते हैं। ऐसे बच्चे मंच पर भी खुद से और अपने संकोच शब्द से दूर नहीं हो पाते। शायद यहां संकोच का प्रयोग सही भी नही हो, कयोंकि दरअसल वे इस बात के प्रति सचेत होते हैं कि देखने वाले उनके प्रति सचेत हैं।

अभिनय शिक्षा का एक ज़रूरी हिस्सा है। वैसे यह मूलत: प्रदर्शन ही होता है। पर समरहिल में जब अभिनय आत्म-प्रदर्शन बन जाता है तो अभिनेता/अभिनेत्री को कोई प्रशंसा नहीं मिलती।

किसी भी अभिनेता में दूसरों से एकात्म स्थापित करने की ताकत होनी चाहिए। वयस्कों में यह एकात्मकता हमेशा सायास होती है। उन्हें हमेशा यह अहसास होता है कि वे नाटक कर रहे हैं। पर बच्चों के बारे में मुझे ऐसा नहीं लगता। जब भी कोई बच्चा पात्र के रूप में मंच पर इस सवाल के साथ घुसता है "तुम कौन हो?" तो वह यह कहने के बदले कि "मैं यहां का भूत हूं !" कह सकता है कि "मैं पीटर हूं।"

छोटे बच्चों के लिए लिखे गए नाटक में एक दृश्य था सब भोजन कर रहे थे। खाने-पीने की चीजें मंच पर रखी थीं। नेपथ्य में याद दिलाने वाला जो प्रॉम्पटर था वह बड़ी मुश्किल से उन्हें अभिनेताओं को अगले दृश्य की ओर बढ़ा सका। बच्चे दर्शकों को भूल कर प्रेम से खाने में जुट गए थे।

अभिनय आत्मविश्वास बढ़ाने का एक तरीका है। पर कुछ बच्चे जो कभी अभिनय नहीं करते, बताते हैं कि उन्हें नाटक देखना इसलिए पसंद नहीं है क्योंकि वह उनके मन में हीनभावना जगाता है।

इस समस्या का कोई समाधान मैं तलाश नहीं पाया हूं। अमूमन ऐसे बच्चे अपने लिए कोई ऐसी चीज ढूंढ़ लेते हैं जिसमें वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर पाएं। पर ऐसी लड़की भी हो सकती है जो अभिनय करना पसंद करती हो पर कर नहीं पाती हो। ऐसी लड़की को हमेशा नाटक में शामिल किया जाता है। यह हमारे स्कूल में व्याप्त शिष्टाचार पर टिप्पणी है।

तेरह-चौदह साल के लड़के-लड़कियां ऐसा कोई पात्र बनना पसंद नहीं करते जिसे प्रेम दृश्य करने हों। पर छोटे बच्चे यह बड़ी सहजता और खुशी के साथ करते हैं। पंद्रह साल से बड़े बच्चे हास्य पात्र खेलना पसंद करते हैं। एक-दो बड़े बच्चे ही ऐसे होते हैं जो गंभीर प्रेम पात्र का चरित्र लेते हैं। प्रेम संबंधी चरित्रों को जीवन्त बनाने में प्रेम का अनुभव आवश्यक होता है, पर जिन बच्चों ने वास्तविक जीवन में कभी दुख नहीं देखा हो वे भी दुखभरे चरित्रों में अच्छा अभिनय कर लेते हैं। मैंने वर्जिनिया को दुखद चरित्र का अभ्यास करते समय फूट-फूट कर रोते देखा है। दरअसल बच्चे कल्पना में दुख और पीड़ा से परिचित होते है। सच्चाई यह है कि बच्चों के कल्पना जगत में मत्यु काफी जल्दी ही उभरती है।

बाल-नाटक उनके स्तर के ही होने चाहिए। बच्चों से कालजयी नाटक करवाना, जो उनके वास्तविक कल्पना जगत से दूर हों, भूल है। उनकी पठन सामग्री की तरह ही उनके नाटक भी उनके ही स्तर के होने चाहिए। समरहिल के बच्चे बिरले ही स्कॉट, डिकन्स या थैकरे की रचनाएं पढ़ते हैं, क्योंकि आज के बच्चे चलचित्र युग के बच्चे हैं। जब बच्चा सिनेमा जाता है तो सवा घंटे में "वेस्टवर्ड हो" जैसी लंबी कहानी का सार पा लेता है। इसी कहानी को पढ़ने में उसे दिनों दिन लग सकते हैं। और फिर फिल्म देखने से वह लोगों या दृश्यों के ऊबाऊ वर्णन से भी बच जाता है। यही कारण है कि बच्चे नाटक में एल्सिनोर की कहानी नहीं चाहते, वे ऐसी कहानी पसंद करते हैं जो उनके परिचित वातावरण की हो।

यद्यपि समरहिल के बच्चे अधिकतर अपने लिखे नाटक ही खेलते हैं फिर भी मौका पड़ने पर उम्दा नाटकों का भी उत्साह से स्वागत करते हैं। एक सर्दियों में मैं बड़े बच्चों को सप्ताह में एक बार नाटक पढ़ कर सुनाता रहा। मैंने बेरी, इब्सन, स्ट्रिन्डबर्ग, चेखोव, शॉ, और गॉल्स वर्दी के अलावा 'सिल्वर कॉर्ड' तथा 'द वोर्टेक्स' जैसे आधुनिक नाटक भी सुनाए। हमारे सबसे अच्छे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को इब्सन पसंद आया।

बड़े बच्चे मंच तकनीकों में रुचि लेते हैं। उनके प्रति इन बच्चों का दृष्टिकोण मौलिक होता है। नाटक लेखन की एक पुरानी परंपरा यह रही है कि कोई भी पात्र बिना स्पष्टीकरण दिए मंच नहीं छोड़तां जब नाटककार चाहता है कि पिता मंच से हटे ताकि मां और बेटी कह सकें कि वह एक 'खूसट बुढ्ढ़ा है' तो, पिता उठकर कहता "देखूं बागवान ने गोभियां बोई या नहीं," और तब मंच से हट जाता है। पर हमारे समरहिल नाटककार प्रत्यक्ष तकनीक अपनाते हैं। एक लड़की ने मुझे कहा "वास्तविक जीवन में तो हम क्यों जा रहे हैं यह बताए बिना ही कमरे से बाहर निकल जाते हैं।" सच यही हम करते हैं, समरहिल के मंच में भी यही किया जाता है।

समरहिल की विशेषता है स्वत:स्फूर्त अभिनय जो नाट्यकला की एक विशेष विधा है। मैं अभिनय के कुछ अभ्यास उन्हें देता हूं जैसे-एक काल्पनिक ओवरकोट पहनो, उसे फिर से उतारो, खूंटे पर टांगों। फूलों का गुच्छा उठाओ, उसमें एक कांटा तुम्हें चुभे। एक तार खोलो जिसमें लिखा है कि तुम्हारे पिता या माता गुज़र गए हैं। रेल्वे स्टेशन के रेस्तरां में हड़बड़ी में खाना खाओ क्योंकि तुम्हें चिंता है कि कहीं ट्रेन तुम्हारे बिना ही चलती न बने।

कई बार अभिनय में संवाद भी होते हैं। जैसे मैं टेबल कुर्सी पर बैठ घोषणा करता हूं कि मैं हैरिच में बैठा पासपोर्ट अधिकारी हूं। हरेक को आकर अपना काल्पनिक पासपोर्ट दिखाना है और मेरे सवालों का जवाब देना है। इसमें सबको खूब मजा आता है।

कभी मैं एक फिल्म निर्माता बन बैठता हूं जो अभिनेता-अभिनेत्रियों को तलाश रहा हो या एक निजी सचिव के लिए साक्षात्कार कर रहा हो। एक बार मैं ऐसा व्यक्ति बना जिसने 'लिपिक' तलाशने का विज्ञापन निकाला हो। किसी भी बच्चे को लिपिक का अर्थ पता नहीं था। एक लड़की ने ऐसा अभिनय किया मानों वह नख-प्रसाधक हो, इससे सबका खूब मनोरंजन हुआ।

स्वत:स्फूर्त अभिनय स्कूली नाट्कों का रचनात्मक पक्ष है, उसका महत्वपूर्ण पक्ष है। समरहिल में हम किसी और चीज के बनिस्बत रचनात्मकता के लिए ही नाटक खेलते हैं। नाटकों में अभिनय तो कोई भी कर सकता है, पर नाटक सब लिख नहीं सकते। ज़ाहिर है कि बच्चों को यह अहसास तो होता ही होगा, फिर चाहे यह अहसास अस्पष्ट ही क्यों न हो, कि दोहराने या नकल करने के बजाए खुद के लिखे मौलिक नाटकों को खेलने की परंपरा ही रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है।

नृत्य व संगीत

चलो नाचें पर कुछ नियम के साथ। आश्चर्यजनक बात यह है कि एक भीड़ उन नियमों को भीड़ के रूप में मान लेगी, फिर चाहे उस भीड़ को बनाने वाले लोग व्यक्तिगत स्तर पर उन नियमों से घृणा ही क्यों न करते हों।

मेरे लिए लंदन का बॉलरूम इंग्लैंड का प्रतीक है। नृत्य जो एक व्यक्तिगत रचनात्मक सुख है। अकड़ कर चलने में बदल कर रह जाता हैं। हर जोड़ा दूसरे जोड़ों की तरह नाचता है। भीड़ की रूढ़िवादिता अधिकांश नर्तकों को मौलिक नहीं बनने देता। यद्यपि नृत्य का आनंद दरअसल कुछ नया इज़ाद करने का आनंद है। जब आविष्कार नृत्य से बाहर छोड़ दिया जाता है तो नृत्य मशीनी और उबाऊ हो जाता है। हमारा नृत्य इंग्लैण्ड वासियों के मन में बसे भावना व मौलिकता के प्रति डर को अभिव्यक्त करता है।

अगर नृत्य के आनंद में भी आज़ादी की कोई संभावना नहीं हो, तो हमें वह जीवन के अधिक गंभीर पक्षों में भला कैसे मिलेगी? अगर व्यक्ति खुद अपने नाच में पग-संचालन ईज़ाद नहीं कर सकता तो ज़ाहिर है कि अगर वह अपना धर्म, शिक्षा या राजनीति के चरणों का आविष्कार करने की हिम्मत भला केसे करेगा?

समरहिल के सभी कार्यक्रमों में नृत्य शामिल होता है। इनकी व्यवस्था और प्रदर्शन हमेशा लड़कियां ही करती हैं, और अच्छी तरह से करती है। वे इसमें शास्त्रीय संगीत काम में नहीं लेती। वे हमेशा जैज ही चुनती है। हमारे यहां एक बैले नृत्य हुआ था जो गैरश्विन के "पैरिस में एक अमरीकी" के संगीत पर आधारित था। मैंने एक कहानी लिखी थी, जिसे लड़कियों ने नाच में रूपान्तरित किया था। सच कहूं तो मैंने लंदन के मंचों पर इससे कहीं खराब नृत्य देखे हैं।

तकरीबन हर शाम हमारा बड़ा कमरा बच्चों से भर जाता है। हम रिकार्ड बजाते हैं और यहीं बहस छिड़ जाती है। बच्चों को ड्यूक एलिंग्टन और इल्विस प्रिसले पसंद आता है और मुझे उससे घृणा है। मुझे रैवल, स्ट्राविन्स्की और गैरश्विन पसंद है। जब मैं जैज से परेशान हो जाता हूं तो मैं यह नियम लागू कर देता हूं कि क्योंकि कमरा मेरा है, वही संगीत बजेगा जो मुझे पसंद है।

शास्त्रीय संगीत बजाने पर अक्सर कमरा खाली हो जाता है। पर ऐसे बच्चे भी तो कम ही हैं जिन्हें शास्त्रीय संगीत या चित्रकला पसंद हो। हम उनकी अभिरुचि को परिष्कृत करने की कोशिश भी नहीं करते।

दरअसल जीवन के सुख पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ता कि किसी को बीथोविन पसंद आता है या जैज। अगर स्कूल बीथोविन को छोड़ अपने पाठ्यक्रम में जैज अपना लें तो शायद उन्हें अधिक सफलता मिले। समरहिल के तीन बच्चे जैज बैण्ड से प्रभावित हो साजों का अभ्यास करने लगे। दो ने क्लैरिनैट और एक ने ट्रम्पेट खरीदा। स्कूल छोड़ने के बाद उन्हें संगीत की रॉयल एकेडमी में दाखिला मिला। आज वे तीनों ही ऐसे वाद्य-वृन्दों की टोली में शामिल हैं जो केवल शास्त्रीय संगीत बजाते हैं। मैं यह मानता हूं कि उनकी संगीत में रुचि इसलिए पनप सकी क्योंकि उन्हें समरहिल में ड्यूक एलिंग्टन के साथ बॉख या जो संगीतकार उन्हें पसंद आता उसे भी सुनने की आज़ादी मिल सकी।

खेल-कूद

अधिकांश स्कूलों में खेलकूद अनिवार्य होता है। यहां तक कि मैच देखना भी अनिवार्य होता है। समरहिल में पढ़ाई की तरह ही खेलकूद भी एच्छिक होते हैं।

एक बच्चा स्कूल में दस साल रहा उसने एक खेल नहीं खेला, न उससे कभी खेलने को कहा गया। पर सामान्यत: बच्चों को खेलकूद बेहद पसंद है। छोटे बच्चे व्यवस्थित खेल नहीं खेलते वे तो डाकू-डाकू या रेड इन्डियन बनने का खेल खेलते हैं। वे पेड़ों पर झोपड़ियां बनाते हैं, और वह सब करते हैं जो बच्चे आमतौर पर करते हैं। जब तक वे उस जहां उनके मन में सहकारिता की भावना पनप जाए, व्यवस्थित खेल आयोजित नहीं किए जाने चाहिए। व्यवस्थित खेलकूद समय आने पर स्वाभाविक रूप से उन्हें आ जाते हैं।

समरहिल में सर्दियों में हॉकी और गर्मियों में टैनिस खेली जाती है। जाड़े में टैनिस खेलने में जो आपसी समझ और काम की ज़रूरत होती है वह बच्चों के लिए कठिन होता है। हॉकी में पूरी टोली एक साथ खेलती है, यह तो वे सहज ही समझते हैं। पर टेनिस में दोनों जोड़ीदार एक इकाई बनने के बदले अपना-अपना खेल खेलते हैं। सत्रह साल के आस-पास बच्चों को टोली में खेलना अधिक आसानी से समझ आता है।

तैराकी सभी उम्र के बच्चों में लोकप्रिय है। साइजवैल के पास जो समुद्रीतट है वह बच्चों के लिए सही नहीं है क्योंकि वह हमेशा ज्वार के कारण भरा रहता है। दूर एक पसरा रेतीला तट जो बच्चों को बेहद पसंद आता है पर वो हमारी तरफ है ही नहीं।

हमारे स्कूल में कोई कृत्रिम व्यायामशाला नहीं है, न ही मैं उसे आवश्यक मानता हूं। बच्चों को जितनी कसरत की ज़रूरत है वह वे अपने खेलों में पा लेते हैं। तैरना, नाचना, साइकिल चलाना। मुझे इस बात पर भी शक है कि आज़ाद बच्चे व्यायामशाला में जाना पसंद करेंगे। हमारे अंदरूनी खेल हैं - टेबल टैनिस, शतरंज, और ताश।

छोटे बच्चों के लिए उथला ताल है, रेत का ढेर है, सी-सॉ हैं और हैं झूले। जिस दिन ठंड न हो ढेरों बच्चे रेत के ढेर पर खेलते मिलते हैं। उनकी हमेशा यह शिकायत रहती है कि बड़े बच्चे भी उनका इस्तेमाल करते हैं। लगता है हमें बड़े बच्चों के लिए भी रेत का अलग ढेर बनाना होगा। रेत और मिट्टी का युग हमने जितना सोचा था उससे अधिक समय तक चल रहा है।

खेलकूद के लिए दिए जाने वाले इनामों में विसंगति को लेकर हमारे यहां खूब बहस और तकरारें होती हैं। विसंगति इस बात की है कि हम हम स्कूली पाठ्यक्रम में इनाम या अंक शामिल करने का लगातार विरोध करते हैं। इनाम का विरोध इसलिए है कि उन चीजों को खुद उनके लिए ही करना चाहिए न कि इनाम पाने के लिए। यह सच भी है। इसलिए हमसे अक्सर पूछा जाता है कि अगर टैनिस के लिए इनाम देना सही है तो भूगोल के लिए ऐसा करना भला गलत क्यों है। शायद उत्तर यह हो कि टैनिस का खेल स्वाभाविक रूप से स्पर्धा का खेल है। विपक्षी को हराना ही उसका उद्देश्य है। पर भूगोल का अध्ययन ऐसा नहीं है। मुझे भूगोल आता है। पर मुझे इससे क्या फर्क पड़ता है कि दूसरे को मुझसे ज्यादा भूगोल आता है या कम। मुझे पता है कि बच्चे खेलकूद में इनाम चाहते हैं पर स्कूली विषयों में नहीं। कम से कम समरहिल में नहीं। और फिर समरहिल में हम खेलकूद में जीतने वाले बच्चों को हीरो नहीं बना डालते। क्योंकि फ्रेड हॉकी टीम का कप्तान है इससे उसके मत को स्कूल की आम-सभा में अधिक महत्व नहीं मिलता।

समरहिल में खेलकूद अपनी सही जगह पर रखा जाता है। जो लड़का कोई खेल नही खेलता उसे कभी हीन नहीं माना जाता। जब

बच्चों को यह आज़ादी मिलती है कि वे जैसे हैं वैसे बने रहें तो 'जियो और जीने दो' का नारा अभिव्यक्ति पाता है। खेलकूद में मेरी खुद की रुचि भी नहीं है। पर खेल कौशल में मेरी रुचि है। अगर समरहिल के शिक्षक बच्चों से कहते "चलो बच्चों, खेल-मैदान की ओर बढ़ो !" तो यहां भी खेलकूद एक विकृत रूप ले लेता। असली खेल कौशल तब ही विकसित होता है जब यह आज़ादी हो कि खेलना चाहो तो खेलो और न खेलना हो तो न खेलो।

ब्रिटिश सरकार के निरीक्षकों की रपट

शिक्षा मंत्रालय, महामहिम साम्राज्ञी के निरीक्षकों द्वारा
समरहिल स्कूल पर रिपोर्ट
लाइस्टन, सफोल्क पूर्व
निरीक्षण तिथि
20 व 21 जून, 1949

टिप्पणियां

1. यह रिपोर्ट गुप्त हैं, तो स्कूल के स्पष्ट निर्देशों के बिना कहीं भी प्रकाशित नहीं की जा सकती। जब यह प्रकाशित की जाए तो समग्र रिपोर्ट ही प्रकाशित हो।

2. इस रिपोर्ट के स्वत्वाधिकार साम्राज्ञी के स्टेशनरी नियंत्रक के पास निहित हैं। नियंत्रक को इसके प्रकाशन के कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते इससे संबंधित सभी लोगों को यह स्पष्ट हो कि स्वत्वाधिकार नियंत्रक के पास निहित हैं।

3. यह भी स्पष्ट हो कि इस रिपोर्ट को मंत्रालय द्वारा स्वीकृति के अर्थ में नहीं लिया जाएगा।

शिक्षा मंत्रालय
कर्जन स्ट्रीट
लंदन डब्ल्यू क्रमांक 38 बी/6/8

यह स्कूल विश्वभर में एक क्रांतिकारी शैक्षणिक प्रयोग के रूप में विख्यात है, जहां इसके प्रधानाध्यापक के प्रकाशित शिक्षा सिद्धान्तों पर चर्चा होती है और उन्हें व्यवहार में उतारा जाता है। इसके निरीक्षण का कार्य कठिन पर रोचक रहा। कठिन इसलिए क्योंकि यहां की शिक्षण पद्धति अन्य स्कूलों से, जिनसे निरीक्षक परिचित हैं, भिन्न थी। और रोचक इसलिए क्योंकि इससे इस शिक्षण पद्धति के मूल्य का न केवल अवलोकन करने का बल्कि उसके आकलन का भी अवसर मिला।

स्कूल के सभी छात्र-छात्राएं आवासीय है। इसका वार्षिक शुल्क एक सौ बीस पाउण्ड है। शिक्षकों को कम तनख्वाहें देने के बावजूद, (इस पर बाद में चर्चा की जाएगी) प्रधानाध्यापक को इसे चलाने मे कठिनाई आ रही है। वे शुल्क इसलिए नहीं बढ़ाना चाहते क्योंकि वे अभिभावकों की वित्तीय स्थिति से परिचित हैं। अन्य निजी आवासीय स्कूलों की तुलना में शुल्क कम होने के बावजूद यहां शिक्षकों का अनुपात अधिक है। निरीक्षकों को उन वित्तीय समस्याओं की बात सुन आश्चर्य हुआ जिनकी शिकायत प्रधानाध्यापक ने की। यह तो हिसाब-किताब को करीब से जांचने पर ही पता चलेगा कि खर्च पूरा पड़ता है या सच में घाटा हो रहा है। किसी स्वतंत्र व अनुभवी सूत्र से ऑडिट करवाना शायद उचित रहे। तब तक इतना तो कहा जा सकता है कि बाकि चीजों की कमी हो या न हो परंतु बच्चों को खाना-पीना पर्याप्त मिलता है।

जिन लोगों ने प्रधानाध्यापक की रचनाएं पढ़ी हैं वे उन सिद्धान्तों से वाकिफ़ होंगे जिनपर यहां की शिक्षण पद्धति आधारित है। उनमें से कुछ तो अब तक व्यापक रूप से स्वीकारे भी जा चुके हैं, कुछ का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है, तो कुछ ऐसे भी हैं जिनके प्रति अधिकांश शिक्षक व माता-पिता शंकालु हैं और उन्हें नापसंद करतें हैं। निरीक्षकों ने आकलन के सामान्य तरीके अपनाने की चेष्टा की जिससे जो कुछ किया जा रहा है उसे निष्पक्ष रूप से देखा जाए। पर लगता है कि स्कूल में अपनाए गए सिद्धान्तों और उसके लक्ष्यों के उल्लेख के बिना उन पर उचित टिप्पणी लिखना असंभव है। फिर चाहे निरीक्षक उन सिद्धान्तों या लक्ष्यों से व्यक्तिगत स्तर पर सहमत हों या नहीं।

स्कूल जिन सिद्धान्तों पर आधारित है उनमें प्रमुख है आज़ादी। यह आज़ादी पूरी तरह अबाधित नहीं है। स्कूल के कई नियम हैं जो बच्चों के जीवन और शारीरिक सुरक्षा से संबंधित है। ये नियम बच्चे स्वयं बनाते हैं और प्रधानाअध्यापक का अनुमोदन तब मिलता है जब वे पर्याप्त रूप से सख्त हों। उदाहरण के लिए बच्चे केवल तब तैर सकते हैं जब कम से कम दो ऐसा शिक्षक मौजूद हों जो जीवन-रक्षा में प्रशिक्षित हो। छोटे बच्चे, बड़ों के बिना स्कूल परिसर से बाहर नहीं जा सकते। ये व इसी तरह के दूसरे नियम अनिवार्य हैं और उन्हें तोड़ने पर आर्थिक सज़ा दी जाती है। पर शेष मामलों में बच्चों को दी जाने वाली आज़ादी निरीक्षकों ने दूसरे किसी स्कूल में नहीं देखी है। और यह आज़ादी वास्तविक है। उदाहरण के लिए किसी बच्चे के लिए कक्षाओं में जाना अनिवार्य नहीं है। जैसा बाद में स्पष्ट होगा, अधिकांश

बच्चे नियमित रूप से कक्षाओं में जाते हैं पर एक ऐसा छात्र भी हमने पाया था जो तेरह साल से स्कूल में है और कभी कक्षा में नहीं गया। वह आज सूक्ष्म औज़ार निर्माता के यहां औज़ार बनाने वाला दक्ष कारीगर है। यह चरम उदाहरण महज इसलिए दिया जा रहा है जिससे स्पष्ट हो कि बच्चों को सच में आज़ादी दी जाती है, वह तब वापस नहीं ले ली जाती जब उसके परिणाम, परेशान करने वाले लगने लगें। पर स्कूल अराजकतावादी सिद्धान्तों पर नहीं चलता। स्कूल की लोकसभा में, एक बच्चे की अध्यक्षता में नियम बनाए जाते हैं। सभी शिक्षक और बच्चे उसमें इच्छानुसार भागीदारी करते हैं। इस सभा को चर्चा की असीमित और नियम बनाने की व्यापक शक्ति दी गई है। एक बार तो इस सभा ने एक शिक्षक के निलंबन पर चर्चा की और यह दर्शाया कि वे पूरी घटना को न केवल समझ रहे हैं बल्कि यह फैसला उनके मत में उचित भी है। पर ऐसी घटनाएं बिरले ही होती हैं। अमूमन यह आमसभा सामुदायिक जीवन के रोजमर्रा के मसलों से सरोकार रखती है।

निरीक्षक पहले दिन एक सत्र में उपस्थित हो सके। मुख्य चर्चा रात को सोने के समय और निषिद्ध समयों पर रसोई में घुसने पर हुई। दोनों ही नियम सभा द्वारा बनाए गए थे। समस्याओं पर ज़ोरदार चर्चा हुई। सबने बेहिचक टिप्पणियां कीं। चर्चा व्यवस्थित थी। यद्यपि काफी समय बेफालतू के तर्कों में ज़ाया हुआ। निरीक्षक, प्रधानाध्यापक के तर्क से सहमत थे कि बच्चों को अपने मामलों को सलटाने का जो अनुभव हुआ वह ज़ाया हुए समय की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण था।

एक विवादास्पद मसले का उल्लेख आवश्यक है। वह है धार्मिक जीवन और शिक्षा का अभाव। धर्म पर कोई प्रतिबंध नहीं है। और अगर स्कूल की सभा इस विषय को प्रारंभ करना चाहे तो संभवत: वह जोड़ा जा सकता है। इसी तरह अगर किसी बच्चे का किसी धर्म के प्रति व्यक्तिगत रुझान हो तो उसके सामने कोई बाधाएं भी नहीं आएंगी। सभी बच्चे ऐसे परिवारों के हैं जो कट्टर ईसाई परिवार नहीं हैं, और अब तक धार्मिक शिक्षा की कोई इच्छा उनके द्वारा प्रकट नहीं की गई है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि कई सिद्धान्तों व आचरणों का उपयोग स्कूल में होता हैं। स्कूल की कई बातें ऐसी हैं जिनका कोई भी ईसाई व्यक्ति अनुमोदन करे। धार्मिक शिक्षा के पूर्ण आभाव का क्या प्रभाव पड़ रहा हैं, यह दो दिन के निरीक्षण के दौरान नहीं समझा जा सकता है।

स्कूल की सामान्य रिपोर्ट लिखने के पहले यह परिचय देना आवश्यक लगा। इस वास्तविक आज़ादी की पृष्ठभूमि मे ही स्कूल की व्यवस्था तथा गतिविधियों को देखा जाना चाहिए।

व्यवस्था

स्कूल में 4 से 16 वर्ष की आयु के 70 बच्चे हैं। ये बच्चे चार अलग-अलग भवनों में रहते हैं। इनका वर्णन परिसर संबंधी भाग में दिया जाएगा। इस भाग में जिस सीमित अर्थ में शिक्षा को समझा जाता है उसका वर्णन किया जाएगा। स्कूल में 6 फॉर्म (कक्षा/समूह) हैं। ये कमोबेश आयु के आधार पर विभाजित हैं, पर इनको बनाने में क्षमता पर अधिक बल दिया जाता है। ये कक्षाएं सामान्य स्कूलों की तरह सप्ताह में पांच बार चालीस-चालीस मिनट के पांच घंटों में लगती हैं। उनके पढ़ने का स्थान और शिक्षक निश्चित हैं। अन्य स्कूलों से अंतर केवल इस बात का है कि इस बात को कोई गारंटी नहीं रहती कि कितने या कोई बच्चे उपस्थित होंगे या नहीं। निरीक्षकों ने कक्षाओं में उपस्थित रहकर और सवाल पूछ कर यह जानने की कोशिश की कि दरअसल उनमें क्या होता है। पता चला कि जैसे-जैसे बच्चों की उम्र बढ़ती है वे अधिक नियमित होते जाते हैं। साथ ही अगर कोई बच्चा किसी कक्षा में जाना तय करता है तो सामान्यत वह नियमित रूप से पढ़ने आता है। कक्षा कार्य व विषय के बीच का संतुलन सही है या नहीं यह जानना और भी कठिन था। क्योंकि कई बच्चे स्कूल सर्टिफिकेट का इम्तहान देने का निर्णय लेते हैं। ऐसे में विषयों का चयन परीक्षा की आवश्यकता से निर्धारित होता चलता है। पर छोटे बच्चों को चयन की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस पद्धति के परिणाम अपनी समग्रता में खास प्रभावित नहीं करते। यह सच है कि बच्चे इच्छा और रुचि के साथ काम करते हैं। यह बात बड़ी स्फूर्तिदायक है। फिर भी उनकी उपलब्धियां विशेष नहीं हैं बल्कि इस बात का परिणाम है कि यह पद्धति ठीक से लागू नहीं हो पा रही है। इसके कारण निम्न लगते हैं,

1. छोटे बच्चों के लिए अच्छे शिक्षकों का अभाव जो पढ़ाई और अन्य गतिविधियों का निरीक्षण कर सकें, दोनों को समेकित कर सकें।

2. शिक्षण का स्तर। जहां तक समझा जा सका शिशुओं की शिक्षा प्रबुद्ध और प्रभावी है। कुछ बड़ी कक्षाओं में भी अच्छी पढ़ाई होती है। पर छोटी कक्षाओं में आठ, नौ और दस साल के बच्चों के लिए अच्छे शिक्षकों का अभाव है जो उन्हें प्रेरित और उत्साहित कर सकें। कुछ पुराने और औपचारिक तरीके भी काम में लिए जाते हैं। इस कारण जब बच्चे उस उम्र में आते है जब वे उन्नत काम के लिए प्रस्तुत हो तो शिक्षकों को काफी कठिनाइयां आती हैं। बड़े बच्चों की शिक्षा काफी अच्छी है और कुछ दृष्टान्तों में बेहतरीन भी कहलाई जा सकती है।

3. बच्चों को सही निर्देशन दे पाने की क्षमता का अभाव लगा। यह बात तो प्रशंसनीय है कि एक पंद्रह साल की लड़की यह स्वयं तय करे कि वह फ्रेंच व जर्मन पढ़ना चाहती है, जिनकी उसने पहले उपेक्षा की थी। पर हर सप्ताह दो कक्षा जर्मन की और तीन फ्रेंच की पढ़ने के बाद उससे यह अपेक्षा रखना गैर जिम्मेदाराना है कि वह इन भाषाओं में दक्षता पा सकेगी। उसके दृढ़ संकल्प के बावजूद उसकी प्रगति धीमी थी। ज़ाहिर है उसे इन विषयों पर इससे अधिक समय बिताने की अनुमति दी जानी चाहिए। निरीक्षकों को लगा कि जो बच्चे अपने काम की स्वयं योजना बनाते हैं उनके लिए ट्यूटोरियल जैसी पद्धति अपनानी चाहिए।

4. एकान्त का अभाव। "समरहिल जैसी जगह में पढ़ाई करना आसान नहीं हैं" ये शब्द प्रधानाध्यापक के हैं। समरहिल गतिविधियों का गढ़ है। बच्चों का ध्यान और उनकी रुचि को आकर्षित करने के लिए वहां बहुत कुछ है। किसी बच्चे का अपना निजी कमरा नहीं हैं

न ही अध्ययन के लिए अलग से कोई कमरे हैं। सच है कि जिसने पढ़ना तय कर ही लिया हो वह कोई न कोई जगह अपने लिए ढूंढ सकता है पर इसके लिए जिस संकल्प शक्ति की ज़रूरत हैं वह बच्चों में बिरले ही मिलेगी। सोलह वर्ष की आयु के बाद स्कूल में कम बच्चे रहते है, यद्यपि इस पर कोई प्रतिबंध नही हैं। समरहिल के कुछ बच्चे बेहद क्षमतावान और बुद्धिमान हैं तथा इस बात में शंका है कि उन्हें बौद्धिक विकास के लिए जितना चाहिए वह उन्हें यहां मिल पा रहा है।

पर साथ ही जहां कहीं शिक्षण स्तर अच्छा है वहां कुछ बेहतरीन काम भी हो रहा है। कला यहां उत्कृष्ट है। समरहिल के बच्चों व अन्य सामान्य स्कूलों के बच्चों के चित्रों में कोई विशेष अंतर ढूंढ पाना कठिन होगा। पर किसी भी मानदण्ड से देखें उनका काम अच्छा था। हस्तकलाओं में भी विविधता व श्रेष्ठता नज़र आई। निरीक्षण के दौरान एक भट्टी-निर्माण का काम चल रहा था। और कई बेहतरीन मिट्टी के बर्तन उसमें पकने को तैयार थे। पैर से चलाया जाने वाला करघा एक और शिल्प की संभावनाओं को साकार करेगा।

लेखन में भी काफी रचनात्मक काम हो रहा है। इसमें एक दीवार सामाचार पत्र शामिल है। बच्चों के लिखे कई नाटक हर सत्र में मंचित होते हैं। नाटकों की काफ़ी चर्चा हुई, पर क्योंकि उनकी पाण्डुलिपियां संभाल कर नहीं रखी जातीं, उनकी गुणवत्ता का आकलन करना असंभव था। कुछ समय पहले मैकबैथ का मंचन किया गया था, उसके लिए मंच सज्जा व वेशभूषा आदि स्कूल में ही तैयार किए गए थे। रोचक यह था कि मैकबैथ का मंचन बच्चों की इच्छा से किया गया था। स्वयं प्रधानाध्यापक बच्चों के लिखे नाटकों का मंचन ही पसंद करते हैं।

शारीरिक शिक्षा स्कूल के सिद्धान्तों के अनुरूप होती है। कोई भी खेल या व्यायाम अनिवार्य नहीं हैं। फुटबॉल, क्रिकेट, और टेनिस उत्साह से खेले जाते हैं। फुटबॉल की बारीकियां बच्चे समझते हैं क्योंकि शिक्षकों में एक फुटबॉल के विशेषज्ञ हैं। बच्चे शहर के दूसरे स्कूलों के साथ मैच आयोजित करते हैं। जिस दिन निरीक्षक पहुंचे, पड़ौस के स्कूल के साथ एक क्रिकेट मैच चल रहा था। पता चला कि समरहिल का सबसे बढ़िया खिलाड़ी उसमें शामिल नहीं हुआ क्योंकि उन्हें पता चला कि विपक्षी दल का सबसे अच्छा खिलाड़ी अस्वस्थ हैं।

कमरों से बाहर काफ़ी समय गुज़ारा जाता है और बच्चे सक्रिय व स्वस्थ जीवन बिताते हैं। यह नज़र भी आता है। औपचारिक शारीरिक शिक्षा के अभाव से उन्हें कितनी हानि दरअसल हो रही है यह तो विशेषज्ञों द्वारा बारीक जांच से ही पता चल सकता है।

परिसर

स्कूल जिस पसरे हुए परिसर में स्थित है वह बच्चों को मनोरंजन के तमाम अवसर देता है। मुख्य भवन, जो पहले निजी रिहायशी मकान था, में स्कूल के लिए एक हॉल, खाने का कमरा, बीमार बच्चों के लिए कमरे, कला कक्ष, एक छोटा हस्तकला कक्ष, और लड़कियों के सोने के कमरे हैं। सबसे छोटे बच्चे एक अलग भवन में सोते हैं जहां उनके पढ़ने की कक्षा भी है। बड़े बच्चों के सोने के कमरे और बाकी कक्षाएं बाग में झोपड़ियों में हैं। वहीं कुछ शिक्षकों के कमरे भी हैं। इन सभी कमरों के दरवाजे बाग में खुलते हैं। पढ़ने के कमरे छोटे हैं, पर क्योंकि पढ़ाई छोटे समूहों में ही होती है, वे पर्याप्त हैं। इनमें से एक सोने का कमरा बच्चों व शिक्षकों की मेहनत से बना है। दरअसल उसे एक अस्पताल की तरह बनाया गया था जिसकी अब तक कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है। सामान्य मानदण्डों से देखें तो रिहाइशी व्यवस्था आदिम किस्म की है पर स्कूल का स्वास्थ्य रिकॉर्ड अच्छा है। अत: इस व्यवस्था को संतोषजनक माना जा सकता है। नहानघर पर्याप्त संख्या में हैं।

बाग में पसरा यह परिसर पहली नज़र में असाधारण रूप से आदिम और सार्वजनिक लगता है पर इससे एक स्थाई हालीडे (छुट्टी) शिविर का सा वातावरण बनता है, जो इस स्कूल की विशेषता है। साथ ही आने-जाने वाले लोगों से परेशान हुए बिना बच्चे अपनी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। निरीक्षण के दिन भी कई मेहमान मौजूद थे।

शिक्षक

शिक्षकों को रहने-खाने की व्यवस्था के साथ आठ पाउंड का मासिक वेतन दिया जाता है। ऐसे स्त्री-पुरुष तलाश पाना, जो न केवल स्कूल के सिद्धान्तों में विश्वास करते हों बल्कि इतने परिपक्व व संतुलित हों कि वे बच्चों के साथ समानता के स्तर पर रह सकें, जो शैक्षणिक योग्यताएं रखते हों और कुशल शिक्षक हों, तब उनको सिर्फ आठ पाउंड के वेतन पर काम करने को रजामंद करना, प्रध ानाध्यापक के लिए ज़रूर एक कठिन काम होगा। समरहिल में काम करने की सिफारिश अधिकांश लोग नहीं करते। और फिर विश्वास, नि:स्वार्थता, दृढ़ चरित्र और क्षमताओं का यह आवश्यक मिश्रण खोज पाना काफ़ी कठिन भी हैं यह पहले ही कहा जा चुका है, कि स्कूल की सभी मांगों की पूर्ति यहां के शिक्षक नहीं कर पाते। फिर भी अन्य निजी स्कूलों, जहां शिक्षकों को अधिक वेतन दिया जाता है, की तुलना में ये शिक्षक कही बेहतर हैं। इनमें एक एडिनबर्ग से अंग्रेजी में एम.ए. (ऑनर्स) हैं, एक लिवरपूर से एम.ए. व एक बी.एस.सी. हैं, एक कैम्ब्रिज से हैं, एक शिक्षक लंदन से फ्रेंच व जर्मन में विशेषज्ञता प्राप्त हैं, कैम्ब्रिज से इतिहास में एक बी.ए. डिग्रीधारी हैं। चार शिक्षकों ने शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इसमें कला व हस्तकला शिक्षक शामिल नहीं हैं जिनके पास विदेशी योगयताएं है और जो सबसे बेहतरीन शिक्षकों में हैं।

यद्यपि कई जगह विशेष प्रयास करने की ज़रूरत हैं, वर्तमान शिक्षक कमज़ोर नहीं हैं। अगर उन्हें कुछ प्रशिक्षणों से जुड़ने का, अन्य स्कूलों को देखने का, अवसर मिले तो उनका नज़रिया व्यापक व ताजा हो सकेगा और उनका प्रदर्शन और बढ़िया हो सकेगा। पर साथ ही यह आशा रखना भी कठिन है कि सालाना 96 पाउंड के वेतन पर स्कूल अच्छे शिक्षकों को आकर्षित कर सकेगा। समस्या का सामना करना ही होगा।

प्रधानाध्यापक की अटूट आस्थाएं है और वे निष्ठावान व्यक्ति हैं। उनका विश्वास और धैर्य असीमित ही होगा। उनमें वह ताकत है जो बिरले मिलती हैं। वे दृढ़ व्यक्तित्व के बावजूद किसी पर हावी नहीं होते। उन्हें उनके स्कूल में देखने पर उनके प्रति श्रद्धा जगती ही हैं फिर चाहे कोई उनसे असहमत हो या फिर उनके विचारों को नापसंद करता हो। उनका स्वभाव विनोदी है मानवतावादी है और वे कुशाग्र हैं। वे किसी भी स्थिति में एक बेहतरीन प्रधानाध्यापक होते। उनके सुखी पारिवारिक जीवन में बच्चे भी भागीदार हैं। इस उदाहरण से उतना ही लाभ होता होगा जितना किसी दूसरे को हो सकता है। वे शिक्षा का व्यापक अर्थ लेते है। उनके लिए शिक्षा जीवन को प्रचुरता से जीना सीखना हैं इस रिपोर्ट में की गई कुछ आलोचना से वे सहमत भी हो सकते हैं। फिर भी उनका आग्रह यही रहेगा कि स्कूल का आकलन यहां सिखाई गई कौशलों या क्षमताओं के आधार पर न हो कर इस बात से किया जाए कि वहां बच्चों को किस तरह विकसित होने दिया जाता हैं। आकलन के आधार पर कहा जा सकता है कि :

1. बच्चे बेहद जीवन्त और उत्साह से भरे हैं। ऊब और तटस्था का नामो-निशान नहीं है। संतोष और सहिष्णुता का वातावरण स्कूल में है। जिस स्नेह से स्कूल के पुराने छात्र इसे याद करते हैं वह इसकी सफलता का द्योतक है। स्कूल सत्र समाप्ति पर जो नाटक व नृत्य आदि होते हैं उसमें तकरीबन तीस बच्चे उपस्थित होते है। और कई तो छुट्टियों में भी यही रहते हैं।

यहां शायद यह जोड़ना उचित होगा कि स्कूल में पहले "समस्यात्मक बच्चे ही दाखिला लेने आते थे। पर अब समाज के सभी तबकों से सब तरह के बच्चे दाखिल होते है।"

2. बच्चों का आचरण आनंददायक है। आचरण के स्वीकृत मानदण्डों में शायद कभी-कभार कोई त्रुटियां नज़र आती हैं। पर उनका दोस्ताना व्यवहार, उनकी सहजता, उनमें झिझक और शर्म का अभाव ऐसे गुण है। जिनसे उनके साथ रिश्ता बनाना बड़ा आसान है।

3. पहल करने की इच्छा, जिम्मेदारी और ईमानदारी की भावना आदि स्कूली पद्धति स्वत: प्रोत्साहित करती है, और जहां तक समझा जा सकता है ये सभी गुण यहां के छात्र-छात्राओं में पनप रहे हैं।

4. जो प्रमाण मिले हैं वे यह नहीं सुझाते कि स्कूल से निकलने के बाद समरहिल के छात्र-छात्राएं सामान्य समाज में घुलमिल नहीं पाते। जिस तरह की सूचनाएं नीचे दी जा रही हैं उनसे पूरी कहानी तो पता नहीं चलती पर यह संकेत तो मिलता ही है कि समरहिल की शिक्षा, सफलता के विरुद्ध नहीं है। यहां के पूर्व छात्र-छात्राएं सेना की इंजिनियरिंग शाखा में कप्तान हैं, एक क्वॉर्टरमास्टर सार्जेंट है, एक बॉम्बर पायलट है, एक स्क्वॉर्डन लीडर है, एक नर्सरी की नर्स, एक ऍयर होस्टेस, एक क्लैरिनेट वादिका, एक बैले डांसर, एक रेडियो ऑपरेटर, एक बड़ी कंपनी में बाजार शोधकर्ता है, एक लघु कथा लेखक है जिसकी कहानियां राष्ट्रीय समाचार पत्रों में छपती हैं। स्कूल के बाद पूर्व छात्र-छात्रों ने विविध डिग्रियां हासिल की हैं, कैम्ब्रिज से एफ.ए. आनर्स, स्कॉलर रॉयल कॉलेज ऑफ आर्टस, लंदन से बी.एस.सी. प्रथम श्रेणी ऑनर्स, मैनचेस्टर आधुनिक भाषा की डिग्री आदि, आदि।

5. प्रधानाध्यापक की शिक्षा दृष्टि स्कूल को एक ऐसे शैक्षणिक संस्थान का रूप देते हैं जहां मूलभूत काम बच्चों के रुचियों के अनुरूप होता है और कक्षा में हो रहा कार्य, परीक्षा की आवश्यकताओं से निर्देशित नहीं होता। ऐसा शैक्षणिक वातावरण बनाना जहां विद्वता पनप सके अपने आप में उपलब्धि है। पर दरअसल वह पनप नहीं रही। इसका एक अवसर खो रहा है। सभी स्तरों पर बेहतर शिक्षण, खासकर छोटे बच्चों के संदर्भ में बेहतर शिक्षण से यह पनप सकेगी। तभी यह रोचक प्रयोग स्वयं को सिद्ध कर सकेगा।

शिक्षा सिद्धान्तों और विधियों को लेकर कुछ शंकाएं हैं। स्कूल को करीब से और एक अर्से तक जानने पर संभवत: इनसे कुछ शंकाएं दूर हो सकेंगी। संभवत स्कूल इनमें से कुछ स्वयं हटाए और कुछ को और गहराए। पर इस तथ्य में कोई शक नहीं है कि एक बेहद रोचक शैक्षिक शोध का प्रयास यहां चल रहा है, जिसे सभी शिक्षाविदों को देखना चाहिए।

निरीक्षकों की रिपोर्ट पर टिप्पणियां

हमारा सौभाग्य था कि जो दो निरीक्षक हमारे यहां आए वे उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। हमने तुरंत ही मिस्टर कहना छोड़ा। उनके दो दिनों की यात्रा के दौरान हमारी तमाम दोस्ताना बहसें हुईं।

मुझे लगा कि निरीक्षकों को इस बात की आदत होती है कि वे किसी भी कक्षा में जाकर फ्रेंच की किताब उठाकर छात्रों से सवाल करें और तब यह जानने की कोशिश करें कि छात्र दरअसल कितना जानते हैं। मैंने कहा कि इस तरह का प्रशिक्षण व अनुभव एक ऐसे स्कूल के आकलन में निरर्थक रहेगा जहां पाठ, मुख्य मानदण्ड ही नहीं हों। मैंने एक निरीक्षक से कहा "आप समरहिल का निरीक्षण कर ही नहीं सकते क्योंकि हमारा मानदण्ड है आनंद, ईमानदारी, संतुलन व सामजिकता।" उन्होंने मुस्करा कर कहा कि वे फिर भी कोशिश करेंगे। हमारे निरीक्षकों ने स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल बनाने की अद्‌भुत क्षमता दर्शाई। यह भी स्पष्ट लगा कि उन्हें इस प्रक्रिया में मज़ा आया।

अजीब-अजीब चीजों पर उनका धयान गया। एक ने कहा 'सालों साल कक्षाओं में घुसते ही बच्चों को उछल कर सावधान होते देखने के बाद यह इस बात से एक मजेदार धक्का लगा कि बच्चों ने हमारी और कोई धयान ही नहीं दियां सच में हमारा सौभाग्य था कि वे दोनों निरिक्षण के लिए आए थे। पर रिपोर्ट की ओर लौटें ''

"....निरीक्षकों को स्कूल की वित्तीय समस्याओं से आश्चर्य हुआ....." इसका जवाब यह है लोगों ने अपने बकाया कर्जे नहीं

चुकाए हैं। रिपोर्ट में में वार्षिक शुल्क 120 पाउंड का उल्लेख है, तब से हमने बढ़ती मंहगाई की स्थिति से निपटने के लिए औसतन 250 पाउंड लेने शुरू किए हैं। पर इसके बावजूद भवनों की मरम्मत, नई सामग्री की खरीद आदि के लिए कुछ नहीं बच पाता। एक तो हमारे यहां तोड़-फोड़ भी कठोर अनुशासन वाले स्कूलों की तुलना में अधिक होती है। क्योंकि हम बच्चों को गिरोह-मानसिकता के चरण से गुजरने देते हैं। परिणामस्वरूप हमारे फर्नीचर का काफ़ी नुकसान होता है। रिपोर्ट में सत्तर बच्चों का उल्लेख है, पर आज यह संख्या घटकर पैंतालीस रह गई है।

रिपोर्ट में बीच के उम्र के बच्चों की कमज़ोर पढ़ाई का जिक्र है। यह समस्या हमेशा रही है। अगर बेहतरीन शिक्षक भी होते, तब भी अन्य पब्लिक स्कूलों में जो पढ़ाई करवाई जाती है, वह करवाना कठिन होता क्योंकि बच्चों को दूसरे तमाम काम करने की आज़ादी है। अगर दूसरे स्कूलों में भी दस-बारह साल के बच्चों को पाठ पढ़ने के बदले पेड़ों पर चढ़ने या गढ्ढे खोदने का विकल्प मिलता तो उनके स्तर भी हमारी तरह होते। हम यह स्वीकारते हैं कि हमारे छात्र-छात्राएं एक ऐसे चरण से गुजरते हैं जब उनका शैक्षणिक स्तर गिरता है, क्योंकि हमारी मान्यता है कि जीवन के उस चरण में उनके लिए खेलना, पढ़ने से अधिक महत्वपूर्ण है।

अगर हम यह भी मान लें कि छोटे बच्चों का पढ़ाई में पिछड़ने का महत्व है, तो भी सच्चाई यह है कि साल भर बाद यही बच्चे जब बड़े बच्चों की जमात में आते हैं, वे ऑक्सफोर्ड परीक्षाएं अच्छे अंक ले पास करते हैं। हमारे छात्रों को उन्तालीस विषयों में जांचा गया। उनका परिणाम 70 प्रतिशत से अधिक था। ज़ाहिर है कि जूनियर छात्र के रूप में उसकी जो भी कमी थी वह सीनियर कक्षाओं में नहीं रही।

मुझे स्वयं देर से शुरू करने वाले बच्चे पसंद है। चार साल की उम्र में जो बच्चे मिल्टन कंठस्थ कर सुना सकते हैं, उन्हें चौंतीस वर्ष की उम्र में शराबी और कमचोर बनते भी मैंने देखा है। मुझे ऐसे लोग अच्छे लगते हैं जो त्रेपन साल की यह कहते हैं कि उन्हें यह पता नहीं कि उसे जीवन में उन्हें क्या बनना है। मुझे लगता है कि जो बच्चा सात साल की उम्र में यह जानता है कि वह भविष्य में क्या बनना चाहता है तो बड़े होने पर उसका दृष्टिकोण निहायत रूढ़िवादी रहेगा।

रिपोर्ट में लिखा है "ऐसी परिस्थितियां बनाना जिसमें शैक्षणिक श्रेष्ठता पनप सके अपने आप में एक उपलब्धि है, पर वह श्रेष्ठता दरअसल पनप नहीं रही है और यों एक अवसर खो दिया जा रहा है।" रिपोर्ट का यह अकेला अनुच्छेद है जिसमें दोनों निरीक्षक अपने शैक्षणिक आग्रह से ऊपर नहीं उठ सकें हैं। पर हमारी पद्धति तब कारगर होती है जब बच्चा स्वयं पढ़ाई करना चाहता है, जैसा हमारे परीक्षा परिणामों से स्पष्ट है। संभवत: निरीक्षकों का अर्थ यह रहा हो कि छोटे बच्चों का बेहतर शिक्षण स्तर अधिक बच्चों को मैट्रिक परीक्षाएं लेने को प्रेरित करेगा।

क्या वह समय आ नहीं चुका है जब हम पढ़ाई-लिखाई को शिक्षा में उसकी सही जगह पर रखें? मुझे लगता है कि शिक्षा में पढ़ाई पर जो ज़ोर दिया जाता है वह अनुचित है। कभी सोचता हूं कि समरहिल के कुछ पूर्व छात्र-छात्राओं पर जो बाद में ड्रेस डिजाइनर, बैले नर्तक, हेयर ड्रेसर, संगीतज्ञ, नर्स, मैकेनिक, इंजिनियर या दर्जन भर कलाकार बने उनपर अगर पढ़ाई थोपी जाती तो उनका क्या हश्र होता।

फिर भी यह रिपोर्ट न्यायपूर्ण है, उदार है। मैं इसे इसलिए छाप रहा हूं ताकि पढ़ने वाले समरहिल पर मेरे अलावा दूसरे विचार भी जानें। यह ध्यान रहे कि रिपोर्ट में किसी प्रकार की मान्यता समरहिल को नहीं दी गई है। यह मान्यता अगर मिलती तो व्यक्तिगत स्तर पर दो कारणों से लाभ होता। एक तो हमारे शिक्षकों को राजकीय अनुदान योजना का फ़ायदा मिलता, और अभिभावक अपने बच्चों के लिए स्थानीय काउन्सिल से वित्तीय सहायता ले पाते।

मैं यहां यह भी दर्ज करना चाहूंगा कि समरहिल को शिक्षा मंत्रालय से कभी परेशानी नहीं हुई है। जब भी मैंने प्रश्न पूछे हैं या स्वयं मंत्रालय गया हूं मेरे साथ शिष्ट और दोस्ताना व्यवहार किया गया है। एक ही अवसर था जब युद्ध के तुंरत बाद मंत्रालय ने एक स्कैंडिनेवियन अभिभावक को पूर्व निर्मित सामग्री आयात कर एक निर्माण करने की अनुमति नहीं दी।

जब मैं यूरोपीय सरकारों को उनके देशों में चल रहे निजी स्कूलों में आधिकारिक रुचि लेता देखता हूं तो मुझे खुशी होती है कि मैं एक ऐसे देश में रहता और काम कर रहा हूं जो निजी उमक्रमों को पनपने देता है। मैं अपने बच्चों के प्रति सहनशील हूं, मंत्रालय मेरे स्कूल के प्रति सहनशीलता बरतता है। मैं संतुष्ट हूं।

समरहिल का भविष्य

अब, जब मैं अपने छिहतरवें साल में हूं, मुझे लगता है मैं शिक्षा पर एक और किताब नहीं लिखने वाला, क्योंकि नया कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं होगा। फिर भी मुझे जो कहना है वह मेरे पक्ष में है। वह यह कि मैंने पिछले चालीस वर्ष बच्चों पर सिद्धान्त लिखते नहीं गुज़ारे हैं। मैंने जो कुछ लिखा है, वह अधिकतर बच्चों के साथ रहते हुए उनके अवलोकन पर आधारित है। यह सच है कि फ्रॉयड, होमर लेन, आदि ने मुझे प्रेरणा दी है, पर मैंने उस समय सिद्धान्तों को त्यागा है जब वास्तविकता ने इन विशेषज्ञों को गलत सिद्ध किया है।

लेखक का काम विचित्र होता है। रेडियो प्रसारण की तरह ही लेखक उन लोगों को संदेश भेजता है जिन्हें वह न देख न सकता है, न गिन सकता है। मेरे श्रोता-पाठक विशेष लोग रहे हैं। जिसे अधिकारिक रूप से 'जनता' कहा जाता है, वे नहीं जानते। बी.बी.सी. शिक्षा के किसी प्रसारण के लिए मुझे कभी आमंत्रित नहीं करेगी। कोई विश्वविद्यालय, मय मेरे खुद का विश्वविद्यालय एडिनबर्ग, मुझे कभी कोई मानद सम्मान नहीं देगा। जब मैं ऑक्सफर्ड या केम्ब्रिज छात्रों को भाषण देने जाता हूं तो कोई प्रोफेसर मुझे सुनने नहीं आता। दरअसल मुझे इन सभी बातों पर गर्व है। क्योंकि अगर मुझे अधिकारिक मान्यता मिली होती तो मैं भी पुरातनपंथी हो चला होता।

एक समय था जब मैं इस बात से नाराज़ होता था कि द लंदन टाइम्स कभी मेरे पत्र नहीं छापता है, पर आज मैं इस नामंजूरी को प्रशंसा मानता हूं।

मैं यह नहीं कह रहा कि कद्र पाने की इच्छा से मैं दूर हो गया हूं। पर आयु के साथ बदलाव आते हैं। खासकर मूल्यों में बदलाव आते

हैं। हाल में मैंने स्वीडिश लोगों को भाषण दिया, उसमें सात सौ श्रोता एक ऐसे हॉल में ठंसे थे जो छह सौ लोगों के लिए था। पर मेरे मन में उल्लास या घमंड का भाव नहीं पनपा। मैंने सोचा कि मैं इन चीजों के प्रति उदासीन बन चुका हूं। जब तक मैंने खुद से यह सवाल नहीं पूछा कि अगर वक्ताओं की संख्या केवल दस होती तो? जवाब मिला "मुझे बड़ा गुस्सा आता"। अर्थात अगर घमंड नहीं है, तो खीज का अभाव भी नहीं है।

उम्र के साथ महत्वाकांक्षा मर जाती है पर कद्र का मामला दूसरा ही है। मुझे ऐसी किसी किताब जिसका शीर्षक "प्रगतिशील स्कूलों का इतिहास" हो, देखना पसंद नहीं आता जिसमें मेरे प्रयासों को नज़रअंदाज किया गया हो। सच तो यह है कि मैं ऐसे किसी व्यक्ति से कभी नहीं मिला जो कद्र के प्रति उदासीन हो।

उम्र का एक पक्ष विनोदी भी है। मैं सालों से युवा वर्ग तक पहुंचने की कोशिश करता रहा हूं। युवा छात्र-छात्राओं, युवा शिक्षकों, युवा माता-पिता तक। क्योंकि मैंने उम्र को विकास में बाधा माना हैं पर अब जब मैं स्वयं बूढ़ा हो गया हूं, जिनके विरुद्ध बात करता रहा उनकी श्रेणी में आ गया हूं, तो मेरी भावनाएं बदली हैं। हाल में मैं केम्ब्रिज में तीन सौ छात्र को भाषण दे रहा था, मुझे लगा कि पूरे सभागार में मैं ही सबसे युवा हूं। सचमें लगा। मैंने उनसे कहा "मेरे जैसा वद्ध व्यक्ति आज़ादी के बारे में आकर बताए इसकी क्या ज़रूरत है?" दरअसल अब मैं युवावस्था और वद्धावस्था को बांट कर नहीं देखता। मेरा मानना है कि व्यक्ति के सोच का उसकी उम्र से खास लेना-देना नहीं है। मैं बाईस वर्ष के छोकरों को जानता हूं जो नब्बे साल के हैं और साठ साल के लोगों को भी जो बस बीस के ही हैं। यहां मैं ताज़गी, उत्साह, रूढ़िवादिता का अभाव जड़ता, और निराशावाद की बात कर रहा हूं।

मुझे पता नहीं कि उम्र के साथ मैं सौम्य बना हूं या नहीं। बेवकूफ लोगों को मैं अब कम झेल पाता हूं, उबाऊ बातचीत मुझे अधिक खिझाती है, लोगों के व्यक्तिगत इतिहास में मेरी रुचि नहीं है। दरअसल पिछले तीस वर्षों में मुझे इन्हें खूब झेलना पड़ा है। मुझे अब चीजों में भी रुचि नहीं रही, मुझे कुछ खरीदने की इच्छा नहीं होती। सालों से कपड़ों की सजी दुकानों की ओर मैंने झांका तक नहीं हैं यहां तक कि यूस्टन रोड पर मेरी पसंदीदा औजारों की दुकान भी मुझे आकर्षित नहीं करती।

यह सच है कि मैं उम्र के उस पड़ाव पर पहुंच चुका हूं कि बच्चों का शोर मुझे पहले से ज़्यादा थका देता है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि उम्र के साथ मेरे धीरज में कमी आई है। मैं अब भी किसी बच्चे को तमाम गल्तियां करते, वही पुरानी ग्रंथियों की फिर-फिर जीते देख सकता हूं, क्योंकि मेरा पक्का विश्वास है कि वह समय के साथ एक अच्छा नागरिक बनेगा। उम्र के साथ भय भी घटते हैं। पर यह भी सच है कि साहस भी कम होता जाता है। सालों पहले अगर कोई बच्चा यह धमकी देता कि उसकी बात नहीं मानी गई तो वह खिड़की से कूद जाएगा, तो मैं उसे कूदने को कह देता था। पर आज शायद मैं ऐसा नहीं कर सकूंगा।

एक सवाल अक्सर मुझसे पूछा जाता है कि "क्या समरहिल एक व्यक्ति का प्रयास नहीं है?" ऐसा कतई नहीं है। रोजमर्रा के काम में मेरी पत्नी, हमारे तमाम शिक्षक, उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना मैं हूं। यह स्कूल 'विशेष' इसलिए बना है क्योंकि यहां यह विचार लागू किया जा सका है कि बच्चे के विकास में बाधा न डालो, उस पर कोई दबाव न डालो।

क्या समरहिल विश्वविख्यात है? बिल्कुल नहीं। अगर उसके बारे में किसी को पता है भी, तो बस मुट्ठीभर शिक्षाविदों को। स्कैन्डिनेविया में इसकी ख्याति है। पिछले तीस सालों से नॉर्वे, स्वीडन, डेन्मार्क के छात्र-छात्राएं यहां आ रहे हैं, कभी-कभी तो एक बार में बीस तक। ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, कैनडा के भी छात्र आए हैं। मेरी किताबें कई भाषाओं में अनुदित हो चुकी हैं, जिनमें जापानी, हीब्रू, हिन्दुस्तानी व गुजराती शामिल हैं। जापान में समरहिल भी का कुछ प्रभाव है। तीस साल पहले शाइशी शिमोडा समरहिल आए थे जो जापान के जाने-माने शिक्षाविद् हैं। उनके द्वारा किए गए अनुवाद भी जापान में काफी बिके हैं। सुनता हूं टोक्यो के शिक्षक जब बैठकों में मिलते हैं तो हमारी शिक्षा पद्धति पर चर्चा करते हैं।

मैं अनुवादों, यात्राओं और पत्रों के तथ्य बिना किसी भ्रम के लिख रहा हूं। आप ऑक्सफर्ड स्ट्रीट में हजार लोगों को रोक कर यह पूछें कि 'समरहिल' क्या है तो शायद कोई भी व्सक्ति स्कूल के नाम तक से परिचित नहीं होगा। ज़ाहिर है कि खुद की महत्ता या महत्ता के अभाव को लेकर मन में विनोद का भाव होना चाहिए।

मुझे नहीं लगता कि समरहिल की शिक्षण पद्धति का दुनिया में इस्तेमाल होगा, अगर कभी हो तो ऐसा एक लंबे समय तक नहीं हो सकेगा। संभव है कि दुनिया एक बेहतर पद्धति ईजाद कर ले। कोई खोखला और घमंडी व्यक्ति ही यह सोच सकता है कि उसका काम शिक्षा में अंतिम काम है। पर यह तय है कि दुनिया को एक बेहतर शिक्षण पद्धति ढूंढनी ही होगी। क्योंकि राजनीति मानवता को नहीं बचाएगी। उसने कभी यह किया ही नहीं है। अधिकांश राजनैतिक समाचार पत्रों में हमेशा घृणा ही भरी रही है। लोग साम्यवादी इसलिए हैं क्योंकि वे अमीरों से घृणा करते हैं, इसलिए नहीं क्योंकि वे गरीबों से प्यार करते हैं।

हमारे परिवार प्यार और आनंद भरे किस तरह बन सकेंगे, जब वे एक ऐसे देश के किसी कोने में बसे हों, जिसके पास सामाजिक घृणा फैलाने के सैकड़ों तरीके हों। आप समझ रहे होंगे कि मैं शिक्षा को परीक्षाएं, कक्षाएं और पाठ पढ़ने की बात क्यों नहीं मानता। स्कूल मूल मुद्दे से बचते हैं। ग्रीक भाषा, गणित या इतिहास का ज्ञान हमारे घर-परिवारों को न तो अधिक प्रेममय बनातें हैं न ही हमारे, बच्चों को कुंठाओं व झिझक से छुटकारा दिला सकते और उनके माता-पिता को मानसिक रोगों से मुक्त बना सकता है।

समरहिल का अपना भविष्य महत्वपूर्ण नहीं है। पर समरहिल के मूल विचार का भविष्य मानवता के लिए महत्वपूर्ण है। नई पीढ़ियों को आज़ादी के साथ पनपने का मौका देना ज़रूरी है। आज़ादी देना ही प्रेम देना है। और प्रेम ही दुनिया को बचा सकता है।

खण्ड 2

बच्चों का पालन-पोषण

अनुशासित बच्चे

एक सांचे में ढला हुआ, अनुकूलित, अनुशासित, दमित, बालक यानी अमुक्त बच्चा, जिसका नाम है 'सेना' दुनिया के हर कोने में बसता है। वह हमारे शहर में, सामने वाली सड़क में रहता है। वह एक उबाऊ स्कूल में एक उबाऊ मंच पर बैठता है। बाद में वह किसी दफ्तर की उबाऊ मेज़ पर या फैक्ट्री की बेंच पर बैठता है। वह सहमा होता है, अधिकारियों की आज्ञा का पालन करता है, आलोचना से डरता है, उसमें सामान्य, परंपरावादी और सही बने रहने की कट्टर इच्छा होती है। उसे जो कुछ पढ़ाया गया है वह बिना सवाल किए स्वीकारता है। और बाद में वह अपनी तमाम ग्रंथियां अपनी कुंठाएं अपने बच्चों को विरासत में देता है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चे को अधिकतर मानसिक नुकसान उसकी ज़िंदगी के पहले पांच सालों में पहुंचता है। शायद यह कहना और भी सच हो कि पांच साल तो क्या शासद पहले पांच महीनों, पहले पांच सप्ताहें या पहले पांच मिनटों में भी बच्चे को ऐसी क्षति पहुंचाई जा सकती है जो ताउम्र उसे परेशान करती है।

अमुक्ति जन्म से ही प्रारंभ होती है, या कहे जन्म से भी पहले। अगर कोई दमित महिला अपने जकड़े हुए शरीर में गर्भधारण करती है तो उसकी जकड़न, उसके बच्चे पर क्या असर करती है यह भला कौन बता सकता है?

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि हमारी सभ्यता के सभी बच्चे जीवन-निंदा के वातावरण में जन्मते हैं। जो समयानुसार बच्चों को खिलाने-पिलाने की बात करते हैं वे मूलत: आनंद विरोधी हैं। वे शुरू से ही बच्चों को एक अनुशासित जीव बनाना चाहते हैं जो आनंद से पहले कर्तव्य को रखे।

हम एक सामान्य सरकारी स्कूल के बच्चे जॉन स्मिथ की जिंदगी पर विचार करें। उसके माता-पिता खुद तो कभी-कभार ही गिरजे जाते हैं, पर उनका आग्रह होता है कि जॉन हर इतवार संडे स्कूल (जहां धार्मिक शिक्षा दी जाती है) ज़रूर जाए। उसके माता-पिता ने पारस्परिक आकर्षण के कारण विवाह किया था। पर उनके स्वभावों के अंतर ने घर को एक बोझिल सी जगह में बदल दिया। दोनों में यदाकदा धीमी आवाज में बहस होती है। कुछ स्नेह भरे नाजुक पल भी हैं, उन्हें नन्हा जॉन स्वाभाविक मानता है। पर मां-बाप के बीच ऊंची आवाज में बहस उसके दिमाग को झिंझोड़ देती है। वह डर जाता है और रोता है। अकारण रोने के नाम पर उसकी पिटाई होती है।

उसका अनुकूलन शुरू से प्रारंभ हो गया था। समयबद्ध स्तनपान से वह काफ़ी कुंठित हुआ था। उसे भूख लगी होती थी, पर घड़ी कहती कि अभी घंटे भर की देरी है। उसे ढेरों कपड़ों में जकड़ा जाता था। वह ज़ोर से लतियाना चाहता, पर ऐसा कर नहीं पाता। भूख की कुंठा ने उसे अंगूठा चूसने पर मज़बूर किया। पर परिवार के डॉक्टर ने कहा कि यह गंदी आदत छुड़ानी चाहिए। मां को कहा गया कि वह या तो वह कमीज खींच कर उसके हाथ को ही बांध दे या कोई बदबूदार-कड़वी चीज उसके अंगूठे पर लगाए। जब तक वह लंगोट बांधने की उम्र में था उसके स्वाभाविक कामों में कोई परेशानी नहीं हुई। पर जब वह घुटनों से रेंगने लगा और फर्श गंदा करने लगा तो 'शैतान' और 'गंदी बात' जैसे शब्द घर में तैरने लगे। और यों उसे साफ रहना सिखाने की निष्ठुर शुरुआत हुई।

उसके प्रशिक्षण पर उसके संबंधियों और पड़ौसियों का भी प्रभाव था। मां और पिता सही होने को लेकर चिंतित रहते। इसलिए जब भी संबंधी या पड़ौसी आते, जॉन को सुप्रशिक्षित बच्चा बनकर दिखाना होता। जब आंटी उसे चॉकलेट देती तो उसे 'धन्यवाद' कहना पड़ता, मेज़ पर ढंग से खाना पड़ता और जब बड़े बातचीत करते उसे बीच मे नहीं बोलने का खास ध्यान रखना पड़ता।

उसकी इतवार की वेशभूषा दरअसल पड़ौसियों की पसंद से तय होती थी। प्रतिष्ठा के इस प्रशिक्षण का एक हिस्सा था झूठ बोलने की पेचीदा प्रणाली। यह ऐसी प्रणाली थी जिसका उसे आभास भी नहीं था। दरअसल उससे बचपन से ही झूठ बोलना शुरू हो चुका था। उसे कहा गया था कि ईश्वर उन शैतान बच्चों को प्यार नहीं करता जो गाली देते हैं, अगर वह ट्रेन में भाग-दौड़ मचाएगा तो टिकट जांचने वाला उसे पीटेगा।

जीवन के बारे में उसकी जिज्ञासा के जवाब में भी उसे झूठ ही मिला। ये झूठ इतने प्रभावी थे कि जीवन और जन्म को लेकर उसकी जिज्ञासा ही समाप्त हो गई।

बौद्धिक रूप से जॉन का विकास सामान्य था। वह आसानी से सीख लेता था, इसलिए बेवकूफ शिक्षकों की तीखी टिप्पणियों या सज़ा से वह बच गया। स्कूल में उसने थोड़ा बहुत अनावश्यक ज्ञान पाया और ऐसी संस्कृति में ढला जो घटिया अखबारों, फिल्मों या जासूसी कहानियों से संतुष्ट की जा सकती थी।

जॉन स्मिथ का एक अमीर ममेरा भाई रेगिनाल्ड वर्थिंग्टन निजी स्कूल में पढ़ा। पर मूलत: उसका विकास भी गरीब जॉन जैसा ही था। उसने भी जीवन में जो कुछ दोयम दर्जे का था उसे स्वीकारना सीखा और वही यथास्थिति की गुलामी पाई और वही प्रेम व आनंद को नकारना सीखा।

क्या जॉन और रेगिनाल्ड का यह चित्रण एक-तरफा व्यंग चित्रण है? पूरी तरह नहीं। पर मैंने पूरी स्थिति का चित्रण नहीं किया है। मैंने दोनों की मानवीय उष्मा को छोड़ दिया हैं, वह मानवीयता जो भयानक से भयानक चारित्रिक अनुकूलन के बावजूद बची रहती है। जीवन में हमें ज़्यादातर स्मिथ और वर्थिंग्टन जैसे लोग ही मिलते हैं। वे कमोबेश अच्छे, दोस्ताना लोग होते हैं, बचकानी आस्थाओं और अंधविश्वास से भरे, बच्चों का सा विश्वास और निष्ठा लिए। वे और उन जैसे तमाम दूसरे नागरिक देश के नियम बनाते हैं और मानवीयता की मांग करते हैं। ये ही वे लोग हैं जो मांग करते हैं कि पशुओं को मारते समय मानवीयता बरती जाए, अपने पालतू जानवरों की लोग सही देखभाल करें। पर जब मनुष्य, मनुष्य के प्रति अमानवीय होता है तब वे बिखर से जाते हैं। वे बिना सोचे समझे एक क्रूर दण्ड संहिता अपनाते हैं, और युद्ध के दौरान लोगों का मरना स्वाभाविक मान लेते हैं।

जॉन उसका अमीर ममेरा भाई दोनों ही सहमत हैं कि प्रेम व विवाह के नियम बेवकूफी भरे, क्रूर और घृणास्पद हों। प्रेम के मामले में वे इससे भी सहमत हैं कि पुरुषों के लिए एक कानून हो और औरतों के लिए दूसरा। दोनों ही यह मांग करते हैं कि जिन लड़कियों से उनका विवाह हो, वे कुंवारियां हों। पर अगर उनसे पूछा जाए कि उनका खुद का कौमार्यभंग हुआ है या नहीं, तो उनकी भौं तन जाती हैं वे

कहते हैं "पुरुषों की बात अलग है।"

दोनों ही पितृसत्तामक राज के प्रबल समर्थक हैं, फिर चाहे उन्होंने यह शब्द सुना हो या नहीं। वे दोनों पितृसत्तात्मक राज के ऐसे उत्पाद हैं जिनकी, उसे आगे बरकरार रखने के लिए ज़रूरत है। उनकी भावनाएं व्यक्तिगत भावनाओं के बदले भीड़ को भावनाएं होती हैं।

जिस स्कूल से वे घृणा करते थे उसे छोड़ने के सालों बाद वे कहते हैं "स्कूल में मेरी पिटाई हुई थी, और उसका मुझे बड़ा फायदा हुआ।" और वे अपने बच्चों को भी उसी या उस जैसे किसी स्कूल में दाखिल करवाते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे अपने पिता की सत्ता को बिना रचनात्मक विद्रोह के स्वीकारते हैं। और यों पितृसत्ता की परिपाटी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती जाती है।

जॉन स्मिथ के चित्रण को पूरा करने के लिए मुझे उसकी बहन मेरी का भी संक्षिप्त परिचय देना चाहिए। संक्षिप्त इसलिए क्योंकि जिस दमनकारी वातावरण में वह पली-बढ़ी है वह है, ठीक वैसा ही है जिसमें जॉन का दम घुटता रहा है। पर उसके लिए कुछ और विशेष बाधाएं हैं। जिनका जॉन को सामना नहीं करना पड़ा। पितृसत्तात्मक समाज में उसकी स्थिति नीची है, और यह समझने, स्वीकारने के लिए उसे प्रशिक्षित किया गया है। उसे घरेलू काम में मदद करनी पड़ती है, पर जॉन उस समय खेल या पढ़ सकता हैं वह यह भी जल्दी ही सीख लेती है कि जब वह नौकरी करेगी तो उसे पुरुषों से कम वेतन मिलेगा।

पुरुषों के बनाए समाज में अपनी हीन स्थिति के विरुद्ध मेरी सामान्यत: विद्रोह नहीं करती। पुरुष इसके लिए कुछ क्षतिपूर्ति भी करता है, फिर चाहे वह सांकेतिक ही क्यों न हो। उसके प्रति सही व्यवहार किया जाता है, स्त्री न बैठे तो पुरुष भी नहीं बैठता। मेरी को परोक्ष रूप से यह सिखाया जाता है कि उसका मुख्य काम है बेहद खूबसूरत लगना, परिणामस्वरूप उसकी किताबों और स्कूल पर जितना खर्च किया जाता है उसे कई गुना अधिक कपड़ों और श्रृंगार प्रसाधनों पर होता है।

मेरा मानना है कि अमुक्त शिक्षा से गुज़रे लोग जीवन को भरपूर नहीं जी सकते। ऐसी शिक्षा भावनाओं की उपेक्षा करती है। भावनाएं परिवर्तनशील होती हैं, उन्हें अभिव्यक्त करने के अवसरों का अभाव छिछोरेपन, कुरूपता और घृणा में बदलता है। हमारी शिक्षा का सरोकार सिर्फ दिमाग से रहता है। जबकि वास्तविकता यह है कि अगर भावनाओं को, सचमें मुक्त रहने दिया जाए तो बौद्धिक विकास स्वत: ही हो जाता है।

मनुष्य की त्रासदी यही है कि ठीक एक कुत्ते की तरह उसके चरित्र को भी गढ़ा जा सकता है पर यह आप बिल्ली के साथ नहीं कर सकते जो, कुत्ते से श्रेष्ठ जानवर है। आप कुत्ते में अपराध बोध जगा सकते हैं पर बिल्ली में नहीं। फिर भी लोगों को कुत्ते पसंद हैं क्योंकि वे आज्ञा मानते हैं और चाटुकारिता में दुम हिलाते हैं, जो उसके मालिक की श्रेष्ठता और महत्ता को पुष्ट करता है।

शिशु का प्रशिक्षण कुत्तों के प्रशिक्षण जैसा ही होता है। एक पिटा हुआ बच्चा आज्ञाकारी व दीन व्यस्क बनता है, ठीक वैसे जैसे एक पिटा हुआ पिल्ला। हम कुत्तों को अपनी सुविधा के अनुसार प्रशिक्षित करते हैं, वैसे ही अपने बच्चों को भी करते हैं। शिशुशाला में मानवीय कुत्तों को साफ रहना पड़ता है, अधिक भौंकने की इज़ाज़त नहीं होती, सीटी की आवाज का अनुपालन करना पड़ता है। वे तब ही खाना खा सकते हैं जब हमें उन्हें खिलाने में सुविधा हो।

जब 1935 में बर्लिन के टेम्पलहॉफ में हिटलर नामक प्रशिक्षक ने सीटी बजाई तो मुझे हज़ारों हज़ार आज्ञाकारी कुत्ते दुम हिलाते दिखे।

पैनसिल्वेनिया के महिला मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में कुछ साल पहले गर्भवती माताओं के लिए कुछ निर्देश छापे गए थे। उनमें से कुछ मैं उधदृत करना चाहूंगा।

"अंगूठा और उंगलियां चूसने की आदत रोकने के लिए बच्चों का पूरा हाथ कार्डबोर्ड की ट्यूब में बांध देना चाहिए ताकि वह कोहनी मोड़ कर मुंह तक अंगूठा या उंगलियां न ले जा सके।"

"गुप्तांगों को साफ रखना चाहिए ताकि कोई बच्चे को असुविधा न हो, रोग न हो या गलत आदत न पड़ जाए।"

मैं बच्चों के पालन-पोषण के गलत तौर-तरीकों के लिए चिकित्सकों को जिम्मेदार मानता हूं। दरअसल चिकित्सक इस बारे में सलाह देने के लिए प्रशिक्षित भी नहीं होता। फिर भी कई माताओं की नज़र में वह खुदा ही होता है। चिकित्सक ही समयबद्ध खाना खिलाने की बात करते हैं, उंगली या अंगूठा चूसना बंद करवाते हैं, दूसरे बच्चों से खेलना निषिद्ध करते हैं और बच्चों की मर्जी के आड़े आने की सलाह देते है।

जो बच्चा समस्यात्मक है वह ज़रूर ऐसा बच्चा है जिस पर स्वच्छता और दमन का दबाव है। वयस्क यह मान कर चलते हैं कि बच्चों को ऐसा आचरण सिखाना चाहिए ताकि वे बड़ों को यथा संभव शांति से जीने दें। यही कारण है कि आज्ञाकारिता, आचरण और दब्बूपन पर इतना बल दिया जाता है।

हाल ही में मैंने एक मां को देखा जो अपने तीन साल के बच्चे को अपने घर के बाग में छोड़ कर अंदर गई। बच्चे के कपड़े साफ थे। वह मिट्टी में खेलने लगा और यों कपड़े कुछ गंदे हो गए। मां दौड़ी हुई आई उसे पीटा, अंदर ले जाकर कपड़े बदले और नए कपड़ों में उसे रोता छोड़ गई। दसेक मिनट गुजरे होंगे कि उसने कपड़े फिर गंदे कर लिए। वही प्रक्रिया दोहराई गई। मैंने सोचा कि जाकर उस मां से कहूं कि उसका बच्चा उससे ताउम्र नफरत करता रहेगा। यह भी संभव है कि वह जीवन से ही घृणा करने लग जाए। पर मुझे यह अहसास हुआ कि जो कहूंगा वह उन्हें समझ ही नहीं आएगा।

मैं जब भी कस्बे या शहर जाता हूं मैं किसी तीन साल के बच्चे को लुढ़क कर गिरते देखता हूं। और तब यह देख मेरा दिल बैठ जाता है कि मां उस बच्चे को गिरने पर पीटती है।

प्रत्येक रेल यात्रा के दौरान एक न एक मां अपने बच्चे से कहती है अगर तुम बाहर गलियारे में गए तो कंडक्टर तुम्हें पकड़ कर ले जाएगा। अधिकांश बच्चों का पोषण ऐसे ही झूठों और अनभिज्ञता से जन्मे निषेधों द्वारा किया जाता है।

कई माताएं जो घर में बच्चों के साथ ठीक-ठाक व्यवहार करती हैं, घर से बाहर उन पर बरसती और पीटती हैं। क्योंकि वे पड़ौसियों

की राय से डरती हैं। बचपन से ही बच्चे को इस पागल समाज के अनुरूप बनने पर मजबूर किया जाता है।

एक बार मैं इंग्लैण्ड के समुद्रतट पर बसे एक कस्बे में भाषण दे रहा था। मैंने कहा "क्या आप माताएं यह समझती हैं कि आप जितनी बार बच्चे को मारती हैं आप दरअसल यह जताती हैं कि आप बच्चे से नफ़रत करती हैं?" इसकी ज़ोरदार प्रतिक्रिया हुई। मुझ पर वे चिल्लाईं। बाद में मैंने सवाल किया "हम अपने घरों का नैतिक व धार्मिक वातावरण कैसे सुधार सकते हैं?" श्रोता फुफकारने लगे। मैं सकते में आ गया। क्योंकि अमूमन जब मैं भाषण देता हूं तो मैं उन लोगों को संबोधित करता हूं जो उन्हीं बातों में विश्वास करते हैं जिनमें मैं भी विश्वास करता हूं। पर यहां मेरे श्रोता कामगार और मध्यवर्ग के थे। उन्होंने बाल-मनोविज्ञान के बारे में कभी सुना नहीं था। मुझे अहसास हुआ कि बहुसंख्यक जनता, बच्चों की आज़ादी, अपनी खुद की आज़ादी, के विरुद्ध किस कदर लामबंद है।

हमारी सभ्यता रोगी है, दुखी है, और मेरा मानना है कि इसकी जड़ है अमुक्त परिवार। परिवार में प्रतिक्रिया और नफ़रत की ताकतें बच्चों को मारती हैं। उस समय से ही जब वह पालने में होता है। उन्हें जीवन को नकारने को प्रशिक्षित किया जाता है। उनका बाल जीवन ही एक प्रकार से नकारना होता है। शोर मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो।

जीवन में जो कुछ नकारात्मक है उसे उन्हें स्वीकारना सिखाया जाता है बड़ों की श्रद्धा करो, धर्म की श्रद्धा करो, मास्टरजी की श्रद्धा करो, पिता के बनाए कानूनों की श्रद्धा करो। सवाल न पूछो, केवल आज्ञापालन करो आदि-आदि।

जो श्रद्धेय न हो उसकी श्रद्धा करना कोई सद्‌गुण नहीं है। न ही किसी ऐसे पुरुष या स्त्री के साथ जीना ही सद्‌गुण है जिससे आप प्रेम न करते हों। ऐसे ईश्वर की श्रद्धा करना कोई सद्‌गुण नहीं है जिससे आप दरअसल खौफ़ खाते हों।

त्रासदी यह है कि जो व्यक्ति अपने परिवार को बंधन में रखता है वह स्वयं भी गुलाम होता है। क्योंकि जेल में जेलर भी बंद ही होता है। इंसान की गुलामी नफरत की गुलामी है। वह अपने परिवार का दमन करता है और ऐसा करते समय वह अपने जीवन का भी दमन करता है। उसे अपने ही दमन से पीड़ित लोगों के लिए अदालतें और जेल बनाने पड़ते हैं।

गुलाम स्त्रियों को अपने बेटे युद्धों में बलि चढ़ाने पड़ते हैं। ऐसे युद्ध जिन्हें इंसान रक्षात्मक युद्ध, देशभक्ति के युद्ध, लोकतंत्र को बचाने के युद्ध, या युद्धों को शेष करने का युद्ध कहता है।

बच्चा कभी समस्यात्मक होता ही नहीं है, समस्यात्मक होते हैं केवल माता-पितां शायद यह कहना बेहतर हो कि समस्यात्मक है केवल मानवजाति। यही कारण है कि ऍटम-बम इतना भयावह है। क्योंकि वह उन लोगों के हाथ है जो जीवन-विरोधी हैं। जिस बच्चे के हाथ पालने में बांधे गए हों वह जीवन-विरोधी क्योंकर न होगा?

मानवजाति में भाईचारा और प्रेम प्रचुर मात्रा में है। मेरा विश्वास है कि नई पीढ़ी के बच्चे जिन्हें बचपन से जकड़ा न गया हो एक-दूसरे के साथ शांति से जी सकेंगे। पर यह तब ही संभव होगा जब आज के घृणा करने वाले इस दुनिया को, नई पीढ़ी दुनिया का नियंत्रण हाथ में लें उसके पहले ही तबाह न कर दें।

यह संघर्ष गैर-बराबरी का संघर्ष है। क्योंकि घृणा करने वाले ही आज शिक्षा, धर्म, कानून, सेना और कैदखानों को नियंत्रित करते हैं। मुट्ठी भर शिक्षक ही शायद ऐसे हों, जो बालक में निहित अच्छाइयों को आज़ादी से पनपने देते हैं। जीवन विरोधी तत्वों के समर्थक ही अधिकांश बच्चों को अपनी घृणास्पद दण्ड प्रणाली द्वारा लगातार गढ़ और ढाल रहे हैं।

यह स्पर्धा है जड़ता में विश्वास करने वालों और जीवन में आस्था रखने वालों के बीच की। इसमें कोई भी निष्पक्ष नहीं रह सकता। क्योंकि इसका अर्थ होगा मत्यु। हमें एक या दूसरे खेमें में होना ही है। जो मत्यु पक्ष है वह हमें समस्यात्मक बच्चा देता है, और जीवन पक्ष एक स्वस्थ बालक।

मुक्त बालक/ आज़ाद बच्चा

दुनिया में स्वनिर्देशित बच्चे इतने कम हैं कि उनके वर्णन का कोई भी प्रयास अंतरिम ही हो सकता है। इसके जो परिणाम देखे गए हैं उनसे एक नई सभ्यता के जन्मने का संकेत मिलता है। ऐसी सभ्यता जिसका चरित्र किसी भी राजनैतिक दल द्वारा तय किए गए समाज से भिन्न होगा।

स्वसंचालन में मानव स्वभाव की अच्छाइयों में विश्वास निहित है। इसकी जड़ में यह विश्वास है कि कोई 'मूल पाप''(ओरिजनल सिन) न है, न कभी था।

किसी ने एक पूर्णत: स्वनिर्देशित बच्चा नहीं देखा है। आज का हरेक बच्चा अपने माता-पिता, शिक्षक और समाज द्वारा ढाला गया है। जब मेरी बेटी जोए दो साल की थी तो पिक्चर-पोस्ट नामक पत्रिका ने उसके चित्रों के साथ एक लेख छापा था कि उनकी राय में ब्रिटेन भर की वह एकमात्र स्वनिर्देशित बच्ची थी, जिसकी स्वतंत्र बच्चे के रूप में पलने बढ़ने की सभांवना थी। यह बात पूरी तरह सच नहीं है, क्योंकि वह एक ऐसे स्कूल में रहती थी, और अब भी रह रही है जहां सभी बच्चे स्वनिर्देशित नहीं हैं। ये बच्चे पहले से ही अनुकूलित थे। क्योंकि चरित्र गढ़ने की कोशिश से भय पनपता है। जोए का संपर्क ऐसे भी कुछ बच्चों से था जो जीवन विरोधी हैं।

वह ऐसे वातावरण में पली जहां पशुओं के प्रति कोई भय नहीं था। फिर भी एक दिन मैंने एक खेत के पास गाड़ी रोक कर कहा "चलो बां-बां करती गाएं देखते हैं।" वह अचानक भयभीत लगी ओर बोली "ना,ना, गांए खा जाती हैं।" यह उसे एक ऐसे सात साल के बच्चे ने बताया था जो स्वनिर्देशित नहीं था। सच है कि यह भय केवल एक या दो सप्ताह रहा। बाद में झाड़ियों में घात लगाए शेरों के भय ने भी कुछ समय तक उसके जीवन को प्रभावित किया।

लगता है कि स्वनिर्देशित बालक अनुकूलित बच्चों के प्रभाव से उपजे भय पर तुलनात्मक रूप से कम समय में काबू पा लेते हैं। जोए में दूसरों से पाए भय ओर रुचियों से उपजा दमन कभी लंबे समय तक नहीं टिका। पर यह कोई नहीं बता सकता है कि इन भयों का

उसके चरित्र पर क्या स्थाई असर पड़ा होगा।

दुनिया भर से आए तमाम मेहमानों ने जोए को देखकर कहा "यह बिल्कुल नई बात है। बच्ची में लावण्य सतुंलन है और आनंद है। आसपास के वातावरण के साथ उसका रिश्ता शांति का है, युद्ध का नहीं।" एक मनोरोग ग्रस्त समाज में जितना यह संभव है उतना भर उसमें मिलता है। लगता है कि आज़ादी ओर उच्छृंखलता का अंतर उसे स्वत: और स्वाभाविक रूप से पता है।

स्वनिर्देशित बच्चे के सामने तमाम खतरों में एक यह भी है कि वयस्क उसमें ज़रूरत से ज़्यादा रुचि लेते हैं। फलस्वरूप वह हमेशा उनके ध्यान के केन्द्र में रहता है। संभव है कि स्वनिर्देशित बच्चों के समुदाय में जहां सभी बच्चे स्वाभाविक हों, स्वंतत्र हों ,कोई एक बच्चा ध्यान का केन्द्र न बने। किसी एक को सबके सामने नुमाइश करने को प्रोत्साहित न किया जाए। ऐसे में दूसरे बच्चो में वह जलन भी न भड़के जो एक आज़ाद बच्चे में देख उनमें पैदा होती है।

अपने दोस्त टेड की तुलना में जोए के अंग खुले ओर लचीले थे। जब उसे उठाया जाता तो उसका शरीर तनावमुक्त रहता। पर टेड को उठाना आलू के बोरे को उठाने के समान लगता है। उसका शरीर कभी ढीला नहीं छूटता। उसकी प्रतिक्रियांए पूरी तरह बचाव व विरोध की होतीं। वह हर तरह से जीवन विरोधी था।

मेरी घोषणा है कि स्वनिर्देशित बच्चे उस अप्रिय चरण से नहीं गुजरेंगे। उन्हें इसकी ज़रूरत ही नहीं होगी। अगर बच्चों को शिशु अवस्था से ही बांधा और जकड़ा नहीं गया हो तो कोई कारण नहीं कि बड़े होकर उनमें माता पिता के प्रति विद्रोह जगे। जो घर अर्धस्वंतत्र हैं, जहां माता पिता और बच्चों में समता है, वहां भी उनसे मुक्त होने का विद्रोह नहीं जन्मता है।

स्वनिर्देश का मतलब है शिशु का मुक्त रूप से जीने का अधिकार। जहां बाहरी मानसिक व दैहिक अनुशासन न हों इसका मतलब होगा वह तब खाए, जब वह भूखा हो, वह तब साफ रहे, जब वह खुद रहना चाहे, उस पर कोई चिल्लाए नहीं ,उसे पिटा न जाए, उसे हमेशा प्यार व संरक्षण दिया जाए।

सुनने में यह बड़ा आसान, स्वाभाविक और अच्छा लगता है पर आश्चर्य यह होता है कि कितने नौजवान माता पिता इसे गलत समझ लेते हैं चार साल का टामी पड़ौसियों के पियानो को लकड़ी से ठोकता है। प्रेम में डूबे उसके माता पिता गर्व से मुस्कराते हुए उसे देखते हैं। इस मुस्कान का अर्थ होता है "स्वनिर्देशन कितनी अच्छी बात है ना?"

कुछ मां-बाप यह सोच बैठते है कि उन्हें अपने अठारह माह की नन्ही को कभी जबरदस्ती सुलाना ही नहीं चाहिए, क्योंकि यह प्रकृति के काम में नाज़ायज़ दखलंदाज़ी करना होगा पर सच यह है कि जब बच्चा थक जाए तो उसे जगते नहीं रहना चाहिए। उसे उसके बिस्तर पर सुलाना चाहिए। क्योकि होता यह है कि थकने पर बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। वह खुद यह कह नहीं सकता कि वह सोना चाहता है। अमूमन एक दुखी मां चीखतें-चिल्लाते बच्चे को उठाकर सुलाने ले जाती है। एक दम्पत्ति ने मुझसे यह पूछा कि बच्चे के कमरे में अलाव के सामने जाली लगानी चाहिए या ऐसा करना गलत होगा। इन उदाहरणत: स्पष्ट होता है कि कोई भी विचार - नया या पुराना खतरनाक सि्द्ध होगा जब तक उसके उपयोग में सहजबुद्धि का पुट न हो।

कोई बेवकूफ ही बच्चे को ऐसे कमरे में सुलाएगा जिसकी खिड़कियां सुरक्षित न हों, कमरे में जलने वाली आग से बचाव का उपाय न किया गया हो। स्वनिर्देशन के प्रति उत्साही लोग हमारे स्कूल में आने पर अक्सर आज़ादी के अभाव पर टिप्पणी करते हैं वे जानना चाहते है कि हमारी प्रयोगशाला की अल्मारी में ताले क्यों हैं, छत पर या आग लगने पर बच निकलने वाले रास्ते में खेलना क्यों मना है? आज़ादी का यह पूरा आंदोलन ही इस वजह से आहत होता है, उसे नापसंद किया जाता है, क्योंकि इसकी पैरवी करने वालों के पैर धरती पर नहीं टिके हैं

हाल में ऐसे ही एक व्यक्ति ने मेरा विरोध किया। क्योंकि मैंने एक सात वर्षीय समस्यात्मक बच्चे को अपने दफ्तर के दरवाजे को लतियाते देख डांटा था। उसका विचार यह था कि मुझे मुस्कुराकर तब तक वह शोर बर्दाश्त करना चाहिए था जब तक दरवाजे लतियाने की उसकी इच्छा शांत न हो जाती। यह सच है कि मैंने सालों-साल समस्यात्मक बच्चों के धवंसात्मक आचरण को धैर्य से झेला है। पर यह मैंने उनके मनोचिकित्सक के रूप में किया था। एक साथ रहने वाले नागरिक के रूप में नहीं।

अगर कोई मां यह सोचती है कि उसे उसके तीन साल के बच्चे को घर का दरवाजा लाल स्याही से इसलिए पोतने देना चाहिए क्योंकि वह स्वंय को मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर रहा है, तो दरअसल तो वह स्वनिर्देशन का मतलब समझी ही नहीं है।

याद आता है कि एक बार मैं कोवेन्ट गार्डन थियेटर में अपने दोस्त के साथ बैठा था। पहले बैले के दौरान बैठा बच्चा अपने पिता से जोर से बोला। नृत्य समाप्त हुआ, ओर मैने जगह बदल ली। मेरे साथी ने पूछा "अगर समरहिल का कोई बच्चा यह करता, तो तुम क्या करते?"

"मैं उसे चुप रहने को कहता।"

"उसकी ज़रूरत न पड़ती," मित्र ने कहां "वह ऐसा आचरण ही नहीं करता।" और सच मुझे लगता है कि उनमें से कोई भी ऐसी हरकत नहीं करता।

एक मरतबा एक महिला अपनी सात वर्षीय बिटिया को लेकर मुझसे मिलने आई। "नील साहब" वे बोलीं " डेफने पैदा हुई उसके भी पहले मैने आपकी लिखी एक-एक पंक्ति पढ़ी थी। मै उसे आपके विचारों के अनुसार ही पालूंगी।"

मैंने डेफने की ओर देखा। वह मेरे पियानो पर अपने भारी जूतों के साथ चढ़ी हुई थीं वहां से वह सोफे पर कूदी। "देखिए कितनी स्वाभाविक है मेरी बेटी" माताजी बोलीं "बिल्कुल एक नीलियन बच्ची!" मेरा चेहरा तमतमा उठा।

आज़ादी ओर उच्छृंख्लता का अंतर कई माता-पिता समझ ही नहीं पाते हैं एक अनुशासित परिवार में बच्चों के कोई अधिकार नहीं होते। एक बिगाड़ने वाले परिवार में उन्हें के सारे अधिकार होते हैं। सही परिवार वह है जहां बच्चों और वयस्कों में बराबर के अधिकार होते

हैं। यही बात स्कूल पर भी लागू होती है।

इस बात पर बार-बार ज़ोर देना पड़ता है कि स्वंतत्रता का अर्थ यह नहीं है कि बच्चों को पूरी तरह बिगाड़ दिया जाएं अगर कोई तीन साल का नन्हा या नन्हीं खाने की मेज़ पर चलना चाहे तो उसे यह सीधे और साफ़ बताना चाहिए कि यह नहीं किया जा सकता। यह सच है कि उसे आज्ञा माननी होगी। पर इसी तरह आपको भी उसकी आज्ञा माननी होगी। जब छोटे बच्चे मुझे दफ़ा करते हैं तो मैं फौरन उनके कमरे से बाहर निकल जाता हूं।

अगर बच्चों को अपने आतंरिक स्वभाव के अनुसार जीने देना है तो वयस्को को कुछ त्याग करना ही होगा। स्वस्थ माता-पिता एक तरह का समझौता तलाश लेते हैं पर बीमार माता-पिता या तो हिंसक बन जाते हैं, या उन्हें बिगाड़तें हैं और उन्हें ही सारे के सारे सामाजिक अधिकार सौंप देते हैं।

माता-पिता ओर बच्चों के बीच जो फासला है वह दूर नहीं तो कम अवश्य किया जा सकता है। जोए मेरे बीच ईमानदार लेनदेन है। इस कारण वह मेरी मेज़ पर मेरा अधिकार स्वीकारती थी ओर मेरे टाइपरॉइटर से खेलने पर आमादा नहीं रहती थी। बदले मे मैं उसका कमरा और उसके खिलौनों उसके अधिकार की श्रद्धा करता था। बच्चे बुद्धिमान होते हैं ओर जल्दी ही सामाजिक नियम समझने लगते हैं। उनका शोषण नहीं होना चाहिए जैसा अक्सर होता है। अक्सर जब बच्चा किसी खेल में मशगूल हो तो माता-पिता हांक लगाते हैं

"बेटे जरा एक गिलास पानी तो पकड़ाना।"

बच्चों की शैतानी सही तरह से न निपटने से बढ़ती है। जब जोए तकरीबन साल भर की थी वह एक ऐसे दौर से गुज़री जब उसकी रुचि मेरे चश्में में थीं वह उन्हें देखने के लिए मेरे नाक पर से खींच लेती थी। मैं कोई प्रतिवाद न करता। शब्दों या दृष्टि से कोई नाराज़गी ज़ाहिर न करता। उसकी रुचि जल्दी ही खत्म हो गईं उसने बाद में मेरे चश्में को कभी नहीं छुआ। अगर मैं उस समय डांटता या पीटता तो उसकी जिज्ञासा लगातार बनी रहती साथ ही उसमें मेरे प्रति भय और विद्रोह पनपता।

मेरी पत्नी जोए को टूटने वाली चीजों से खेलने देती थी। जोए हमेशा सावधानी बरतती। बिरले ही उसके हाथों कोई चीज टूटी हो। उसने तमाम चीजों की खुद तहकीकात और छानबीन की।

ज़ाहिर है कि स्वनिर्देशन की भी सीमा है। हम छः माह के बच्चे को खुद यह तलाशने नहीं दे सकते हैं कि जलती हुई सिगरेट से हाथ जल सकते हैं। ऐसे स्थिति में शोर करना उचित नहीं है, बिना शोर-शराबे के बच्चे के सामने से खतरा हटा लिया जाना चाहिए।

बच्चा अगर मानसिक रूप से कमज़ोर न हो तो वह जल्दी ही वे चीजें तलाश लेता है जिसमें उसकी रुचि हो। अगर वह उत्तेजित चीख-पुकार और नाराज़ आवाजों से मुक्त रहे तो वह हर तरह की सामग्री को आश्चर्यजनक सूझ-बूझ के साथ उठाता-धरता है। जो मां चूल्हे के पास खड़ी चिंता से मर रही हो कि न जाने उसके बच्चे क्या कर रहे होगें, उसने दरअसल अपने बच्चों पर कभी भरोसा नहीं किया है। "देखना नन्हा क्या कर रहा है, उससे कहना ऐसा नहीं करते।" ये शब्द आज भी तमाम घरों मे दोहराए जाते हैं।

जब कोई मां मुझे यह लिखती है कि जब वह रसोई में खाना बनाने में व्यस्त हो तो उसके बच्चे बेहद धमा-चौकड़ी मचाते है। मेरा जबाब यही हो सकता है कि आपने उन्हें बड़ा ही ऐसे किया है।

एक दम्पत्ति ने मेरी चंद किताबें पढ़ीं और उनके मन में यह अपराध बोध जगा कि उन्होंने अपने बच्चों को जिस तरह से पाला-पोसा उससे न जाने उनको कितना नुक्सान पहुंचाया होगा। सो तत्काल परिवार की बैठक की, बच्चों से कहा "हमने तुम्हारे पालन-पोषण गलत तरीके से किया है। अब से तुम सब जो करना चाहो उसकी तुम्हें आज़ादी है।" यह तो याद नहीं आ रहा कि उन्होंने मरम्मत की लागत क्या लिखी, पर तत्काल ही दूसरी बैठक बुलाई गई ओर पिछला निर्णय पलट दिया गया।

बच्चों की आज़ादी के विरुद्ध जो तर्क सामान्यतः रखा जाता है वह यह है: जीवन बड़ा कठिन है। हमें बच्चों को शुरु से ही बाद के जीवन से समझौता करने के लिए तैयार करना चाहिए। इसलिए उन्हें अनुशासित करना चाहिए। अगर उन्हें अपनी इच्छा का करने की अनुमति दी गई तो वे बड़े होकर किसी बॉस के मातहत चाकरी कैसे कर सकेंगे? वे उन लोगों से स्पर्धा कैसे करेंगे, जिन्हें अनुशासन की आदत है? वे खुद पर आत्म-अनुशासन कैसे लागू कर सकेंगे?

जो लोग बच्चों की आज़ादी का विरोध इस तर्क से करते हैं वे यह नहीं समझते कि वे जिस मान्यता से शुरुआत कर रहे हैं, वह निराधार है, सिद्ध ही नहीं हुई है। वे यह मान कर चलते हैं कि अगर बच्चे पर बढ़ने या विकसित होने का दबाव न हो तो वह न बढ़ेगा न विकसित होगा। समरहिल का उन्चालीस वर्षों का अनुभव इस मान्यता को गलत सिद्ध करता है। सैकड़ों उदाहरणों में से एक मर्विन का ही उदाहरण लें। वह दस साल तक समरहिल में रहा। सात से सत्रह की उम्र तक। सत्रह साल की उम्र में भी ठीक से पढ़ना-लिखना तक नहीं जानता था। पर स्कूल छोड़ने के बाद मार्विन ने तय किया कि वह औज़ार बनाने वाला बनना चाहता है। उसने खुद को पढ़ना सिखाया और कुछ ही समय ने खुद-ब-खुद आवश्यक तकनीकी जानकारी पा ली। अपने प्रयासों से उसने खुद को प्रशिक्षु बनाने के लिए तैयार किया। आज वह पूर्णतः साक्षर है, अच्छा वेतन कमाता है ओर अपने समुदाय का नेता है। जहां तक स्व-अनुशासन का सवाल है उसने अपने मकान का काफी हिस्सा खुद के अपने हाथों बनाया है, और अपनी मेहनत मजदूरी से वह तीन बच्चों के परिवार को खुद पालता है।

इसी तरह हर साल समरहिल के कई लड़के-लड़कियां, जो उस वक्त तक पढ़ने में कोई रुचि नहीं लेते थे, खुद ही यह तय करते हैं कि उन्हें कॉलेज में दाखिल होने के लिए परीक्षाएं देनी हैं। और तब वे इसके लिए मेहनत मशक्कत करते हैं। वे ऐसा क्योंकर करते हैं?

आम धारणा यह है कि अगर बचपन से ही अच्छी आदतें न सिखाई गईं तो बाद में वे जीवन भर वे हममें विकसित ही नहीं होगीं। हम इसी धारणा को लेकर बड़े हुए हैं और इसे बिना सवाल उठाए स्वीकारते हैं। इसलिए, क्योंकि किसी ने इसको चुनौती ही नहीं ही है। मैं इस धारणा से असहमत हूं।

बच्चे के लिए आज़ादी इसलिए ज़रूरी है क्योंकि आज़ादी में ही वह स्वाभाविक तरीके से बढ़ता है - जो अच्छा तरीका है। मैं निजी

स्कूलों से आए अपने नए छात्रों में बंधन का नतीजा देखता हूं। वे पाखण्ड, बनावटी, शिष्टता और आचरण से भरे होते है।

आज़ादी पाकर उनकी प्रतिक्रिया तुरंत भड़कती हैं। बेहद थकाने वाली होती है। प्रारंभिक एक-दो सप्ताह तक वे शिक्षकों के लिए दरवाजे खोलते हैं, और मुझे 'सर' कह कर संबोधित करते हैं, बड़े साफ-सुथरे रहते हैं। मेरी ओर श्रद्धा से देखते हैं, उस दृष्टि में भय पहचाना जा सकता है। कुछ सप्ताह आज़ादी पाने पर वे अपने असली रूप में आ जाते हैं। वे उदण्ड, दुर्व्यव्यवहारी और गंदे बन जाते है। वे वह सब करते हैं जिसकी उन्हें पहले मनाही थी। वे गाली देते हैं, सिगरेट पीते हैं और खूब तोड़फोड़ करते हैं। और इस दौरान उनकी आंखों और आवाजों में वही नम्रता और बनावटी भाव भलकता है।

इस बनावटीपन से उबरने में उन्हें कम से कम छह महीने लगते हैं और तब से वे जिसे सज़ा मानते रहे थे, उसके प्रति सम्मान त्याग देते हैं छह महीने में वे ऐसे स्वाभाविक स्वस्थ बच्चे बन जाते हैं जो अपने विचार घबराहट या घणा के बिना सामने रख सकें। जब बच्चा कम उम्र में आज़ादी से परिचित होता है तो उसे बनावटीपन का नाटक नहीं करना पड़तां समरहिल का सबसे बडी़ खासियत है उसके छात्र-छात्राओं की पूर्ण निष्कपटतां जीवन में, और जीवन के प्रति ईमानदार होना बेहद ज़रूरी है। दरअसल यही दुनिया का सबसे महत्तवपूर्ण काम है। अगर आप में सच्चाई है तो दूसरी चीजें खुद-ब-खुद जुड़ती जाती हैं अभिनय में ईमानदारी का मूल्य सब पहचानते हैं। हम अपने राजनेताओं से (मानव किस कदर आशावादी होता है), न्यायाधीशों से, शिक्षकों और चिकित्सकों से ईमानदारी की अपेक्षा रखते हैं। पर हम बच्चों को इस तरह शिक्षित करते हैं कि वे ईमानदार होने की हिम्मत तक नहीं कर सकें

समरहिल में सबसे बड़ा अनुसंधान कोई हुआ है तो वह यह कि बच्चा एक ईमानदार जीव के रूप में जन्मता हैं हम उन्हें इसलिए आज़ाद छोड़ते हैं ताकि वे खुद यह तलाश सकें कि वे कैसे हैं। बच्चों को पालने का यही एक मात्र तरीका है। भावी स्कूलों को अगर बच्चों के विषय में अपना ज्ञान बढाना है, अगर उसकी प्रसन्नता में इजाफा करना है, तो उन्हें यही रास्ता पकड़ना होगा।

जीवन का उद्देश्य है आनंद। जीवन में जो कुछ इस आनंद को सीमित या नष्ट करता है वह अनिष्टकारी है। आनन्द का अर्थ हमेशा अच्छाई ही होता हैं अप्रसन्नता अपने चरम पर यहूदियों से घृणा, अल्पसंख्यकों को यातना या युद्ध का रूप लेती है।

मैं मानता हूं कि कई ईमानदारी अटपटे क्षण पैदा करती है। हाल में एक तीन साल की लड़की ने एक दढ़ियल मेहमान को देख कर कहा, मुझे आपकी शक्ल पंसद नहीं आ रही। मेहमान ने माकूल जवाब दिया पर मुझे तुम्हारी शक्ल अच्छी लग रही है। और वह बच्ची मुस्करा दी।

पर मैं बच्चों की आज़ादी की बहस नहीं करुंगा। किसी भी आज़ाद बच्चे के साथ आधा घंटा बिताना, तर्कों से भरी एक किताब से कहीं बेहतर है। देखने से ही विश्वास होता है।

बच्चों को आज़ादी देना आसान नहीं है। इसका मतलब है हम उसे धर्म, राजनीति या वर्ग चेतना के बारे में कुछ न सिखाएं। जब बच्चा अपने पिता को किसी राजनीतिक दल के प्रति या मां को नौकरी के प्रति भड़ास निकालते सुनता है तो बच्चे को वास्तविक आज़ादी नहीं मिलती। यह असंभव है कि हम अपने बच्चों को जीवन के प्रति हमारे नज़रिए को अपनाने से रोक सकें। एक कसाई का बेटा शायद ही कभी शाकाहार का प्रचारक बने, जब तक कि उसके पिता की सत्ता का विद्रोह ही उसे दूसरे खेमें में न खदेड़ दे।

समाज की प्रकति ही आज़ादी के प्रतिकूल होती है। समाज या भीड़ हमेशा ही रूढ़िवादी होती है। और नए विचारों से घृणा करती है।

फैशन, इस कथन को चरितार्थ करता है कि भीड़ को आज़ादी नापंसद है। भीड़ समानता की मांग करती है। हमारे कस्बे के लोग मुझे सिरफिरा कहते हैं। क्योंकि मैं सैण्डल पहने घूमता हूं। गॉव में अगर मैं लंबा टोप पहनकर निकलूं तो लोग मुझे सिरफिरा कहेंगें। यही कारण है, कि जो कुछ सही माना जाता है उस लीक से हटने की जुर्रत कम ही लोग कर पाते हैं।

इंग्लैण्ड का एक नियम है - भीड़ का नियम - जो रात आठ बजे के बाद सिगरेट की बिक्री निषिद्ध करता है। मैं एक भी ऐसे इंसान को नहीं जानता जो इस कानून को पसंद करता हो। पर हम व्यक्तिगत स्तर पर भीड़ के निहायत बेवकूफी भरे फैसले भी स्वीकारते चलते हैं।

बिरले ही व्यक्ति होंगे, जो किसी हत्यारे को फांसी, या अपराधी को आजीवन कारावास की सज़ा सुनाना पसंद करें। पर भीड़ के रूप में फांसी या आजीवन कारावास हमारी आत्मा को नहीं कचोटता। भीड़ के लिए अपराधी खतरनाक हैं, उससे बचाव का सबसे आसान तरीका हैं अपराधी को मार डालना या बंदी बना देना। हमारी पुरातनपंथी दण्ड संहिता मूलतः भय पर आधारित है। और हमारी दमनकारी शिक्षा व्यवस्था भी मूलतः भय पर आधारित है। यह भय है नई पीढ़ी का।

सर मार्टिन कॉनवे ने अपनी आनंददायक पुस्तक "द क्राउड इन पीस एण्ड वॉर" में लिखा है कि भीड़ को बड़े-बूढ़े पसंद हैं। युद्ध के समय भीड़ हमेशा वृद्ध सेनानायकों को चुनती हैं और शांति में वृद्ध चिकित्सकों को। भीड़ वृद्धों से इसलिए चिपकती है क्योंकि वह युवाओं से डरती है।

भीड़ की आत्मरक्षा की सहज भावना नई पीढ़ी में खतरा देखती है। उसे इस बात का डर रहता है, कि उनकी स्पर्धा में एक नई भीड़ न पनप जाए। ऐसी भीड़ जो पुरानी भीड़ का खात्मा कर दे। भीड़ की सबसे छोटे रूप, परिवार में भी इसी कारण आज़ादी नहीं दी जाती। वयस्क पुराने मूल्यों - पुराने भावनात्मक मूल्यों से चिपके रहते हैं। इस बात का कोई तार्किक आधार नहीं है कि कोई पिता अपनी बीस वर्षीया बेटी को सिगरेट पीने से रोके। यह निषेध भावनात्मक स्रोत से उपजता है, रूढ़िवादिता से उपजता है। निषेध के पीछे दरअसल भय है। 'वह आगे क्या करेगी?' भीड़ नैतिकता की ठेकेदार है। वयस्क युवाओं को आज़ादी इसलिए नहीं देता क्योंकि वह डरता है कि युवक-युवतियां वह सब करेंगे जो वह स्वयं युवावस्था में करना चाहता था। बच्चों पर लगातार वयस्कों के विचार लादना बाल्यवस्था के विरुद्ध भारी पाप है।

आज़ादी देने का अर्थ है बच्चे को उसकी जिंदगी जीने देना। यों कहने से बात कितनी आसान लगती है। पर सिखाने, गढ़ने, भाषण देने

और दबाव डालने की हमारी अनर्थकारी आदत हमें सच्ची आज़ादी की सहजता का अहसास तक नहीं होने देती।

आज़ादी के प्रति बच्चों की क्या प्रतिक्रिया होती है? चतुर बच्चे और वे बच्चे जो इतने चतुर न हों, वह पाते हैं जो उन्हें पहले मिली ही न थी। ऐसा कुछ, जो परिभाषित तक न किया जा सके। इसका मुख्य बाहरी लक्षण यह होता है कि उनमें ईमानदारी और औदार्य बढ़ता है। उनमें दूसरों के प्रति आक्रामकता घटती है। जब बच्चे अनुशासन के भय के साये में नहीं होते तो वे आक्रामक नहीं रहते। समरहिल के अड़तीस सालों में मैंने एक ही झगड़ा देखा था जिसमें किसी के नाक से खून बहा। हमारे यहां भी हमेशा ही एक छोटा-मोटा दादा ज़रूर होता है, क्योंकि स्कूल में दी गई प्रचुर आज़ादी भी एक खराब परिवार के प्रभाव खत्म नहीं कर सकती। जीवन के प्रारंभिक महीनों या सालों में जो चरित्र गठन होता है, उसे आज़ादी से कुछ ढाला तो जा सकता है, पर पूरी तरह बदला नहीं जा सकता। आज़ादी का सबसे बड़ा दुश्मन है भय।

लोग मुझसे पूछते हैं "आपके आज़ाद बच्चे जीवन की नीरसता से समझौता कैसे करेंगे?" मेरी आशा यह है कि वे जीवन से नीरसता को हटाने में अग्रणी सिद्ध होंगे।

हमें बच्चों को स्वार्थी बनने की छूट देनी होगी - ऐसा बनने देना होगा, जो कुछ देता न हो। बचपन भर अपनी बचकानी रुचियों के पीछे भागने की अनुमति देनी होगी। जब उसकी व्यक्तिगत रुचियां और सामाजिक रुचियां टकराएं, तो उसकी व्यक्तिगत रुचियों को प्राथमिकता देनी होगी। समरहिल का विचार मुक्ति का है। जहां बच्चा अपनी स्वाभाविक रुचियों को जी सके।

स्कूल को दरअसल बच्चे की ज़िंदगी को ही खेल बना देना चाहिए। मैं यह नही कहता कि उसकी राह फूलों से पटी बना दी जाए। सब कुछ आसान बनाना उसके चरित्र के लिए खतरनाक होगा। दरअसल जीवन खुद-ब-खुद इतनी कठिनाइयां पेश करता है कि हमारे द्वारा बनाई गई कत्रिम कठिनाईयां बिल्कुल अनावश्यक हैं।

मैं मानता हूं कि सत्ता के माध्यम से कुछ भी थोपना गलत है। बच्चे को तब कुछ नहीं करना चाहिए जब तक उसे करने की राय वह खुद न बना ले। मानवता का श्राप बाहरी दबाव, फिर चाहे वह किसी धर्मगुरु, राज्य, शिक्षक या माता-पिता द्वारा ही क्यों न डाला गया हो। यही अपनी समग्रता में फासीवाद है।

अधिकतर लोग एक ईश्वर चाहते हैं। यह स्थिति इससे भिन्न हो भी नहीं सकती, जब घर में टिन के बने देवी-देवता बिराजे हों, जो सम्पूर्ण सच और नैतिक आचरण की मांग करते हों। आज़ादी का मतलब है वह करना जो व्यक्ति खुद चाहे। पर केवल उस सीमा तक जहां वह दूसरों की आज़ादी में खलल न डाले। इस संतुलन का परिणाम होता है स्व-अनुशासन।

हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हम दूसरों को चैन से जीने नहीं देते। हम भय के सहारे सबकी सहमति ले लेते हैं। पर बच्चे को पत्थर फेंकने से रोकने और लैटिन भाषा सीखने पर बाध्य करने में अंतर है। पत्थर फेंकने में दूसरे लोग भी होते है, जिन्हें चोट पहुंच सकती हैं। पर लैटिन सीखने में सिर्फ बच्चा ही होता है। किसी असामाजिक लड़के के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार समुदाय को है। पर किसी को लैटिन सीखने पर बाध्य करने का नहीं। क्योंकि लैटिन सीखना निहायत व्यक्तिगत मामला है। बच्चे को सीखने पर बाध्य करना ठीक वैसा होगा मानों एक संसदीय कानून द्वारा किसी पर कोई धर्म अपनाने का दबाव डाला जाए। सच तो यह कि यह उतना ही बेवकूफी भरा कृत्य भी है।

मैंने छुटपन में लैटिन सीखी। बल्कि कहूं कि मुझे किताबें दी गईं जिससे मैं लैटिन सीखूं। पर लड़कपन में मेरी रुचियां दूसरी थीं। मैं लैटिन नहीं सीख पाया। इक्कीस वर्ष की आयु में मुझे पता चला कि लैटिन सीखे बिना विश्वविद्यालय में दाखिला नहीं होगा। प्रवेश परीक्षा लायक लैटिन मैंने साल भर के अन्दर सीख ली। मेरी रुचि ने मुझे लैटिन सिखाई।

प्रत्येक बच्चे को ऐसे कपड़े पहनने का अधिकार है, जिन्हें वह जितना चाहे गंदा करें। हर बच्चे को अभिव्यक्ति का अधिकार है। मैंने सालों किशोर - किशोरियों के मुंह से उन गालियों को सुनते गुज़ारे हैं जो उन्हें बचपन में नहीं देने दी गईं।

जिस नफ़रत और भय के साथ करोड़ो लोग पलते-बढ़ते हैं उससे यह आश्चर्य ही हो सकता है कि दुनिया मानसिक रूप से और बीमार क्यों नहीं है। मेरे लिए इसका अर्थ है कि प्राकृतिक मानवता में ऐसी आंतरिक ताकत है कि वह बाहर से लादी गई तमाम बुराइयों पर काबू कर सके।

हम धीमे-धीमे आज़ादी की ओर बढ़ रहे हैं। हर पीढ़ी के साथ बच्चों को अधिक आज़ादी मिल रही है। आज ऐसे चंद ही पागल होंगे जो बच्चे को अंगूठा चूसने से रोकने के वास्ते कड़वे नीम का लेप लगाएं। कुछ ही देश ऐसे होंगे जहां बच्चों को अब भी स्कूलों में पीटा जाता है।

आज़ादी का असर धीमे होता है। कई बार इसे समझने में बच्चों को सालों लग जाते हैं। जो तात्कालिक परिणाम की अपेक्षा करते हैं वे लाइलाज आशावादी होते हैं। आज़ादी चतुर बच्चों के लिए सबसे अच्छी सिद्ध होती है। काश मैं यह कह पाता कि चूकिं आज़ादी मूलत: भावनाओं को छूती है, इसलिए सभी बच्चे - कुशाग्र और मंद - दोनों की प्रतिक्रिया समान होती है। पर यह मैं कह नहीं सकतां

यह बात पढ़ाई के विषय में साफ़ नज़र आती हैं वैसे तो सभी आज़ाद बच्चे साल भर अपना अधिकांश समय खेलने में बिताते हैं पर समय आने पर जो चतुर हैं वे सरकारी परीक्षाओं के विभिन्न विषयों से निपटने की तैयारी भी कर लेते हैं जिस पढ़ाई को अनुशासित बच्चे आठ में करते हैं, वही पढ़ाई, वह एक आज़ाद लड़का या लड़की दो साल या उससे कुछ अधिक में पूरी कर लेता है।

रूढ़िवादी शिक्षक मानते हैं कि परीक्षा तभी पास की जा सकती है जब परीक्षार्थी लगातार पिला रहे। हमारे परीक्षा परिणाम सिद्ध करते हैं कि चतुर बच्चों के संदर्भ में यह बात भ्रामक है। आज़ादी के वातावरण में, जहां तमाम विरोधी आकर्षण मौजूद हों, बुद्धिमान बच्चे ही जम कर पढ़ाई कर सकते है।

मैं जानता हूं कि अनुशासन के तहत कमजोर छात्र-छात्राएं भी परीक्षाएं पास कर लेते हैं। पर उनका बाद में क्या हश्र होता होगा यह शायद किसी को न पता हेा। अगर सभी स्कूल मुक्त हों और सभी विषयों को पढ़ना ऐच्छिक हो, तो मेरा विश्वास है कि बच्चे स्वयं अपना स्तर तलाश लेंगे।

एक सताई हुई मां की आवाज़ मैं सुन सकता हूं, जो खाना पकाने में लगी है और उसकी नन्हीं घुटनों के बल रेंगती हुई चौतरफ फैलावड़ा कर रही है। वह खीझ से पूछ सकती है, "यह आत्म-अनुशासन कौन सी बला है? एक अमीर मां जिसके पास नौकर चाकर हों उसके लिए ठीक होगा। पर मेरी जैसी साधारण औरत के लिए यह केवल शब्द और भ्रम-जाल है।"

पर कोई दूसरी मां शायद यह कहे "हां मै आज़ादी देना चाहती हूं पर शुरू कहां से करूं। मैं इस पर कौन सी किताबें पढ़ूं।"

जवाब यह है कि इसकी कोई किताबे नहीं है, कोई वेदवाक्य नहीं हैं, कोई शास्त्री नहीं है। बस चंद माता-पिता चिकित्सकों और शिक्षकों का अल्पसंख्यक समुदाय है। जिसे हम बालक कहते हैं उसके चरित्र में इनके लोगों का विश्वास है। वे कृतसंकल्प हैं कि वे गलत हस्तक्षेपों द्वारा उसके चरित्र को बांधने या शरीर को जड़ बनाने का विरोध करेंगे। हम सब मानवता के ऐसे सत्यशोधक है जो तानाशाही पंसद नहीं करते। हमारे इस विश्वास के प्रमाण के नाम पर आज़ादी में जी रहे बच्चों के अवलोकन ही हैं, जो हम दे सकते हैं।

प्रेम व अनुमोदन

बच्चों की खुशी और उनका खुशहाली, उन्हें दिए गए प्रेम और अनुमोदन पर निर्भर करती है। हमें बच्चों के पक्ष में होना होगा। उसके पक्ष में होने का मतलब है, उसे प्रेम देना। मालिकाना प्रेम नहीं, भावुकता भरा प्रेम भी नहीं। बस हमारा व्यवहार ऐसा हो जिससे बच्चे को यह पता चले कि हम उसे प्यार करते है, उसका अनुमोदन करते हैं।

ऐसा करना संभव है। मैं दर्जनों माता-पिता को जानता हूं जो बच्चों के पक्ष में हैं। जो बदले में कुछ नहीं चाहते, और इसलिए ही बहुत कुछ पाते हैं। वे समझते हे कि बच्चे नन्हें वयस्क नहीं होतें

जब कोई बेटा घर मैं चिट्ठी लिखता है - प्यारी मां मुझे पचास रूपए भेजो। आशा है तुम ठीक होगी। पापा को प्यार देना, अगर बच्चा ईमानदार हो और खुद को अभिव्यक्त करने से डरता न हो तो, मां मुस्कराती है। क्योंकि वह जानती है कि दस साल का बच्चा ऐसी ही चिट्ठी लिख सकता है। जो गलत तरह के माता पिता हैं वे कहेंगे "देखो यह जानवर सिर्फ अपने स्वार्थ के बारे में सोच सकता है।" उन्हें असहिष्णुता त्यागनी होगी जो दरअसल भय से उपजती है। उन्हें पुरानी नैतिकता त्यागनी होगी और भीड़ के फैसले त्यागने होंगे। और आसान शब्दों में कहें तो उन्हें व्यक्ति बनना होगा। उन्हें पता करना होगा कि वे दरअसल खुद कहां खड़े है। यह आसान नहीं है। क्योंकि व्यक्ति आखिर खुद ही नहीं होता। वह जितने लोगों से मिलता है उन सबका मिश्रित रूप होता है। वह उनके कई मूल्य अपना लेता है। माता-पिता अपने माता-पिता की सत्ता बच्चों पर लादते हैं, क्योंकि हर पुरुष में उसका पिता और हर स्त्री में उसकी मां बसती है। यह कठोर सत्ता ही नफरत उपजाती है और साथ लाती है समस्यात्मक बच्चे।

कुछ किशारियों ने मुझसे कहा है "मैं अपनी मां को खुश करने के लिए कुछ नहीं कर सकती। वह सब कुछ मुझसे बेहतर करती हैं। सिलाई या बुनाई में गलती हुई तो वह नाराज़ हो जाती है।"

बच्चों को शिक्षण की उतनी दरकार नहीं जितनी प्यार व समझ की है। उन्हें स्वाभाविक रूप से अच्छे बने रहने के लिए अनुमोदन और आज़ादी की दरकार है। जो सच में मजबूत और स्नेही माता-पिता होते हैं उनमें ही बच्चों को अच्छे बनने की आज़ादी देने की ताकत होती है।

दुनिया अति-निंदा से त्रस्त हैं। दरअसल यही बात सीधे-सीधे कही जा सकती है कि दुनिया नफ़रत से त्रस्त है। माता-पिता की नफ़रत बच्चों को एक समस्या में बदल देती है। ठीक उसी तरह जैसे समाज की घृणा एक अपराधी को समस्या में बदल देती है। छुटकारा प्रेम में निहित है, पर कठिनाई यह है कि प्रेम को कोई बाध्य नहीं कर सकता।

समस्यात्मक बच्चे के माता-पिता को बैठकर खुद से ये सवाल पूछना चाहिए: क्या मैंने बच्चे को वास्तविक अनुमोदन दिया है? क्या मैंने उसमें विश्वास दर्शाया है? क्या मैंने उसके प्रति समझ जताई है? मैं सिद्धान्त नहीं पेल रहा मैं जानता हूं कि कोई समस्यात्मक बच्चा हमारे स्कूल में आकर एक प्रसन्न और सामान्य बच्चा बन सकता है। इस इलाज प्रक्रिया की मुख्य बात है बच्चे को अनुमोदन देना, उस पर भरोसा करना, उसे समझाना।

अनुमोदन की जितनी ज़रूरत समस्यात्क बच्चों की होती है उतनी ही सामान्य बच्चों को भी होती है। जिस धर्मादेश का पालन हरेक माता-पिता और शिक्षक को करना चाहिए वह है - तू हमेशा बच्चों के पक्ष में होगा। यही धर्मादेश समरहिल को एक सफल स्कूल बनाता है। हम निश्चित रूप से बच्चे के पक्ष में हैं, और बच्चा यह बात अवचेतन रूप से समझाता है।

मैं यह नहीं कहता कि हम फ़रिश्तों का टोली हैं। ऐसे भी मौके आते हैं जब हम नाराज़ होकर चीखते-चिल्लाते हैं। अगर मैं दरवाजा रंग रहा होउं ओर गीले रंग पर रॉबर्ट आकर मिट्टी उछाल जाए, तो मैं ज़रूर नाराज़ होउंगा। और क्योंकि वह एक अर्से से हमारे साथ है, मेरी नाराज़गी उसे डराएगी नहीं। पर अगर रॉबर्ट किसी घृणास्पद स्कूल से ताजा-ताजा आया हो और मिट्टी उछालना उसके लिए सत्ता से लड़ने का प्रतीक हो, तो मैं भी उसके साथ मिलकर मिट्टी उछालूंगा। क्योंकि उसका बचाव दरवाज़े के बचाव से अधिक महत्वपूर्ण है। मैं जानता हूं कि जब तक वह अंदरूनी नफ़रत निकाल नहीं लेता मुझे उसके पक्ष में हीं होना चाहिए, ताकि वह फिर से दोस्ताना व्यवहार अपना सके। यह काम आसान नहीं है। मैंने एक लड़के को मेरी कीमती खराद पर गुस्सा निकालते देखा है। पर मैं चुप रहा। क्योंकि मैं जानता था कि अगर उस समय मैं प्रतिवाद करता तो वह मुझे अपने पिता के रूप में देखने लगता, जो उसे हमेशा औज़ारों को छूने पर पिटाई की धमकी देता था।

मज़े की बात यह है कि कई बार डांटने-फटकारने के बावजूद आप बच्चे के पक्ष में हो सकते हैं। क्योंकि अगर आप उसके पक्ष में हैं तो उसे इस बात का अहसास होता है। आलुओं या औज़ारों को लेकर छोटा-मोटा मतभेद उस मूल संम्बन्ध को नहीं तोड़ता। जब बच्चे के

साथ व्यवहार में आप सत्ता या नैतिकता को नहीं लाते हों तो बच्चे यह समझ पाते हैं कि आप उसके पक्ष में हैं। क्योंकि इससे पहले की ज़िंदगी में सत्ता और नैतिकता ही वे चौकीदार थे जो लगातार उसकी गतिविधियों को बाधित करते थे।

जब कोई आठ साल की बच्ची मेरे पास से यह कहते गुजरती हैं "नील बड़ा बेफकूफ है," मैं जानता हूं कि यह मेरी प्रति प्रेम दर्शाने का एक नकारात्मक तरीका है। वह मुझे यह जताती है कि वह मेरे को लेकर सहज है। बच्चे उतना प्यार नहीं देते, वे जितना स्वयं चाहते हैं। हरेक बच्चे के लिए बड़ों का अनुमोदन ही प्यार है, और उनकी नापसंदगी नफरत। बच्चे समरहिल के शिक्षकों को भी उसी नज़रिए से देखते हैं जिससे मुझे बच्चों को यह अहसास हमेशा रहता है कि शिक्षक उनके पक्ष में हैं।

मैंने मुक्त बच्चों की ईमानदारी का पहले भी उल्लेख किया है। यह ईमानदारी अनुमोदन का नतीजा है। उनके पास कृत्रिम आचरण के कोई मानदण्ड नहीं होते जिन्हें उन्हें अपने ज़िंदगी में उतारना हो, कोई कठिनाई नहीं होती जो उनके जकड़े। उन्हें ज़िंदगी को झूठ के रूप में जीने की कोई ज़रूरत नहीं होती।

नए छात्र-छात्राएं, जिन्हें दूसरे स्कूलों में सत्ता के प्रति श्रद्धा सिखाई गई हो, मुझे 'सर' कह कर संबोधित करते हैं। पर जब उन्हें पता चल जाता है कि मैं सत्ता का प्रतीक नहीं हूं, वे 'सर' कहना बंद कर देते हैं और मुझे नील कहने लगते हैं। वे व्यक्तिगत स्तर पर मेरे से अनुमोदन नहीं चाहते। वे पूरे स्कूल समुदाय का अनुमोदन चाहते हैं। जब पुराने दिनों में मैं स्कॉटलैण्ड के गांव में स्कूलमास्टर था, कई बच्चे कक्षाओं के बाद कमरे की सफाई में, झाड़ियों की हेज को काटने में मेरी मदद करते थे। यह सब ईमानदारी से नहीं किया जाता था। यह किया जाता था मुझसे अनुमोदन और प्रशंसा पाने के लिए क्योंकि मैं बॉस था।

समरहिल का कोई बच्चा मेरी प्रशंसा पाने के लिए कुछ नहीं करता है, यद्पि लड़के-लड़कियों को खरपतवार निकालते देखने बाहर से आए मेहमान यही सोचते हैं। उस काम को करने की प्रेरणा का मुझसे व्यक्तिशः कोई लेना-देना नहीं होता। इस घटना के समय बच्चे इसलिए खरपतवार निकाल रहे थे क्योंकि आम सभा में तय किया गया था कि बारह साल से बड़े सभी बच्चे सप्ताह में दो घंटे बाग में काम करेंगे। बाद में यह नियम उन्होंने वापस भी ले लिया।

फिर भी किसी भी समाज के प्रशंसा पाने की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। अपराधी वह व्यक्ति होता है जो समाज के अधिकांश लोगों की प्रशंसा पाने की इच्छा को उसके विपरीत में बदलने पर बाध्य हो जाता है। उसके मन में समाज के प्रति तिरस्कार होता है। अपराधी हमेशा अहंकारी होता है। मैं रातों रात अमीर बनना चाता हूं, और दुनिया जाए भाड़ में, जेल की सज़ा उसके अहं के लिए बख्तर का काम करती है। वह इससे अकेला पड़ जाता है। खुद के बारे में, बेरहम समाज के बारे में सोचता हैं, जिसने उसे सज़ा दी है। सज़ाएं और बंदीगह किसी अपराधी को नहीं सुधार सकते है, क्योंकि वे उसके लिए समाज की नफ़रत का सबूत हैं। समाज वे मौके ही समाप्त कर देता है, जिनके ज़रिए वह फिर से सामाजिक बन सके, दूसरों की प्रशंसा पा सके। कैद करने की पागल व अमानवीय निरर्थक है। क्योंकि वह बंदी की मानसिकता को छू तक नहीं पाती।

इसलिए मैं कहता हूं कि किसी भी सुधारक स्कूल में पहली ज़रूरत है सामाजिक अनुमोदन पाने का अवसर। जब तक बच्चों को निरीक्षक को सलाम ठोकना होगा, सेना जैसी कतारों में खड़े रहना होगा, सुप्रिन्टेंडेंट के कमरें में घुसते ही उछल कर खड़े होना होगा, तब तक वास्तविक आज़ादी नहीं होगी। अर्थात सामाजिक अनुमोदन पाने का अवसर भी नहीं होगा। होमर लेन ने पाया था कि जब भी कोई नया लड़का लिटिल कॉमनवैल्थ में आता तो वह दूसरों की प्रशंसा पाने के लिए उन्हीं तकनीकों को काम में लेता जो वह अपने बस्ती की गलियों में इस्तेमाल करता रहा था। वह अपने कारनामों की डींगे हांकता, दुकानों से वह किस सफाई से चीजें उड़ाता यह बताता, पुलिस को कैसे चकमा देता था इसकी गाथाएं सुनाता पर जब उसे पता लगता कि युवक प्रशंसा पाने के इस तरीके से उबर चुके हैं, तो वह हतप्रभ रह जाता। वह अपने नए साथियों को 'जनानियां' कह कर कमतर सिद्ध करने की कोशिश करता। पर क्रमशः प्रशंसा पाने की स्वाभाविक वृति उसे साथियों की प्रशंसा पाने पर बाध्य करती और तब लेन द्वारा व्यक्तिगत मनोविश्लेषण के बिना ही वह खुद को अपने नए साथियों के अनुरूप ढालने लगता। चंद महीनों में वह एक सामाजिक जीव बन चुका होता था।

साधारण, शालीन, संवेदनशील पति को भी मै संबोधित करना चाहता हूं जो हर शाम साढ़े पांच की बस से घर लौटता है।

मैं तुम्हें जानता हूं जॉन ब्राउन। मैं जानता हूं कि तुम अपने बच्चों से प्यार करना चाहते हो, बच्चों का प्यार चाहते हो। जब रात दो बजे तुम्हारे पांच साल का नन्हा अकारण ही रो-रो कर जगा देता है, तो उस पल तुम्हारे मन में खास प्रेम नहीं उमड़ता पर याद रखना कि उसके रोने का कोई कारण ज़रूर है। चाहे वह कारण तुम्हें उस वक्त पता न चले। अगर तुम्हें गुस्सा आ रहा है, तो कोशिश करो कि तुम उसे न जताओ। पुरुष की आवाज बच्चे के लिए स्त्री की आवाज की तुलना में ज्यादा डरावनी होती है। तुम जान भी नहीं सकोगे कि गलत समय उठी एक नाराज़ आवाज शिशु के मन में ताउम्र के लिए कौन से भय बसा जाएगी।

माता-पिता को दिए गए निर्देशों वाला पैम्फलेट कहता है, बच्चे को बिस्तर में साथ लेकर मत सोओ। इस निर्देश को भूल जाओ। नन्हें का जितना चिपटा दुलराओ, दुलार करो। दूसरों के सामने प्रदर्शन के लिए अपने बच्चे का इस्तेमाल मत करो। उसकी प्रशंसा और आलोचना दोनों में सावधानी बरतो। उसकी मौजूदगी में उसका गुणगान सही नहीं है। 'जी हां, केटी बढ़िया कर रही है! पिछली बार अपनी कक्षा में अव्वल रही थी। बड़ी चतुर है, हमारी केटी। कहने का मतलब यह नहीं कि बच्चे की तारीफ़ हीं नहीं करनी चाहिए। बच्चे से ज़रूर कहें कि तुमने जो पतंग बनाई, वह बहुत बढ़िया है। पर किसी मेहमान के सामने कुछ सिद्ध करने के लिए की गई प्रशंसा गलत है। जब हर ओर प्रशंसा तैरती है तो बतखे भी खुद को हंस मानने लगती हैं। बच्चा खुद के बारे में अवास्तविक बन जाता है। सच्चाई से दूर भागने में, बच्चे की मदद मत करो। दूसरी ओर अगर बच्चा फेल होता है, तो यह बात बार-बार दोहरा कर उसे जलील मत करो। स्कूल की रिपोर्ट में नंबर कम हो तो उसे मत फटकारो। और अगर आपका बिली पिटकर रोता हुआ लौटे तो उसे नामर्द मत कहो।

अगर तुम यह कहते हो, "जब मैं छोटा था" तो तुम एक भारी गलती कर रहे हो। संक्षेप में तुम्हें अपने बच्चे को वह जैसा है, उसी रूप में स्वीकारना है, उसे अपना प्रतिबिम्ब बनाने की कोशिश बेकार है।

घर और जीवन में मेरा एक ही असूल है। वह यह कि ईश्वर के लिए दूसरों को उनकी ज़िंदगी जीने दो। यह दृष्टिकोण हरेक स्थिति में लिए अपनाना ज़रूरी है।

यही अकेला नज़रिया है जो सहिष्णुता पनपाता है। आश्चर्य है कि इससे पहले मुझे सहिष्णुता शब्द ही नहीं सूझा था। एक मुक्त शाला के लिए यह शब्द बिलकुल सही है। हम बच्चों के प्रति सहनशीलता जाता कर उन्हें सहिष्णु बना रहे हैं।

भय

मैंने अपना काफ़ी समय उन बच्चों की मरहम-पट्टी में बिताया है जो दूसरों द्वारा आहत हुए हैं, जिनके मन में भय बैठाया गया है। बच्चे के जीवन में भय एक भयानक चीज है। भय को जड़ से हटाना चाहिए। बड़ों का भय, सज़ा का डर, नापंसदगी का डर भगवान का खौफ़। भय के माहौल में केवल नफरत ही पनपती है।

हम तमाम चीजों से डरते हैं - गरीबी से, मखौल उड़ने से, भूतों से, चोरों से, दुर्घटना से लोगों की राय से, बीमारियों से, मौत से। किसी भी इंसान की कहानी उसके डरों की कहानी है। लाखों वयस्क हैं, जो अंधेरे में चलने से डरते हैं। हजारों ऐसे लोग हें जो पुलिस को अपने दरवाजे की घंटी बजाते पाकर व्यग्र हो जाते हैं। अधिकांश यात्री जहाज डूबने या हवाई जहाज की दुर्घटना की दुश्कल्पना करते हैं। रेलों की यात्रा करने वाली बीच के डब्बों में बैठना पसंद करते हैं। लोगों का पहला सरोकार है "सुरक्षा"।

मानव इतिहास में वह समय भी होगा जब व्यक्ति मौत के डर से भागता और छुपता होगा। आज का जीवन पहले से तहीं सुरक्षित है। आज आत्मरक्षा के लिए भय की जरुरत नही है। फिर भी आज इंसान पाषाण युग के मानव से अधिक भय महसूस करता है। हमारे पूर्वजों के सामने तो केवल विशालकाय दानवों का ही भय था। पर हमारे सामने तो तमाम दानव हैं - ट्रेन, जहाज, हवाई-जहाज, चोर, मोटर गाड़ियां ओर इन सबसे बड़ा है, पकड़े जाने का डरं हमारे लिए भय अब भी ज़रूरी है। भय के चलते ही मैं सावधानी से सड़क पार करता हूं।

प्रकृति में भय किसी प्रजाति के संरक्षण के लिए मिलता है। खरगोश और घोड़े इस लिए बचे रहे, क्योंकि भय उन्हें खतरों से बचाने के लिए भागने पर मजबूर करता रहा। जंगल कानून में भय बेहद महत्वपूर्ण है।

भय हमेशा आत्मकेंद्रित होता है। हमें अपनी जान की, या अपने चहेतों की जान की फिक्र होती है। पर ज्यादा फिक्र खुद की जान की होती है। जब मैं छोटा था तब शाम को अंधेरे में, खेत तक जाकर दूध लाने से डरता था। पर जब मेरे साथ मेरी बहन होती थी, तो मुझे यह डर नहीं सताता था कि कोई उसे मार डालेगा। भय हमेशा आत्मकेंद्रित होता है, क्योंकि अंन्ततः वह मौत का ही डर होता है।

असली हीरो वह व्यक्ति है जो अपने भय को सकारात्मक उर्जा में बदल सकता है। हीरो भय पर काबू पाता है। एक सिपाही को जो चीज सबसे परेशान करती है वह है भय। एक भीड़ अपने डर को सकारात्मक काम में नहीं बदल सकती। साहस से कहीं व्यापक है कायरता।

हम सभी कायर हैं। कुछ अपनी कायरता छुपा पाते हैं। दूसरे जता देते हैं। वैसे कायरता हमेशा सापेक्ष होती है। कुछ चीजों में आप बड़े साहसी हो सकते हैं, तो दूसरों में बिल्कुल डरपोक। मुझे रंगरूट के रूप में बम फेंकने का पहला पाठ याद आता है। एक रंगरूट उसे गढ्ढे में नहीं फेंक पाया। वह फटा, और कुछ लोग उस धमाके से गिरे। भाग्य से कोई भय नहीं। उस दिन की बमबारी बंद कर दी गई। दूसरी सुबह हम वापस उसी जगह पहुंचे। जब मैंने पहला बम उठाया तो मेरे हाथ कांप रहे थे। सार्जेंट ने हिकारत से मेरी और देखा और कहा कि मैं कायर हूं। मैंने यह स्वीकारा।

सार्जेन्ट बड़ा बहादुर था। उसके कारनामों पर उसे विक्टोरिया क्रॉस मिल चुका था। वह शारीरिक भय जानता तक न था। काफ़ी दिनों बाद उसने मुझे बताया "नील मुझे उस स्वॉक्ड को कवायद करवाना पसंद नहीं, जिसमें तुम होते हो। मुझे बड़ी घबराहट होती है।" मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने जानना चाहा कि ऐसा क्यों है?

"क्योकि तुम्हारे पास एम.ए. की डिग्री है, और मैं तो व्याकरण तक का खून कर देता हूं," उसने कहा। मनोविज्ञान का अध्ययन हमें यह नहीं बता पाता कि क्यों एक बच्चा साहसी तो दूसरा दब्बू पैदा होता है। संभव है कि माता-पिता की परिस्थितियों की इसमें भूमिका हो। अगर मां बच्चा चाहती न हो, तो संम्भव है कि वह अपनी चिंताए गर्भ के समय अपने बच्चे को दे देती हो। संभव है कि अनचाहा बच्चा दब्बू चरित्र के साथ इस वजह ले पैदा होता हो क्योंकि वह मां के गर्भ की सुरक्षा में ही दबे रहना चाहता हो।

यद्यपि पारिवारिक प्रभावों पर हमारा कोई बस नहीं है, फिर भी इतना निश्चित है कि कई बच्चे अपने प्रांरम्भिक पालन-पोषण के कारण डरपोक बन जाते हैं। इस तरह की कायरता ज़रूर रोकी जा सकती है।

एक जाने माने मनोचिकित्सक ने मुझे एक नौजवान के बारे में बताया था। छः साल की उम्र में उस लड़के ने एक सात साल की लड़की में रुचि जताई। उसके पिता ने उसकी जमकर ठुकाई की और यों उसे उम्र भर के लिए डरपोक बना दिया। उसने अपनी तमाम उम्र उसी अनुभव के दोहराए जाने की दहशत में, पिटाई ओर सज़ा की आंशका में बिताई। वह हमेशा किसी विवाहित, सगाई की हुई लड़कियों की ओर आकर्षित होता और डरता कि कहीं महिला का पति या मंगेतर उसकी पिटाई न कर डाले। यही भय दूसरे मामलों में भी समा गया। वह बेहद नाखुश इंसान में बदल गया। उसकी आत्मा दब्बू बन गई, वह हमेशा हीन भावना से ग्रसित रहा। हमेशा किसी खतरों की संभावना से आशंकित रहा। छोटी-छोटी बातों में उसका खौफ़ झलकता। चटख खिली धूप में भी अगर उसे दस कदम चलना होता तो वह बरसाती और छाता लेकर ही निकलता। वह जीवन को लगातार नकारता रहा।

मैं भय और आशंका में अंतर करने की कोशिश करता हूं। शेर से डरना स्वाभाविक है और स्वस्थ भी। खराब कार चालक द्वारा चलाई जाने वाली गाड़ी में बैठने से डरना भी स्वाभाविक और स्वस्थ है। अगर यह भय नहीं होता तो हम सब, बसों द्वारा कबके कुचले गए होते।

पर एक मकड़ी, चूहे या भूत का डर अस्वाभाविक और अस्वस्थ हैं। इस तरह का भय दरअसल महज आशंका है। वह फोबिया है। फोबिया में जिस चीज का भयानक भय होता है, वह दरअसल उतनी खतरनाक भी नहीं होती। वह प्रतीक मात्र होती है। जबकि उससे जन्मी आशंका वास्तविक होती है।

ऑस्ट्रेलिया जैसे देश में मकड़ी का भय तार्किक है। वहां मकड़ियां जानलेवा हो सकती हैं, पर इंग्लैण्ड या अमरीका में यह महज फोबिया ही है। यहां मकड़ी उस चीज का प्रतीक बन जाती है। जिसका भय हमारे अंदर बैठा है। इसी प्रकार बच्चों में भूत का डर फोबिया है। भूत उस चीज का प्रतीक है जिससे बच्चा असल में डरता है। अगर उसे शुरू से ईश्वर से डरना सिखाया गया है तो यह डर मौत का भी हो सकता है।

कई बार छोटे बच्चों में भी फोबिया देखा जा सकता है। एक कठोर पिता के पुत्र में घोड़े, शेर, या पुलिसवाले का फोबिया घर कर सकता है। जिस भी चीज को पिता प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है, उसके प्रति फोबिया पैदा हो सकता है। यहां भी हम बच्चे के जीवन में सत्ता के प्रति भय का खतरा साफ देख सकते हैं।

बच्चे के जीवन में सबसे खतरनाक भय 'नरक' का हो सकता है। मैं अक्सर सड़क पर किसी मां को यह कहते सुनता हूं फौरन बंद करो। देखो पुलिसवाला आ रहा है। इसका एक गौण असर तो यह पडता है कि बच्चा जल्दी ही यह समझ जाता है कि मां झूठ बोलती है पर इसका महत्तवपूर्ण और खतरनाक परिणाम यह होता है कि बच्चे के लिए पुलिसवाला ही शैतान, का रूप ले लेता है। वह, जो बच्चों को उठा लेता हो, उन्हें अंधेरी कोठरी में बंद कर देता हो। वह सज़ा देने वालों खुदा और सज़ा देने वाले ौतान दोनों का प्रतीक बन जाता है। अपने पिछले अपराधों के कारण भी भय पनपते हैं। हम अपनी कल्पना में कई हत्याएं करते है। मेरा विश्वास है कि मैं जब किसी पांच साल के बच्चे की इच्छा के आड़े आता हूँ तो वह कल्पना में मेरा खून कर डालता है। मेरे छात्र-छात्राएं कई बार पिचकारी बंदूक ले चीखते हैं "हाथ उठाओ। तुम्हें मार डाला।" और यों वे सत्ता के प्रतीक का खात्मा करते हैं और भय मुक्त हो जाते है। मैनें कई बार जानबूझ कर तानाशाहीपूर्ण निर्णय लिए हैं, ताकि मैं बंदूकों के खेल पर उसका असर देख सकूं। ऐसे दिनों में मुझे दसियों बार मार गिराया गया है। इस कल्पना के बाद भय आता है। मान लो नील सच में मर जाए। तब मैं ही अपराधी होउंगा, मैंने ही उसकी मौत चाही थी।

हमारी छात्राओं में एक लड़की तैरते समय दूसरों को पानी में नीचे खींचा करती थी। उसे बड़ा मज़ा आता था। बाद में उसके मन में पानी का फोबिया बैठ गया। वह अच्छी तैराक थी पर कभी गहरे पानी में न जाती। हुआ यह कि उसने अपनी कल्पना में खुद से टक्कर लेने वाले दूसरे तमाम तैराकों को डूबा दिया था। उसके मन में न्याय का भय था। मेरे बुरे विचारों की सज़ा के रूप में मैं खुद ही डूब जाउंगी।

नन्हा एल्बर्ट अपने पिता को तैरते देख तट पर खड़े-खड़े ही डर जाता था। डरता इसलिए था कि उसने अक्सर मन में चाहा था कि पिता मर जाए। वह अपने अपराधबोध से ही डरता था। बच्चे कल्पना में लोगों को मारते हैं यह बात उस वक्त इतनी भयावह नहीं लगती जब हम यह समझ लेते हैं कि बच्चे केवल उस व्यक्ति को रास्ते से हटाना चाहते हैं जिससे वे बेहद डरते हैं।

मैं ऐसे वयस्कों से मिला हूं जो अवचेतन रूप से स्वयं को अपनी माता या अपने पिता की मौत का जिम्मेदार मानते हैं। ऐसे भय को रोका जा सकता है। बशर्ते माता-पिता मार-पिटाई या डांट फटकार द्वारा बच्चे में लगातार घृणा और उससे उपजे अपराधबोध को न पनपने दें। सैकड़ों स्कूल जो आज भी शारीरिक दण्ड देते हैं, या दूसरी तरह की कठोर सज़ाएं देते हैं वे बच्चों को स्थाई नुकसान पहुँचा रहे हैं।

वयस्कों के मन में कहीं यह बात गहराई तक घर कर गई हैं कि अगर बच्चों को कोई डर नहीं होगा तो वे अच्छे कैसे बनेंगे? जो अच्छाई नरक के डर, या पुलिसवालें के डर या सज़ा के डर पर टिकी हो वह अच्छाई है ही नहीं। वह तो कायरता है। जो अच्छाई प्रशंसा या स्वर्ग पाने की आशा पर टिकी है वह बच्चों को डरपोक बनाती है क्योंकि वह उन्हें जीवन से डरना सिखाती है। यही अनुशासित बच्चों की अच्छाई है। हजारों शिक्षक सज़ा को भय जगाए बिना भी अपना काम बखूबी कर सकते हैं। जिन्हें डर के इस्तेमाल की ज़रूरत है वे अक्षम हैं, उन्हें शिक्षा व्यवसाय से खदेड़ देना चाहिए।

बच्चे हम से डर कर हमारे मूल्य स्वीकार सकते हैं। और हम वयस्कों के मूल्य भला क्या हैं? इस सप्ताह मैंने सात डॉलर एक कुत्ते खरीदने में, दस डॉलर औज़ार खरीदने में और ग्यारह डॉलर तम्बाकू खरीदने में खर्चे। मैं वैसे तो सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध हूँ, फिर भी मैंने ये पैसे गरीबों में नही बांटे। यही कारण है कि अब मैं किसी से यह नहीं कहता कि झुग्गी-झोपड़ियां समाज का कलंक हैं। पहले कहता था। उस वक्त तक, जब-तक मुझे यह नहीं पता चला कि मैं फरेबी कर रहा हूं।

सबसे सुखी घर वह है, जहां माता-पिता नैतिकता का उपदेश झाड़े बिना अपने बच्चों के साथ ईमानदारी बरतते हैं। इन घरों में भय नहीं घुसता। यहां बाप-बेटा, दोस्त होते हैं। वहां प्यार पनपता है। दूसरे घरों में प्यार, भय के नीचे कुचल दिया जाता है। दिखावटी गरिमा और मांग कर चाही गई श्रद्धा, प्रेम को दूर ही रखते हैं। जब इज़्ज़त करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो इसका अर्थ होता है, भय।

समरहिल में जो बच्चे अपने माता-पिता से डरते हैं, वे शिक्षकों के कमरे में मंडराया करते हैं। मुक्त माता-पिता के बच्चे हमारे पास नहीं फटकते। डरे हुए बच्चे, हमें लगातार जांचते हैं। एक ग्यारह साल का लड़का, जिसके पिता बड़े सख्त हैं, दिनमें बीसियों बार मेरा दरवाजा खोलता है। वह झांकता है, कुछ कहता नहीं है, फिर दरवाजा भेड़ देता है। मैं कभी-कभार उसे कहता हूं "ना, मैं अभी मरा नहीं हूं।" उसने मुझे वह प्यार दिया है, जो उसका पिता स्वीकार नहीं सका यह डर सताता है कि उसका नया और आदर्श पिता कहीं गायब न हो जाए। उसके भय के पीछे यह भी इच्छा निहित है कि उसका असन्तोषजनक पिता गायब हो जाता तो अच्छा होता।

उन बच्चों के साथ रहना आसान होता है, जो हम से डरते हैं, उनकी बनिस्बत जो हमें प्यार करते हैं। डरने वाले बच्चों के साथ ज़िंदगी शांत होती है। क्योंकि वे डरते हैं, वे दूर रहते हैं। मुझे, मेरी पत्नी और समरहिल के तमाम शिक्षकों को बच्चे प्यार करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि हम उनका अनुमोदन करते हैं। उन्हें इससे अधिक कुछ चाहिए भी नहीं। उन्हें पता है कि हम उनकी कारगुज़ारियों पर नाक-भौं नहीं चढाएंगें, इसलिए व हमारे आस-पास रहना पसन्द करते हैं।

हमारे नन्हें-मुन्ने बिजली के कड़कने या बादलों के गरजने से नहीं डरते। वे छोटे-छोटे तम्बुओं में भयानक तूफान में भी सो सकते हैं। उनमें अंधेरे का डर भी कम नज़र आता है। कभी-कभार कोई आठ साल का बच्चा कई रात अकेले सोता है। आज़ादी हमेशा निर्भय बनाती है। मैंने अक्सर दब्बू बच्चों को निर्भीक युवक-युवतियों में बदलते देखा है। फिर भी सामान्यीकरण करना गलत होगा। क्योंकि कई अन्तर्मुखी बच्चे कभी भी साहसी नहीं बन पाते। कई लोगों के मन में बसे भूत-दानव, ताउम्र उनके साथ रहते हैं।

अगर किसी बच्चे को बिना डराए पाला-पोसा गया है, पर उसमें फिर भी डर समाया है, तो सम्भव है कि वह भय जन्मजात हो। इस प्रकार के भय से निपटने में हमारे सामने सबसे बड़ी बाधा है, बच्चे के जन्म के पहले की स्थितियों का ज्ञान। आज तक यह स्पष्ट नहीं है कि गर्भवती माताएं, अपने डर कोख में पल रहे बच्चे को दे देती हैं या नहीं।

पर यह सब जानते हैं कि आस-पास की दुनिया से बच्चा कई तरह के डर सीखता है। छोटे से छोटा बच्चा आज संभावित युद्धों और भयावह ऍटम बमों के बारे में सुनता है। ऐसी चीजों के डर के साथ, नरक की भय जुड़ जाता है और वह एक फोबिया का रूप धर लेता है। स्वस्थ और स्वतंत्र बच्चे भविष्य से डरते नहीं हैं। वे खुशी से उसकी राह तकते हैं। उनके बच्चे भी कल के डर से थर्राते नहीं हैं।

मुझे उस पिता को कुछ कहना है, जो अपने बच्चे को भय, घृणा या अविश्वास के बिना बड़ा करना चाहता है:

कभी भी बॉस, निरीक्षक या राक्षस बनने की कोशिश मत करो। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी पत्नी बच्चों को धमकी दे सके "आने दो, अपने पापा को।" यह मत सहो। इसका मतलब होगा कि जो घृणा उस पल मां की ओर लक्षित होनी थी, वह तुम्हारे हिस्से जाएगी।

खुद को ऊंचे आसन पर मत बिठा लो। अगर तुम्हारा बच्चा यह जानना चाहे कि क्या तुमने बचपन में कभी बिस्तर गीला किया था, तो उसे ईमानदारी से जवाब दो। अगर तुम बॉस बने रहोगे तो तुम्हें इज़्ज़त तो मिलेगी, पर गलत तरह की इज़्ज़त मिलेगी। उसमें हमेशा भय का पुट होगा। पर अगर तुम उनके स्तर पर उतरोगे और यह बता सकोगे कि तुम भी बचपन में डरपोक थे, तो तुम्हें सच्ची इज़्ज़त मिलेगी। ऐसी इज़्ज़त, जिसमें प्यार और समझ शामिल हो और डर का नामोंनिशान हो।

बच्चे के ग्रंथियां पैदा किए बिना पालना इतना कठिन भी नहीं है। बच्चे को कभी डराना नहीं चाहिए, उसमें अपराध बोध नहीं जगाना चाहिए। हर तरह का डर हटाना भी सम्भव नहीं हो तो अचानक जोर से दरवाजा बन्द होते हम चौक जाते हैं। पर बच्चे पर बाहर से थोपा गया अस्वास्थ्यकर डर तो हम हटा ही सकते हैं। सज़ा का डर हटा सकते हैं, नाराज़ खुदा का डर हटा सकते हैं, नाराज़ माता-पिता का भय हम हटा सकते हैं।

दीनबोध व कल्पना :

वह क्या है, जो बच्चे में हीन भावना जगाता है? बच्चा बड़ों को वह सब करते देखता है, जो वह खुद कर नहीं सकता, या जिसे करने की उसे अनुमति नहीं होती।

बच्चों की कल्पनाएं अहं को केन्द्र में रखती हैं। वे ऐसे सपने होते हैं, जिसमें सपना देखने वाला ही हीरो या हिरोइन होता है। यह दुनिया की वह कहानी होती है, जैसी वह दरअसल होनी चाहिए। यह वही दुनिया है, जिसमें हम जैसे वयस्क व्हिस्की के गिलास थामे घुसते हैं, या उपन्यासों या चलचित्रों के माध्यम से घुसते हैं। बच्चा इस दुनिया में कल्पना के सहारे प्रवेश पाता है। कल्पना वास्तविकता से भागने की कोशिश होती है। वह इच्छापूर्ति की दुनिया में ले जाती है। ऐसी दुनिया में जहां कोई सीमाएं न हों। पागल भी वहां सैर करने जाते हैं। सामान्य बच्चे भी कल्पनाएं करते हैं। कल्पना जगत सपनों की दुनिया से अधिक आकर्षक होता है। सपनों में दु:स्वप्न भी शामिल होते हैं। पर काल्पनिक दुनिया पर हमारा कुछ नियंत्रण होता है। हम उसी की कल्पना करते हैं, जो हमारे अहं को तुष्ट करें।

जब मैं जर्मनी के एक स्कूल में पढ़ाता था तो मेरी एक दस वर्षीया यहूदी छात्रा थी। उसके मन में तमाम डर थे। पहले दिन वह एक बड़े से बस्ते में किताबें लाईं। मेज़ पर बैठ कर वह पुराने किस्म के हिसाब करने लगी : 4 जमा 563, जमा 207 को 4,तमा 379 से भाग दो। तीन दिनों तक यह सिलसिला चला। मैंने जानना चाहा कि क्या उसे ऐसे हिसाब करना पसन्द है। उसने धीमे से जवाब दिया- हां।

चौथे दिन उसे त्रस्त हो गुणा-भाग करते पा कर मैंने फिर पूछा "क्या तुम्हें सच में ऐसे हिसाब करना पसन्द है?" वह फफक पड़ी। मैंने किताब छीनी और कमरे के दूसरे कोने में फेंक दी। मैंने कहा "यह मुक्तशाला है। तुम जो चाहो वह कर सकती हो।" वह अचानक खुश दिखने लगीं उसने पूरे दिन कोई काम नहीं किया, सिर्फ सीटी बजाती रही।

कई महीनों बाद मैं जंगल में टहलने गया हुआ था। अचानक एक आवाज कानों में पड़ी और तब स्लोविया दिखी। वह भी टहल रही थी, हंस और बोल रही थी। ज़ाहिर था कि वह कई चरित्रों की भूमिका अदा कर रही थी। उसने मुझे पास से गुज़रते तक देखा।

अगले दिन मैंने उसे कहा कि मैंने उसे जंगल में खुद से बतियाते सुना था। वह अचकचा गई और भाग खड़ी हुई। दोपहर वह मेरे दरवाजे के पास खड़ी मिली। अन्तत: उसने साहस जुटाया, अंदर आई और बोली, "बताना बड़ा मुश्किल है। फिर भी मैं क्या कर रही थी, यह बताना चाहती हूं।"

एक खूबसूरत सी कहानी पता चली। सालों से स्लोविया सपनों के एक गांव में रहती थी। उसने गांव का नाम ग्रूनवाल्ड रखा था। उसने गांव के नक्शे दिखाए, घरों की बसावट बताई। उसने हर घर में अलग-अलग लोग बसाए थे। वह हरेक को गहराई से जानती थी और जो मैंने उस दिन जंगल में सुना था, वह गांव के दो लड़कों-हान्स व हेल्मुट-की बातचीत थी।

इस कल्पना के पीछे क्या है, यह जानने में मुझे कुछ सप्ताह लगे। स्लोविया अपने माता-पिता की इकलौती औलाद थी। साथ खेलने वाले संगी-साथी थे नहीं, सो उसने कल्पना में एक गांव ही बना लिया, जिसमें उसके संगी-साथी बसते थे।

मैंने उसके कल्पना जगत को तोड़ने का निर्णय लिया और उसे उसके पीछे की सच्चाई बता दी। दो दिन तक वह बड़ी दु:खी रही। उसने मुझे रोते-रोते बताया कि "मैंने कल रात ग्रूनवाल्ड जाने की कोशिश की, पर जा नहीं सकी। तुमने वह सब बिगाड़ दिया है, जो मुझे जिन्दगी

में सबसे प्यारा था।"

पर दस दिन बाद एक शिक्षक ने टिप्पणी की "स्लोविया को क्या हुआ? वह सारे दिन गुनगुनाती फिरती है। और बेहद खूबसूरत भी लगने लगी है।" यह सच था, वह सच में खिल उठी थी। अचानक तमाम चीजों में वह रुचि लेने लगी थी। वह पाठों के लिए जा रही थी, अच्छी तरह पढ़ रही थी। उसने चित्रकारी करनी शुरू की और कुछ सुन्दर चित्र बनाए। संक्षेप में वह फिर से वास्तविकता से जुड़ सकी। उसके अकेलेपन ने ही उसे एक काल्पनिक जगत की रचना पर मजबूर किया था।

एक और बच्ची थी, जो काल्पनिक जगत में एक बेहतरीन अभिनेत्री थी। दर्शकों की भीड़ तालियों की गड़गड़ाहट से उसका स्वागत करती थी। उसे दर्शकों ने सोलह बार मंच पर फिर-फिर बुलाया था।

एक नौ साल का बच्चा है, जो रेलगाड़ी को लेकर कल्पनाएं करता है। वह हमेशा रेल का चालक बनता है और अमूमन राजा-रानी (माता-पिता) उसकी रेल में सवार होते हैं।

नन्हें चार्ली की कल्पना जगत में ढेरों हवाई जहाज और गाड़ियां हैं।

जिम अपने अमीर चाचा की कहानी सुनाता है, जिसने उसे रॉल्स रॉयस गाड़ी उपहार में दी थी। गाड़ी छोटी थी, बच्चे के लायक, पर पैट्रोल से चलने वाली। जिम कहता है कि उसे अपनी नई गाड़ी चलाने के लिए लाईसेंस की ज़रूरत नहीं है। एक दिन मैंने पाया कि कुछ, छोटे बच्चे जिम के उकसाने पर चार मील दूर स्टेशन जाने को तैयार थे। उन्हें जिम ने कहा था कि उसकी गाड़ी वहां भेज दी गई है और वे सब उसमें बैठकर लौट सकते हैं। मैंने चार मील मिट्टी-धूल में चलने के बाद जिम की काल्पनिक गाड़ी न पाकर हताश होने की कल्पना की और उनका अभियान रोकने का निर्णय लिया। मैंने कहा कि वे अगर चले गए तो खाने का क्या होगा। उनकी आवासगृह माता ने वादा किया कि वे स्टेशन तक की यात्रा के एवज में बच्चों को सिनेमा दिखाने ले जाएगीं। इस पर लड़कों ने अपनी बरसातियां उतार दी। जिम आश्वस्त हुआ, क्योंकि वह बखूबी जानता था कि उपहार में गाड़ी देने वाला उसका चाचा, काल्पनिक था।

जिम जब से समरहिल आया था, वह दूसरे बच्चों पर इस तरह रौब गांठने की कोशिश करता रहा था। कई दिनों तक छोटे बच्चों का झुण्ड लाइम बन्दरगाह की ओर ताकता रहता था। जिम ने उन्हें बताया था कि चाचा के दो बड़े समुद्री जहाज हैं। सो बच्चों ने उसे कहा था कि वह चाचा को चिट्ठी लिखे और उनसे एक मोटरयुक्त नाव उपहार में मांग ले। वे इस इंतजार में खड़े रहते थे कि एक न एक दिन समुद्री जहाज एक मोटरचालित नौका लेकर आएगा। जिम हीन भावना से ग्रसित छोटा सा लड़का था और इससे उबरने की कोशिश में कल्पनाएं करता था।

अगर सभी कल्पनाओं को नष्ट कर दिया जाए तो जीवन कितना नीरस और उबाऊ बन जाए। रचना के हरेक कर्म के पहले कल्पना ज़रूरी होती है। किसी भी खूबसूरत भवन या मूर्ति को बनाने के पहले उसका शिल्पकार उसे अपनी कल्पना में पूरा का पूरा देखता ही है। पर वही सपना संजोने लायक है, जिसे वास्तविकता में उतारा जा सके। दूसरी तरह का सपना, कल्पना जगत में उड़ानें भरते रहने वाला सपना, संभव हो तो तोड़ना चाहिए। अगर बच्चा हमेशा कल्पना जगत में ही जीता जाए तो उसमें ठहराव आ सकता है। अधिकांश स्कूलों में जिन बच्चों को ढपोर-शंख कहा जाता है, वे दरअसल अपनी काल्पनिक दुनिया में खोए रहते हैं। कोई बच्चा गणित में उस समय कैसे रुचि ले सकता है, जब उसका चाचा उसे रॉल्स-रॉयस भेजने वाला हो?

कई बार नन्हें बच्चों के माता-पिता से पढ़ने-लिखने को लेकर मेरी झड़पें हुई हैं। एक मां ने लिखा "मेरा लड़का ऐसा हो, जो समाज में फिट बैठे। आप उसे जबरदस्ती पढ़ना-लिखना सिखाएं।" अमूमन मेरा जवाब यह होता है, "आपका बच्चा काल्पनिक दुनिया में रहता है। उसे वहां से निकालने में उस दुनिया को तोड़ने में तकरीबन साल भर लगेगा। उसे पर इस वक्त पढ़ने-लिखने का दबाव डालना अपराध होगा। जब तक काल्पनिक जगत से उसकी रुचि नहीं हट जाती। पढ़ने में उसकी रत्ती भर रुचि नहीं होगी।"

यह संभव है कि मैं बच्चे को अपने कमरे में ले जाऊं और फटकारूं, कहूं कि द्व"दिमाग से चाचाओं और गाड़ियों के फितूर निकालो। ये सब मनगढंत बाते हैं और तुम यह जानते हो। कल सुबह पढ़ने जाना, नहीं तो तुम्हें मैं दूसरी तरह बात समझा दूंगा।" यह कहना एक अपराध होगा। जब तक उस कल्पना की जगह कुछ दूसरा स्थापित करने का विकल्प सामने न हो, उसे तोड़ना गुनाह है। अच्छा तो यह रहे कि हम बच्चों को उस बारे में बोलने को प्रोत्साहित करें। दस में से नौ बच्चे धीरे-धीरे खुद ही उस कल्पना में रुचि लेना बंद कर देते हैं। केवल उस स्थिति में जब बच्चा वास्तविकता से कट, सालों-साल काल्पनिक जगत में रहता हो, तब ही उसे झटके से तोड़ने की बात सोची जा सकती है।

मैंने कहा कि कल्पना की जगह कुछ दूसरा स्थापित किया जाना चाहिए। अपने स्वास्थ्य के लिए हरेक बच्चे, हरेक वयस्क के पास, एक ऐसा क्षेत्र ज़रूर होना चाहिए, जहां वह दूसरों से श्रेष्ठ साबित हो सके। किसी भी कक्षा में श्रेष्ठ होने के दो रास्ते हैं : या तो कोई बच्चा सर्वाधिक अंक पाए या जो सबसे कमज़ोर हो, उस पर हावी हो सके। इन दोनो से श्रेष्ठ साबित होने का दूसरा तरीका अधिक आकर्षक लगता है। यह आसान तरीका है,जिसे बहिर्मुखी बच्चे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अपनाते हैं।

जो बच्चे अन्तर्मुखी बच्चे होतें हैं वे अपनी श्रेष्ठता पाने के लिए कल्पना जगत का सहारा लेते हैं। वास्तविक जगत में उनकी श्रेष्ठता कहीं नहीं होतीं वह लड़ नहीं सकता, वह खेल में अच्छा नहीं है, वह अभिनय नहीं कर सकता, या अच्छा गा-नाच नहीं सकतां पर अपनी कल्पना में वही बच्चा विश्व चैम्पियन होता है। अहं को तुष्ट करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक महत्वपूर्ण ज़रूरत है।

विध्वंस

वयस्कों को यह बात समझना कठिन लगता है कि बच्चों में किसी की संपत्ति के प्रति सम्मान नहीं होता। वे जानबूझकर तोड़-फोड़ नहीं करते। वे अंजाने ही रूप से तोड़-फोड़ करते हैं।

एक बार मैंने एक सामान्य, खुश व संतुलित बच्ची को हमारे शिक्षक कक्ष में रखी कीमती लकड़ी की अल्मारी में गरमा-गरम सलाख से छेद करते देखा था। जब मैंने उसे टोका तो वह चौंक सी गई। उसने पूरी ईमानदारी से जवाब दिया "मैंने यह बिना सोचे कर डाला।" उसका यह काम प्रतीकात्मक था। चेतन दिमाग के नियंत्रण से परे था।

सच्चाई यह है कि वयस्कों में कीमती चीजों को लेकर मिल्कियत की भावना होती है, पर बच्चों में नहीं। ज़ाहिर है कि जहां बच्चे और बड़े साथ-साथ रहते हों, वहां तमाम चीजों के बारे में झगड़ा हो सकता है। समरहिल में बच्चे सोने के पांच मिनट पहले अलाव जलाते हैं। वे उसमें ठूंस-ठूंस कर कोयला भरते हैं। क्योंकि उनके लिए कोयला काला पत्थर भर है, पर मेरे लिए इसका मतलब है, हजार डॉलर का सालाना खर्चा। बच्चे बत्तियां जली छोड़ते हैं, क्योंकि वे उसे बिजली के बिलों से जोड़ कर नहीं देखते।

बच्चों के लिए फर्नीचर का कोई महत्व ही नहीं है। इसलिए समरहिल में हम पुरानी गाड़ियों और बसों की सीटें खरीदते हैं। वे एक दो महीने में चूर-चूर हो जाती हैं। खाने के दौरान किसी चीज को दूसरी बार लेने के इंतजार में खड़े बच्चे अपने कांटों को तोड़-मरोड़ देते हैं। यह सब वे अचेतन या अर्धचेतन अवस्था में करते हैं। बच्चे केवल स्कूली संपत्ति का ही नुकसान नहीं करते। वे अपनी खुद की तीन सप्ताह पहले आई नई साइकिल को भी, नयापन खत्म होने के बाद, आंधी-बरसात में बाहर पड़ी रहने देते हैं।

आठ-नौ साल की उम्र में बच्चों में जो विध्वंस नज़र आता है, वह बुराई या असामाजिकता के कारण नहीं होता। उस वक्त तक उनमें व्यक्तिगत संपत्ति का भाव ही नहीं होता। वह भाव ही नहीं होता। कल्पना जगत में विचरते समय वे चद्दरें और कम्बलों से अपने कमरों में जहाज बनाते हैं। इस प्रक्रिया में चद्दरे काली हो सकती हैं और कम्बल फट सकते हैं पर काली चद्दर का उस वक्त क्या मतलब हो सकता है, जब समुद्री डाकू एक-दूसरे के जहाजों पर तोप के गोले बरसा रहे हों?

सच, जो व्यक्ति बच्चों को आज़ादी से बड़ा करना चाहे उसे धन्ना सेठ होना चाहिए। क्योंकि बच्चों की स्वाभाविक असावधानी हमेशा खर्चीली सिद्ध होती है।

अनुशासन के पक्ष में बोलने वाले कहते हैं कि बच्चों को संपत्ति का सम्मान करने पर बाध्य करना चाहिए। यह बात मुझे जंचती नहीं है, क्योंकि इससे उसे अपने खेल की ज़िंदगी में काफ़ी कुछ त्यागना पड़ता है। मेरा मानना है कि चीजों की कीमत बच्चों में समय के साथ स्वत: ही उपजनी चाहिए। बच्चे किशोरावस्था में आते-आते संपत्ति का सम्मान करने लगते हैं जब उन्हें संपत्ति के प्रति उदासीन रहने की स्थिति में जीने दिया जाता है, तब वे फ़ायदा उठाने वाले या शोषक नहीं बनते।

लड़कियां उतनी तोड़-फोड़ नहीं करतीं, जितनी लड़के करते हैं। शायद इसलिए क्योंकि उनकी काल्पनिक दुनिया में समुद्री डाकुओं के जहाज़ और गुण्डा समूहों की ज़रूरत नहीं होती। फिर भी लड़कियों के कमरे भी उतने ही बेतरतीब होते हैं, जितने लड़कों के। मैं यह स्पष्टीकरण नहीं मानता कि लड़के आकर वहां गड़बड़ कर जाते हैं।

कुछ साल पहले हमने बच्चों के सोने के कमरों में एक खास तरह के बोर्ड लगवाए, ताकि सर्दियों में कमरे गरम रहें। छोटे बच्चे उसे देखते ही उसमें छेद करने लगते हैं। पिंग-पौंग खेलने वाले कमरे में लगा बोर्ड ऐसा लगता है, मानो बमबारी के बाद बर्लिन शहर हो। बच्चे उसी तरह बोर्ड में छेद करते हैं, मानों नाक में ऊंगली घुसेड़ रहे हों। अमूमन यह पूर्णत: अवचेतन कृत्य होता है, जैसे दूसरी तरह की तोड़फोड़। उसका छुपा या रचनात्मक उद्देश्य भी हो सकता है। अगर किसी लड़के को जहाज़ को समतल बनाने के लिए धातु की ज़रूरत हो तो वह कील मिले, तो उसे काम में ले लेगा। जो कुछ न मिले वह कोई भी कीमती छोटा औजार अगर उसका आकार सही हो तो इस्तेमाल कर लेगा। एक चतुर लड़के ने एक महंगा रंगाई ब्रश तारकोल पोतने के काम में लिया था।

हमने सीखा है कि बच्चों और वयस्कों के मूल्यों में अन्तर होता है। अगर कोई स्कूल बच्चों को सुधारने के लिए सुन्दर चित्र टांगता है, या कमरों में खूबसूरत फर्नीचर रखता है, तो वह शुरुआत ही गलत सिरे से करता है। बच्चे दरअसल काफ़ी जंगली होते हैं, और जब तक वे संस्कृति की मांग नहीं करते, उन्हें आदिम और अनौपचारिक वातावरण में ही रहने देना चाहिए।

कुछ साल पहले जब हम इस घर में आए-आए ही थे, तो हमने सुन्दर दरवाजों पर बच्चों को चाकू-छुरियां फैंकते देखा था। हमने दो पुराने रेल डब्बे खरीदें और उनसे एक बंगला बनाया। यहां हमारे जंगली बच्चे, जी भर कर चाकू-छुरे फैंक सकते थे। आज तीस साल बाद भी उनकी हालत इतनी खराब नहीं है। जंगलीपन करने वालों में बारह से सोलह साल के लड़के रहते हैं। हमारे अधिकांश बच्चे अब उम्र में पहुंच गए हैं, जहाँ उन्हें आरामदेह चीजें और सज़ावट पसंद आती है। वे अपने डब्बों को साफ-सुथरा रखते हैं। बाकी बच्चे अस्त-व्यस्त रहते हैं। अस्त-व्यस्त रहने वाले बच्चे हाल में निजी स्कूलों से आए हैं।

समरहिल में निजी स्कूल के पूर्व छात्र हमेशा अलग से पहचाने जा सकते हैं। वे सबसे गंदे रहते हैं, नहाते-धोते नहीं हैं और मैले-कुचैले कपड़े पहनते हैं। अपनी आदिम प्रवृत्तियों को जी भर के जीने लेने में उन्हें समय लगता है। ये प्रवृत्तियां निजी स्कूल में पढ़ने के दौरान दबाई गई होती हैं। आज़ादी के माहौल में भी सामाजिक जीव बने रहने में उन्हें वक्त लगता है।

आज़ाद स्कूल में सबसे ज्यादा झमेला वर्कशॉप में होता है। शुरुआती दिनों में हमारी वर्कशॉप सबके लिए हर समय खुली रहा करती थी। परिणामस्वरूप उसके सारे औजार या तो खो गए या टूट-फूट गए। नौ साल के लड़के छेनी को स्क्रू-ड्राइवर की तरह काम में लेते या फिर साइकिल सुधारने के लिए पाना लेते और उसे सड़क पर छोड़ आते।

तब मैंने अपनी निजी वर्कशॉप को मुख्य वर्कशॉप से अलग करने का निर्णय लिया और एक दीवार चिनवा दी। पर मेरी आत्मा मुझे कचोटती रही। मुझे लगा कि मेरा व्यवहार स्वार्थी और असामाजिक है। अन्तत: मैंने बीच की दीवार तुड़वा दी। अगले छह माह में मेरी निजी वर्कशॉप में एक भी औजार साबुत न बचा। एक बच्चे ने सारे तार अपनी मोटर साइकिल सुधारने में इस्तेमाल कर लिए। दूसरे ने मेरी खराद तोड़ डाली। ताम्बे और चांदी के काम करने वाली हथौड़ियों को पत्थर तोड़ने के काम में लिया गया। कुछ औज़ार गायब हुए तो वापस ही नहीं मिले। पर इससे भी बुरा यह हुआ कि हस्तकला में रुचि पूरी तरह मर गई। बड़े छात्रों ने कहा "वर्कशॉप में जाने का मतलब ही क्या है? वहां तो सारे औजार बेकार पड़े हैं।" और सच में औज़ार बर्बाद हो चुके थे।

मैंने स्कूल की आमसभा में प्रस्ताव रखा कि मेरी वर्कशॉप पर फिर से ताला लगया जाए। प्रस्ताव मंजूर हुआ। पर जब भी मेहमान आते और मुझे ताला खोल कर वर्कशॉप दिखाना पड़ता तो मुझे बेहद शर्म आती। क्या कहा? आज़ादी और तालाबंद दरवाजे? सच यह बड़ा अजीब नज़र आता था। मैंने तय किया कि स्कूल में एक और वर्कशॉप हो, जो हमेशा खुली रहे। मैंने उसमें सभी ज़रूरी चीजें रखवाईं। बेंच, बांके, आरियां, छैनियॉं, रंदे, हथौड़ियां, प्लायर, पाने आदि, आदि।

तकरीबन चार महीने बाद मैं कुछ मेहमानों को स्कूल दिखा रहा था। जब मैंने अपनी वर्कशॉप का ताला खोला तो एक ने टिप्पणी की "यह तो आज़ादी सा नहीं लगता।"

मैंने जल्दी से जोड़ा "बच्चों की दूसरी वर्कशॉप है। वह दिन भर खुली रहती है। आइए मैं आपको दिखाता हूं।" वहां जाने पर वर्कशॉप में बेंच के अलावा कुछ न था। बांका तक गायब था। हमारी बारह एकड़ जमीन के किस कोने में छेनियां और हथौड़ियां बिखरी पड़ीं हैं, यह मुझे कभी पता नहीं लगा।

वर्कशॉप की स्थिति शिक्षकों को परेशान करती रही। मुझे सबसे ज़्यादा परेशानी करती रही, क्योंकि औज़ार मेरी नज़र में बेहद कीमती थे। लगा कि समस्या इस बात में है कि सारे औज़ार पूरे समूह के लिए हैं। अगर हम इसमें मिल्कियत का भाव डालें तो स्थिति शायद सुध रे। हरेक बच्च का, जिसे औज़ार चाहिए हों, अपना एक निजी सेट हो।

मैंने बात आम सभा में उठाई। विचार का स्वागत हुआ। अगले सत्र में कुछ बड़े बच्चे घरों से अपने औज़ार लेकर आए वे औज़ारों को सावधानी से काम में लेते रहे और उन्हें अच्छी तरह रखने लगे।

सम्भव है कि समस्या इस बात से पैदा होती है कि समरहिल में आयु का काफी अंतर है। क्योंकि छोटे लड़कों और लड़कियों के लिए औज़ार कोई मायने ही नहीं रखते। हमारे हस्तकला शिक्षक आजकल वर्कशॉप पर ताला लगाते हैं। मैं कुछ बड़े छात्रों को उदारता से अपनी वर्कशॉप में जब वे चाहें, काम करने देता हूं। वे औज़ारों को सावधानी से काम में लेते हैं, क्योंकि वे उस आयु में पहुंच चुके हैं, जहां वे यह समझते हैं कि सावधानी से ही अच्छा काम होता है। साथ ही वे आज़ादी और उच्छृंखलता का अंतर भी समझते हैं।

फिर भी समहिल में तालाबंदी की संस्कृति बढ़ती नज़र आती है। मैंने यह बात एक शनिवारीय आमसभा में उठाई "मुझे यह पसन्द नहीं, मैं आज सुबह कुछ मेहमानों को लेकर गया तो मुझे वर्कशॉप, प्रयोगशाला, कुम्हारगिरी वाला कमरा और रंगमंच खोलने पड़े। मेरा सुझाव है कि सभी सार्वजनिक कमरे दिन भर खुले रहें।"

मतभेद की आंधी उमड़ी। कुछ बच्चों ने कहा, प्रयोगशाला इसलिए बन्द रहती है, क्योंकि वहां जहर और खतरनाक रसायन हैं, और कुम्हारगिरी का कमरा उससे सटा हुआ है, उसे भी बंद रखना ज़रूरी है। "वर्कशॉप हम खुली नहीं छोड़ेंगें। पिछली बार क्या हुआ था, याद है ना।" दूसरों का कहना था।

मैंने गुहार की, "कम से कम रंगमंच तो खुला छोड़ा जा सकता है, उसे उठाकर तो कोई नहीं ले जाएगा।"

नाटकों के लेखक, अभिनेता, अभिनेत्रियां, स्टेज और लाइट प्रबंधक सब एक साथ उछल पड़े। लाइट प्रबंधक ने कहा कि "हम रंगमंच खुला छोड़ गए और किसी गधे ने सारी बत्तियां जलाईं और भाग गया। तकरीबन तीन हजार वॉट की लाइटें पूरे समय जलती रहीं। खर्चे का हिसाब खुद लगाओ।" फलस्वरूप ताले हटाने के मेरे प्रस्ताव पर कुल दो हाथ उठे। एक मेरा और दूसरा एक सात साल की लड़की का। बाद में पता चला कि वह समझी कि इससे पहले जो प्रस्ताव था, उस पर मतदान ज़ारी है। उसमें सात साल के बच्चों को सिनेमा देखने जाने देने की बात हुई थी। बच्चे खुद अपने अनुभव से समझने लगे थे कि निजी संपत्ति का सम्मान करना चाहिए।

पर दुखद सच्चाई यह है कि अक्सर हम वयस्कों को चीजों की सुरक्षा की फिक्र, बच्चों की सुरक्षा से अधिक होती है। किसी व्यक्ति का पियानो उसके औज़ार, उसके कपड़े, सैंकड़ों चीजें उसका हिस्सा बन जाती हैं। रंदे को बुरी तरह इस्तेमाल करते देखने से व्यक्तिगत स्तर पर तकलीफ़ होती है। अपनी चीजों के लिए प्यार, अक्सर बच्चों के लिए प्यार से अधिक होता है। जब-जब हम - खबरदार! उसे हाथ न लगाना, कहते हैं हम बच्चों की तुलना में उस वस्तु के प्रति प्यार जताते हैं। बच्चा हमारे लिए परेशानी का कारण बन उठता है, क्योंकि उसकी इच्छाओं का वयस्कों की अहंकारी इच्छाओं के साथ टकराव होता है।

तीन छोटे लड़कों ने एक बार मेरी महंगी इलैक्ट्रिक टॉर्च उधार ली। वह कैसे बनी है, यह देखने में उसे बर्बाद कर डाला। यह कहना कि उनकी जिज्ञासा से मुझे बड़ी खुशी हुई, गलत होगा। मुझे जिज्ञासा का मनोवैज्ञानिक अर्थ जानते समझते हुए भी गुस्सा आया। मेरा एक दिवास्वप्न है कि एक करोड़पति बाप का बेटा हमारा छात्र बने। अपनी कल्पना में मैं उस पर तमाम व्यापक प्रयोग करता हूं, जिसका सारा खर्च उसके पिता वहन करते हैं। क्योंकि एक मनोरोगी बच्चे को आज़ादी देना महंगा धंधा है। कोई भी स्वस्थ बच्चा रोजमर्रा के नाश्ते की तरह, टेलीविजन के चालन यंत्र पर कीलें नहीं ठोकता।

यह सब हमें उस सवाल पर लाता है जो हमेशा मेरे भाषणों के दौरान उठाया जाता है। आप उस वक्त क्या करेंगें, जब कोई लड़का आपके पियानो पर कीलें ठोकने लगे? अब मैंने इतनी महारत हासिल कर ली है कि मैं पहले से यह सवाल पूछने वाले व्यक्ति की पहचान कर लेता हूं। अमूमन वे सामने की सीट पर बैठे मिलते हैं और भाषण के दौरान नाक चढ़ा कर मतभेद ज़ाहिर करते हैं।

सवाल का सबसे अच्छा जवाब यह है : अगर बच्चों के प्रति आपका दृष्टिकोण सही हो तो आप क्या करते हैं, उसका कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर आप कील ठोकने को लेकर उसमें अपराध बोध नहीं जगाते तो आप बेशक उसे पियानो से जबरन दूर कर सकते हैं। अपने व्यक्तिगत अधिकारों पर अड़ने में कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते आप उसमें सही, गलत की नैतिकता न जोड़ें।

नन्हें हथौड़े बाज की ओर लौटते हैं। ज़ाहिर है उसे कीलें ठोकने के लिए पियानो की जगह लकड़ी का टुकड़ा चाहिए। हरेक बच्चे को वे औज़ार पाने और इस्तेमाल करने का अधिकार है, जो उसे स्वयं को अभिव्यक्त करने का मौका देते हैं। ये औज़ार उसके अपने भी होने चाहिए। पर यह ध्यान रखिएगा कि वे उसकी कीमत रूपए-पैसों में नहीं आंकें।

रही। मुझे लगा कि मेरा व्यवहार स्वार्थी और असामाजिक है। अन्ततः मैंने बीच की दीवार तुड़वा दी। अगले छह माह में मेरी निजी वर्कशॉप में एक भी औजार साबुत न बचा। एक बच्चे ने सारे तार अपनी मोटर साइकिल सुधारने में इस्तेमाल कर लिए। दूसरे ने मेरी खराद तोड़ डाली। ताम्बे और चांदी के काम करने वाली हथौड़ियों को पत्थर तोड़ने के काम में लिया गया। कुछ औज़ार गायब हुए तो वापस ही नहीं मिले। पर इससे भी बुरा यह हुआ कि हस्तकला में रुचि पूरी तरह मर गई। बड़े छात्रों ने कहा "वर्कशॉप में जाने का मतलब ही क्या है? वहां तो सारे औजार बेकार पड़े हैं।" और सच में औज़ार बर्बाद हो चुके थे।

मैंने स्कूल की आमसभा में प्रस्ताव रखा कि मेरी वर्कशॉप पर फिर से ताला लगया जाए। प्रस्ताव मंजूर हुआ। पर जब भी मेहमान आते और मुझे ताला खोल कर वर्कशॉप दिखाना पड़ता तो मुझे बेहद शर्म आती। क्या कहा? आज़ादी और तालाबंद दरवाजे? सच यह बड़ा अजीब नज़र आता था। मैंने तय किया कि स्कूल में एक और वर्कशॉप हो, जो हमेशा खुली रहे। मैंने उसमें सभी ज़रूरी चीजें रखवाईं। बेंच, बांके, आरियां, छैनियॉं, रंदे, हथौड़ियां, प्लायर, पाने आदि, आदि।

तकरीबन चार महीने बाद मैं कुछ मेहमानों को स्कूल दिखा रहा था। जब मैंने अपनी वर्कशॉप का ताला खोला तो एक ने टिप्पणी की "यह तो आज़ादी सा नहीं लगता।"

मैंने जल्दी से जोड़ा "बच्चों की दूसरी वर्कशॉप है। वह दिन भर खुली रहती है। आइए मैं आपको दिखाता हूं।" वहां जाने पर वर्कशॉप में बेंच के अलावा कुछ न था। बांका तक गायब था। हमारी बारह एकड़ जमीन के किस कोने में छेनियां और हथौड़ियां बिखरी पड़ीं हैं, यह मुझे कभी पता नहीं लगा।

वर्कशॉप की स्थिति शिक्षकों को परेशान करती रही। मुझे सबसे ज़्यादा परेशानी करती रही, क्योंकि औज़ार मेरी नज़र में बेहद कीमती थे। लगा कि समस्या इस बात में है कि सारे औज़ार पूरे समूह के लिए हैं। अगर हम इसमें मिल्कियत का भाव डालें तो स्थिति शायद सुध रे। हरेक बच्च का, जिसे औज़ार चाहिए हों, अपना एक निजी सेट हो।

मैंने बात आम सभा में उठाई। विचार का स्वागत हुआ। अगले सत्र में कुछ बड़े बच्चे घरों से अपने औज़ार लेकर आए वे औज़ारों को सावधानी से काम में लेते रहे और उन्हें अच्छी तरह रखने लगे।

सम्भव है कि समस्या इस बात से पैदा होती है कि समरहिल में आयु का काफी अंतर है। क्योंकि छोटे लड़कों और लड़कियों के लिए औज़ार कोई मायने ही नहीं रखते। हमारे हस्तकला शिक्षक आजकल वर्कशॉप पर ताला लगाते हैं। मैं कुछ बड़े छात्रों को उदारता से अपनी वर्कशॉप में जब वे चाहें, काम करने देता हूं। वे औज़ारों को सावधानी से काम में लेते हैं, क्योंकि वे उस आयु में पहुंच चुके हैं, जहां वे यह समझते हैं कि सावधानी से ही अच्छा काम होता है। साथ ही वे आज़ादी और उच्छृंखलता का अंतर भी समझते हैं।

फिर भी समहिल में तालाबंदी की संस्कृति बढ़ती नज़र आती है। मैंने यह बात एक शनिवारीय आमसभा में उठाई "मुझे यह पसन्द नहीं, मैं आज सुबह कुछ मेहमानों को लेकर गया तो मुझे वर्कशॉप, प्रयोगशाला, कुम्हारगिरी वाला कमरा और रंगमंच खोलने पड़े। मेरा सुझाव है कि सभी सार्वजनिक कमरे दिन भर खुले रहें।"

मतभेद की आंधी उमड़ी। कुछ बच्चों ने कहा, प्रयोगशाला इसलिए बन्द रहती है, क्योंकि वहां जहर और खतरनाक रसायन हैं, और कुम्हारगिरी का कमरा उससे सटा हुआ है, उसे भी बंद रखना ज़रूरी है। "वर्कशॉप हम खुली नहीं छोड़ेंगें। पिछली बार क्या हुआ था, याद है ना।" दूसरों का कहना था।

मैंने गुहार की, "कम से कम रंगमंच तो खुला छोड़ा जा सकता है, उसे उठाकर तो कोई नहीं ले जाएगा।"

नाटकों के लेखक, अभिनेता, अभिनेत्रियां, स्टेज और लाइट प्रबंधक सब एक साथ उछल पड़े। लाइट प्रबंधक ने कहा कि "हम रंगमंच खुला छोड़ गए और किसी गधे ने सारी बत्तियां जलाईं और भाग गया। तकरीबन तीन हजार वॉट की लाइटें पूरे समय जलती रहीं। खर्चे का हिसाब खुद लगाओ।" फलस्वरूप ताले हटाने के मेरे प्रस्ताव पर कुल दो हाथ उठे। एक मेरा और दूसरा एक सात साल की लड़की का। बाद में पता चला कि वह समझी कि इससे पहले जो प्रस्ताव था, उस पर मतदान ज़ारी है। उसमें सात साल के बच्चों को सिनेमा देखने जाने देने की बात हुई थी। बच्चे खुद अपने अनुभव से समझने लगे थे कि निजी संपत्ति का सम्मान करना चाहिए।

पर दुखद सच्चाई यह है कि अक्सर हम वयस्कों को चीजों की सुरक्षा की फिक्र, बच्चों की सुरक्षा से अधिक होती है। किसी व्यक्ति का पियानो उसके औज़ार, उसके कपड़े, सैंकड़ों चीजें उसका हिस्सा बन जाती हैं। रंदे को बुरी तरह इस्तेमाल करते देखने से व्यक्तिगत स्तर पर तकलीफ़ होती है। अपनी चीजों के लिए प्यार, अक्सर बच्चों के लिए प्यार से अधिक होता है। जब-जब हम - खबरदार! उसे हाथ न लगाना, कहते हैं हम बच्चों की तुलना में उस वस्तु के प्रति प्यार जताते हैं। बच्चा हमारे लिए परेशानी का कारण बन उठता है, क्योंकि उसकी इच्छाओं का वयस्कों की अहंकारी इच्छाओं के साथ टकराव होता है।

तीन छोटे लड़कों ने एक बार मेरी महंगी इलैक्ट्रिक टॉर्च उधार ली। वह कैसे बनी है, यह देखने में उसे बर्बाद कर डाला। यह कहना कि उनकी जिज्ञासा से मुझे बड़ी खुशी हुई, गलत होगा। मुझे जिज्ञासा का मनोवैज्ञानिक अर्थ जानते समझते हुए भी गुस्सा आया। मेरा एक दिवास्वप्न है कि एक करोड़पति बाप का बेटा हमारा छात्र बने। अपनी कल्पना में मैं उस पर तमाम व्यापक प्रयोग करता हूं, जिसका सारा खर्च उसके पिता वहन करते हैं। क्योंकि एक मनोरोगी बच्चे को आज़ादी देना महंगा धंधा है। कोई भी स्वस्थ बच्चा रोजमर्रा के नाश्ते की तरह, टेलीविजन के चालन यंत्र पर कीलें नहीं ठोकता।

यह सब हमें उस सवाल पर लाता है जो हमेशा मेरे भाषणों के दौरान उठाया जाता है। आप उस वक्त क्या करेंगें, जब कोई लड़का आपके पियानो पर कीलें ठोकने लगे? अब मैंने इतनी महारत हासिल कर ली है कि मैं पहले से यह सवाल पूछने वाले व्यक्ति की पहचान कर लेता हूं। अमूमन वे सामने की सीट पर बैठे मिलते हैं और भाषण के दौरान नाक चढ़ा कर मतभेद ज़ाहिर करते हैं।

सवाल का सबसे अच्छा जवाब यह है : अगर बच्चों के प्रति आपका दृष्टिकोण सही हो तो आप क्या करते हैं, उसका कोई फर्क नहीं

पड़ता। अगर आप कील ठोकने को लेकर उसमें अपराध बोध नहीं जगाते तो आप बेशक उसे पियानो से जबरन दूर कर सकते हैं। अपने व्यक्तिगत अधिकारों पर अड़ने में कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते आप उसमें सही, गलत की नैतिकता न जोड़ें।

नन्हें हथौड़े बाज की ओर लौटते हैं। ज़ाहिर है उसे कीलें ठोकने के लिए पियानो की जगह लकड़ी का टुकड़ा चाहिए। हरेक बच्चे को वे औज़ार पाने और इस्तेमाल करने का अधिकार है, जो उसे स्वयं को अभिव्यक्त करने का मौका देते हैं। ये औज़ार उसके अपने भी होने चाहिए। पर यह ध्यान रखिएगा कि वे उसकी कीमत रूपए-पैसों में नहीं आंकें।

एक समस्यात्मक बच्चे द्वारा की गई तोड़-फोड़ और एक साधारण बच्चे की तोड़-फोड़ में फर्क होता है। सामान्य बच्चे नफ़रत या चिंता से प्रेरित हो तोड़फोड़ नहीं करते। उनकी काल्पनिक रचनात्मकता के दौरान जो तोड़फोड़ होती है, वह विद्वेष से नहीं उपजती।

वास्तविक विध्वंस घृणा का रूप है। इसका सांकेतिक अर्थ है कत्ल करना। यह केवल समस्यात्मक बच्चों में ही नज़र नहीं आता। बल्कि युद्ध के दौरान जिन लोगों के घरों पर कब्जे किए गए हों वे जानते हैं कि सैनिक बच्चों से ज़्यादा विनाश करते हैं। यह स्वाभाविक है, क्योंकि उनका काम ही विध्वंस है। रचना जीवन के समान है और विनाश मत्यु के। विनाशकारी समस्यात्मक बच्चा जीवन-विरोधी होता है।

आशंकित बच्चों की विनाशकता के कई कारण हो सकते हैं। उनमें से एक है - भाई या बहन के प्रति जलन। क्योंकि बच्चा मानता है कि उस भाई या बहन को ज़्यादा प्यार मिलता है। दूसरा कारण सीमित करने वाली सत्ता का विरुद्ध विद्रोह भी हो सकता है और यह भी हो सकता है कि बच्चा उस वस्तु के अंदर क्या है, यह जानने में लगा हो।

हमारा सरोकार तोड़ी गई वस्तु से न होकर उस दबी हुई नफ़रत से होना चाहिए, जो तोड़-फोड़ के कृत्य से अभिव्यक्त की गई है। यही नफ़रत कुछ परिस्थितियों में बच्चे को दूसरों को तकलीफ़ देने में मज़ा लेने वाला इंसान बना डालती है।

यह सवाल महत्वपूर्ण है। इसका ताल्लुक हमारे समाज की बीमारी से है, जहां शिशुशाला से कब्र तक घृणा पनपती है। सच, दुनिया में काफ़ी प्रेम भी है। अगर वह न होता तो मानवता खत्म हो जाती। हरेक मां-बाप, हरेक शिक्षक को अपने अंदर दबे प्रेम की तलाश करनी चाहिए।

झूठ बोलना :

अगर आपका बच्चा झूठ बोलता है तो,या तो वह आपसे डरता है, या फिर आपकी नकल कर रहा है। जो मां-बाप झूठ बोलते हैं, उनके बच्चे ज़रूर झूठ बोलेंगें। अगर आप अपने बच्चे से सच्चाई की अपेक्षा करते हैं, तो उससे झूठ न बोलें। इस वक्तव्य में नैतिकता का उपदेश नहीं है, क्योंकि हम सब कभी न कभी झूठ बोलते हैं। कभी-कभार हमारा झूठ दूसरों की भावना को ठेस न पहुंचाने के लिए होता है। जब हमें कोई अहंकारी या दम्भी कहे तो भी हम अपने बचाव में झूठ बोलते हैं। "मां का सिर दुख रहा है, चुप रहो।" कहने के बदले शायद जोर से यह कहना बेहतर है कि "यह शोरगुल अब बिल्कुल बन्द करो।" यह आप केवल तब कह सकते हैं, जब बच्चा आपसे थर्राता न हो।

कई बार माता-पिता अपने सम्मान की सुरक्षा में झूठ बोलते हैं। "पापा, तुम छह लोगों से एक साथ लड़ सकते हो, है ना?" इस सवाल का जवाब देने में साहस की ज़रूरत होती है कि "ना, बेटा, मेरी तोंद और शिथिल शरीर से, अब मैं एक अकेले बौने तक से नहीं लड़ सकता।"

कितने पिता अपने बच्चों से यह कह सकते हैं कि उन्हें बिजली कड़कने से, या पुलिस वाले से डर लगता है? किसी का जिगरा इतना बड़ा होगा कि वह कह सके कि स्कूल में उसके साथी उसे 'रोंदू' कहते थे।

पारिवारिक झूठ के दो मकसद होते हैं। पहला तो बच्चे के आचरण को नियमित रखना और दूसरा बच्चे को माता-पिता की श्रेष्ठता से प्रभावित करना। कितने पिता या शिक्षक बच्चे के इन प्रश्नों का ईमानदार जवाब देंगें : क्या तुम कभी नशे में धुत्त हुए थे? तुमने कभी गाली दी? बच्चों के प्रति यह भय ही वयस्कों को दोगला बनाता है।

बचपन में मैं अपने पिता को इस बात के लिए माफ नहीं कर पाया कि वे एक जंगली सांड से बचने के लिए एक दीवार फांद कर भागे थे। बच्चे अपनी कल्पना में हमें हीरो बना डालते हैं और हम उस छवि को जीने की कोशिश में लगते हैं। पर एक न एक दिन हम पकड़े जाते हैं। बच्चा एक दिन साफ-साफ यह देख पाता है कि उसके माता-पिता और शिक्षकों ने उससे झूठ बोला है, उसे छला है।

शायद हरेक युवा-जीवन में एक वह समय आता है, जब माता-पिता की पुरातनपंथी होने के नाम पर खूब आलोचना की जाती है। यह समय तब आता है, जब बच्चा मां-बाप के असली रूप को पहचानने लगता है। यह तिरस्कार दरअसल बच्चे के काल्पनिक आदर्श माता-पिता की छवि टूटने से उपजता है। सपनों में बसी मां-बाप की छवि और वास्तविक मां-पिता में भारी अन्तर होता है। बाद में बच्चा फिर से संवेदनशीलता और समझ के साथ माता-पिता की ओर लौटता है। तब उसके मनमें उन्हें लेकर कोई भ्रम नहीं होते। पर इस गलतफहमी से बचा जा सकता है, अगर माता-पिता बच्चों को पहले से ही अपना सच बता दें।

आज तक लिखी गई सभी आत्मकथाएं झूठ से भरी पड़ी हैं। हम इसलिए झूठ बोलते हैं क्योंकि हमें शुरू से एक वास्तिविक नैतिकता के मानदण्डों के अनुसार जीने की बात सिखाई जाती है। हमारा प्रांरभिक प्रशिक्षण हमें ताउम्र, कंकालों को छुपाने पर बाध्य करता है।

जो व्यस्क बच्चों से झूठ बोलता है, फिर चाहे वह अप्रत्यक्ष झूठ ही क्यों न हो, उसमें बच्चों की मानसिकता की समझ नहीं होती। यही कारण है कि हमारी शिक्षा प्रणाली झूठ से पटी पड़ी है। हमारे स्कूल यह झूठ परोसते है कि आज्ञाकारिता ओर परिश्रम गुण हैं, और इतिहास और भाषा शिक्षा है।

मेरे छात्र-छात्राओं में एक भी पक्का, या आदतन झूठ बोलने वाला नहीं है। जब वे पहले-पहल समरहिल आते हैं तो वे झूठ, का सहारा लेते है, क्योंकि सच्चाई बयान करने से वे डरते है। जब उन्हें पता चलता है कि स्कूल में कोई थानेदारी नहीं होती तो झूठ की

ज़रूरत नहीं रहती। बच्चों के झूठ डर से उपजतें हैं। जब भय गायब हो तो झूठ भी गायब हो जाता हैं। मैं यह नहीं कहता कि झूठ पूरी तरह से गायब हो जाता हैं कोई बच्चा आकर यह तो बता देगा कि उससे खिड़की का कांच टूट गया है, पर यह नहीं कि उसने फ्रिज से खाना चुराया था या कोई औज़ार पार कर लिया थां झूठ का पूरी तरह गायब होने की अपेक्षा करना, असंभव की अपेक्षा करना होगा।

बच्चों के काल्पनिक जगत के झूठ, आज़ादी से दूर नहीं हो सकते। अक्सर माता-पिता इस छोटी सी राई का पहाड़ बना डालते हैं। जब नन्हे जिमी ने आकर मुझे कहा कि डैडी ने उसके लिए एक सचमुच की रॉल्स बेंटली गाडी भेजी थी तो मैने जवाब दिया "मुझे पता है। मैने दरवाजे पर गाडी खडी देखी थीं क्या शानदार गाडी है।" इस पर वह बोला 'चलो, हटो! मै तो झूठमूठ ही कह रहा था।'

लोगेां को यह बात विरोधाभास से भरी ओर तर्कहीन लग सकती है कि मैं झूठ बोलने ओर बेईमान होने में अंतर करता हूं। आप ईमानदार होकर भी झूठ बोल सकते हैं। मतलब यह कि जीवन की तमाम बड़ी बातों में ईमानदारी बरतने के बावजूद आप चंद छोटी-छोटी बेइमानियां कर सकते हैं। हमारे कई झूठ दूसरों को ठेस न पहुंचाने के कारण बोले जाते हैं सत्यवादिता अगर मुझे किसी को यह लिखने कि पर बाध्य करे "महोदय, आपका पत्र इतना लंबा ओर उबाऊ था कि मैंने उसे पढ़ने तक की जहमत नहीं उठाई है" तो यह एक बुराई ही होगी। या आपको किसी भावी संगीतकार को यह कहने पर बाध्य करे कि "धन्यवाद, पर तुमने इस राग का खून कर दिया।" वयस्कों के कई झूठ दूसरों का हित धयान में रख कर बोले जाते हैं, पर बच्चों के झूठ स्थानीय व व्यक्तिगत होते हैं। किसी बच्चे को जीवन भर के लिए झूठ बोलने वाला बनाना हो तो आप यह मांग करें कि वह हमेशा सच बोले और सच के सिवा कुछ न बोले।

हमेशा ईमानदार बने रहना कठिन ज़रूर है पर जब कोई यह तय कर ले कि मैं बच्चे से या उसके सामने झूठ नहीं बोलूंगा तो इसे निभाना इतना कठिन भी नहीं होता। केवल एक ही स्थिति में झूठ की अनुमति हो सकती है, जब सच किसी की जान खतरे में डालता हो। जैसे किसी गंभीर रूप से बीमार बच्चे को यह न बताया जाए कि उसकी मां की मत्यु हो चुकी है।

हमारा अधिकांश मशीनी शिष्टाचार जीवन्त झूठ होता है। हम "धन्यवाद" कहते हैं, पर मन में वह भाव नहीं होता, हम उन लोगों को भी नमस्कार करते हैं जिनके प्रति हमारे मन में कोई श्रद्धा नहीं होती।

झूठ बोलना एक छोटी कमज़ोरी है, पर झूठ को जीना जीवन की बड़ी आपदा है। जो माता-पिता झूठ को जीते हैं वे बेहद खतरनाक होते हैं। एक सोलह साल के चोरी करने वाले लड़के के पिता ने कहा "मैंने अपने बेटे से एक ही चीज हमेशा चाही कि वह हमेशा-हमेशा सच बोले।" वह व्यक्ति अपनी पत्नी से नफ़रत करता था और पत्नी से बदले में नफ़रत पाता था। यह बात 'प्रिय' और 'प्रियतम' जैसे शब्दों के पर्दे में छुपाई जाती थी। बेटा यह ताड़ चुका था कि घर में कुछ न कुछ गड़बड़ है। ऐसे व्यक्ति का बेटा बड़ा होकर आदतन झूठा होने के अलावा क्या हो सकता है, जब उसका पारिवारिक जीवन एक जीता जागता झूठ हो। बच्चे को घर में कभी प्यार न मिला था। इसी कमी को पूरा करने का तरीका उसने चोरी में तलाशा था।

कई बार बच्चे माता-पिता के झूठ की नकल में भी झूठ बोलते हैं। जिस घर में माता-पिता के बीच प्रेम न हो वहां बच्चे में ईमानदारी पनप नहीं सकती। पति-पत्नी के बीच का ढोंग बच्चे को छलता नहीं है। वह ऐसे में अवास्तविक कल्पना जगत की ओर धकेला जाता है। क्योंकि बच्चे कई बातें जानते न भी हों, तो भी महसूस ज़रूर करते हैं।

हमारे गिरजे यह झूठ प्रतिपादित करते हैं कि इंसान पाप के साथ जन्मा है और उसे उद्धार की ज़रूरत है। हमारे कानून यह झूठ फैलाते हैं कि मानवता को सज़ा रूपी घृणा से सुधारा जा सकता हैं। डॉक्टर व दवा कंपनियां यह झूठ प्रचारित करते हैं कि स्वास्थ्य, अजैविक दवाएं ठूंसने पर निर्भर करता है।

जिस समाज में झूठ का बोलबाला हो वहां माता-पिता के लिए ईमानदार बने रहना मुश्किल है। माता-पिता द्वारा बोले गए झूठ में इस बात की अनभिज्ञता भी है कि बच्चे को इससे कितना नुक्सान होता है।

मेरा मानना है कि माता-पिता को झूठ बोलने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि मैं तो कहना चाहूंगा कि उन्हें कतई झूठ नहीं बोलना चाहिए। कई घर बिना झूठ के सहारे भी चलते हैं जहां चमकदार आंखों वाले ईमानदार बच्चे फल-फूल रहे हैं। वहां मां-बाप बच्चे के हरेक सवाल बच्चे कैसे पैदा होते हैं से लेकर मां की असली उम्र क्या है तक-का ईमानदार जवाब दे सकते हैं।

पिछले अड़तीस सालों में मैंने किसी भी छात्र से जानबूझ कर झूठ नहीं बोला है, इसकी इच्छा भी नहीं हुई है। पर यह बात बिल्कुल सच नहीं है। क्योंकि एक सत्र में मैंने एक भारी झूठ बोला था। एक लड़की ने, जिसका दुखद इतिहास मैं जानता था, एक पाउंड चुराया। चोरी संबंधी समिति के तीन लड़कों ने उसे ऑइसक्रीम और सिगरेट पर पैसे खर्चते देखा और उससे पूछताछ की। उसने उन्हें कहा "मुझे नील ने पैसे दिए थे।" वे उसे मेरे पास लाए और पूछा "क्या तुमने इसको एक पाउन्ड दिया था?" मैं स्थिति भांप गया। मैंने बेफिक्री से कहा, "हां मैंने दिए थे।" अगर उस वक्त मैं उस झूठ का पर्दाफाश करता तो उस लड़की का मुझ पर से विश्वास ही उठ जाता। उसकी चोरी प्यार की चोरी का प्रतीक था। उसे पकड़वाना उसे और पीछे धकेलना होता। मुझे सिद्ध करना था कि मैं पूरी तरह उसके पक्ष में हूं। मुझे पता है कि अगर उसका परिवार ईमानदार और मुक्त होता तो यह स्थिति ही पैदा नहीं होती। मैंने एक उद्देश्य, से उपचार के उद्देश्य से झूठ ज़रूर बोला था। पर किसी दूसरी स्थिति में मैं झूठ बोलने की जुर्रत तक नहीं करता।

जब बच्चे आज़ाद होते हैं तो उन्हें ज़्यादा झूठ बोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती। हमारे गांव का थानेदार एक बच्चे को यह कहते सुन चौंक गया "नील, मुझसे बाहरी बैठक की खिड़की का कांच टूट गया है।" बच्चे अधिकतर झूठ खुद को बचाने के लिए बोलते हैं। जिस घर में भय पलता है वहां झूठ भी पनपता है। डर को निकाल फेंको तो झूठ भी मुरझा जाता है।

फिर भी एक तरह का झूठ है जो डर के कारण नहीं बोला जाता। यह है काल्पनिक जगत का झूठ "मां, मैंने गाय जितना बड़ा कुत्ता देखा, उसी स्तर का झूठ है जैसा झूठ शौकिया मच्छीमार जो मछली फंसी नहीं, उसके बारे में हांकते हैं। दोनों उदाहरणों में बोला गया झूठ बोलने वाले के व्यक्तित्व को विस्तार देता हैं इनको लेकर हमारी प्रतिक्रिया खेल में शरीक होने की ही होनी चाहिए। इसलिए जब बिली आकर कहता है कि उसके पिता के पास बड़ी सी रॉल्स रॉयस है, तो मैं कहता हूं, "मुझे पता है। खूबसूरत है ना? क्या तुम भी उसे चला

सकते हो?" इस प्रकार के रूमानी झूठ शायद उन बच्चों को ज़रूरी नहीं लगते जो बचपन से स्वनिर्देशित होते हों। शायद उन्हें झूठी कहानियां गढ़कर अपनी हीनभावना से जूझने की ज़रूरत नहीं पड़ती हो।

नाजायज़ औलाद यह नहीं जानता कि उसके माता-पिता विवाहित नहीं थे, फिर भी वह यह महसूस ज़रूर करता है कि वह दूसरों से फर्क है। पर अगर वह सच्चाई जानता और उन लोगों के बीच पलता बढ़ता जिन्हें उसके जन्म की सच्चाई से कोई फर्क नहीं पड़ता होता, तो स्थिति भिन्न होती। क्योंकि अहसास, ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है। अज्ञानी माता-पिता अपने झूठ और अपनी वर्जनाओं के कारण बच्चों को बेहद नुकसान पहुंचाते हैं। यह नुकसान दिमाग को नहीं दिल को पहुंचता है। पर मनोरोग भी दिमाग से नहीं दिल से जन्मते हैं।

जो माता-पिता बच्चे को गोद लेते हैं, उन्हें बच्चे को यह सच्चाई बतानी चाहिए। जो सौतेली मां बच्चे को यह विश्वास दिलाना चाहे कि बच्चा उसका ही बेटा या बेटी है, उसे बाद में परेशानी हो सकती है। किशोरावस्था में जब बच्चा अचानक छुपी सच्चाई से रूबरू होता है तो बाद के जीवन में उसे कई तरह के धक्के लगते हैं। ऐसे लोग तो हमेशा ही मौजूद होते हैं जो बच्चों को द्वेषपूर्ण सच्चाई बताने को आतुर होते हैं।

ऐसे द्वेषी नाक-घुसेड़ने वालों से बच्चों की रक्षा करने के लिए यह तय कर लें कि कभी खुद के, या दूसरों के बच्चे से झूठ नहीं बोलेंगे। बच्चे के लिए हमारे सामने यही एक रास्ता है। अगर पिता मुज़रिम रह चुके हों, या मां दारू की दुकान में काम करने वाली महिला की बेटी हो, तो बच्चों को पता होना चाहिए।

ज़ाहिर है कि उस वक्त सच्चाई हमारे लिए परेशानी का कारण बनती है जब कोई पूछता है "मां, हम सब भाई बहनों में तुम सबसे ज्यादा प्यार किसे करती हो?" अमूमन माता-पिता एक बेहद मीठा पर झूठा जवाब देते हैं "मैं तुम सबको बराबर प्यार करती हूं।" सवाल का जवाब क्या होना चाहिए मैं नहीं जानता। शायद यहां झूठ बोलने का औचित्य भी है। क्योंकि अगर उससे जवाब में कहा जाए "सबसे ज्यादा प्यारा मुझे टॉमी है," तो उसके परिणाम घातक हो सकते हैं।

पुलिस वाले शैतान बच्चों को सज़ा देते हैं, कम उम्र में सिगरेट पीने से बच्चे की बढ़त रुक जाती है, मां को जब माहवारी की तकलीफ़ हो सिर दर्द बहाना करना, ऐसे ही लाखों-लाख झूठ घर-घर में बोले जाते हैं।

हाल में समरहिल की एक शिक्षिका लंदन की शिशुशाला में पढ़ाने के लिए गईं। एक रोज एक नन्हीं बच्ची ने जानना चाहा कि बच्चे कहां से आते हैं। उसके स्पष्टीकरण के अगले दिन आधा दर्जन नाराज माताएं स्कूल पहुंची। उन्होंने शिक्षिका "गंदी कुतिया" जैसी गालियां दीं और उसे हटाने की मांग की।

जो बच्चा आज़ादी के वातावरण में पला-बढ़ा है, वह जानबूझ कर झूठ नहीं बोलता, क्योंकि इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती। सज़ा के डर से खुद को बचाने की ज़रूरत उसे नहीं पड़ती। पर फिर भी वह कल्पना की तरंग में झूठ बोल सकता है। वह ऐसी घटनाओं के किस्से गढ़ सकता है, जो कभी घटी ही नहों।

जहां तक डर से उपजे झूठ की बात है, मैं एक ऐसी पीढ़ी को देख रहा हूं जिसे किसी चीज को छुपाने की दरकार न होगी। यह पीढ़ी हर बात में स्पष्टवादी और ईमानदारी होगी। उसे अपनी शब्दावली में झूठ शब्द की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। झूठ बोलना हमेशा कायरता की निशानी होती है। और कायरता अज्ञान से उपजती है।

ज़िम्मेदारी

कई घरों में बच्चे के अहं का इसलिए दमन होता है क्योंकि माता-पिता हमेशा ही उसे शिशु मानते हैं। मैं चौदह साल की ऐसी लड़कियों को जानता हूं जिनके मां-बाप उस पर आग जलाने तक का भरोसा नहीं करते। माता-पिता अक्सर अपने नेक इरादों के चलते बच्चों से जिम्मेदारियां दूर रखते हैं।

"बेटे स्वेटर साथ ले लेना, लगता है बारिश होगी।"

"रेल-लाइन के पास न जाना।"

"मुंह धो लिया है ना?"

एक बार समरहिल में एक नई छात्र आई। उसकी मां ने मुझे बताया कि उसकी बड़ी गंदी आदतें हैं। उसे हर दिन नहाने को दिन में दस बार कहना पड़ता था।

पर जिस दिन से बच्ची समरहिल में आई वह हर सुबह ठंडे पानी से नहाती और सप्ताह में दो बार गर्म पानी से। उसके मुंह और हाथ हमेशा साफ रहते। संभव है घर में गंदे रहने की शिकायत उसकी मां की कल्पना हो। यह भी संभव है कि वह घर में, शिशु व्यवहार के विरोध में गंदी रहती हो।

बच्चों को असंख्य जिम्मेदारियों की अनुमति दी जानी चाहिए। मौंटेसरी पद्धति से प्रशिक्षित बच्चे गरम सूप के बड़े-बड़े डोंगे ले जाते हैं। एक सात वर्षीय बच्चा हर तरह के औज़ार का उपयोग कर लेता है। छेनी, कुल्हाड़ी, आरा, चक्कू सभी कुछ। मैं ही अपनी उंगलियों उससे ज़्यादा बार काटता हूं।

परंतु दायित्व और ज़िम्मेदारी को एक मानने की भूल भी नहीं करनी चाहिए। दायित्व भाव, अगर सीख सके तो बच्चा अपनी ज़िंदगी में बाद में सीख जाता है। दायित्व के साथ तमाम खतरनाक स्थितियों का विचार उठता है। मैं हमेशा उन औरतों की कल्पना करने लगता हूं जो अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल के दायित्व के बोझ के कारण जीवन और प्रेम से वंचित रह गईं। मैं उन दम्पत्तियों के बारे में सोचता हूं जो एक-दूसरे से प्रेम करना बंद कर चुके हैं पर अनिच्छा और कष्ट के बावजूद दायित्व बोध के चलते साथ-साथ जिए जा रहे हैं। छात्रावासों और ग्रीष्म शिविर में रहने वाले कई बच्चे घर पर पत्र लिखना अपना दायित्व मानते हैं। इस दायित्व से उन्हें खीझ आती है, खासकर जब उन्हें हर इतवार की दोपहर पत्र लिखने बैठना पड़े।

यह एक भ्रांति है कि ज़िम्मेदारी उम्र के हिसाब से होनी चाहिए। इसी भ्रांति के चलते नौजवानों के जीवन हम उन कमज़ोर बूढ़ों को सौंप देते हैं जिन्हें हम राजनेता कहते हैं। उन्हें अगर निश्चल नेता कहें तो शायद बेहतर हो। यह भ्रांति भी प्रचलित है कि परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने से छोटे सदस्यों का संरक्षक और मार्गदर्शक होता है। माता-पिता यह समझते ही नहीं कि उनका छह वर्षीय बेटा या बेटी ऐसे वाक्यों का तर्क समझ सकेगा कि "तुम नन्ही से बड़ी हो ना। अब तुम्हें तो अपनी उम्र में इतना तो समझना ही चाहिए कि उसे सड़क पर दौड़ने नहीं दिया जाता है।"

जिस जिम्मेदारी का सामना करने के लिए बच्चा तैयार न हो उसे निभाने को बच्चे से नहीं कहना चाहिए। न ही उस पर ऐसे निर्णय डालने चाहिए जिन्हें लेने लायक वो न हो। हमें हमेशा सामान्य-बुद्धि काम में लेनी चाहिए।

हम समरहिल में अपने पांच साल के छात्रा-छात्राओं से यह नहीं पूछते हैं कि उन्हें अग्निशामकों की ज़रूरत है या नहीं। हम एक साल के बच्चे को यह तय नहीं करने देते कि बुखार के बावजूद वह बाहर जाना चाहता है या नहीं। न ही हम किसी थके-मांदे बच्चे से पूछते हैं कि वह अब सोना चाहता है या नहीं न ही कोई बीमार बच्चे से चिकित्सक द्वारा बताई गई दवाएं खिलाने की अनुमति हम चाहते हैं।

ज़रूरत पड़ने पर बच्चे पर सत्ता के उपयोग - आवश्यक सत्ता का उपयोग - इस विचार के विरुद्ध नहीं जाता कि बच्चे जितनी उसकी उम्र में वह ले सकता हो, उतनी जिम्मेदारियां डालनी चाहिए। बच्चे को जिम्मेदारियां सौंपते समय माता-पिता को अपनी अंर्तात्मा से सलाह करनी चाहिए। उसे पहले खुद को जांचना चाहिए।

उदाहरण के बतौर जो माता-पिता बच्चों को खुद अपने कपड़े नहीं चुनने देते, वे अमूमन इस डर से त्रस्त होते हैं, कि कहीं वह माता-पिता की सामाजिक स्थिति पर बट्टा न लगा दे।

जो माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ने की किताबें, सिनेमा देखना या मित्रों को 'सेंसर' करते हैं वे अपने विचार अपने बच्चों पर लादते हैं। वे अमूमन खुद को यह तर्क दे लेते हैं कि बच्चे के लिए क्या अच्छा या बुरा है, यह वे ही तय कर सकते हैं। जबकि दरअसल सच्चाई अक्सर यह होती है कि उनके मन में अपनी सत्ता का उपयोग करने की लालसा होती है।

जहां तक संभव हो माता-पिता को एक बच्चे पर जिम्मेदारियां डालनी चाहिए। हां, जिम्मेदारियां सौंपते समय उसकी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यही एक मात्र तरीका है जिससे वे बालक में आत्मविश्वास जगा पाएंगे।

आज्ञाकारिता और अनुशासन

एक विधर्मी सवाल अक्सर सिर उठाता है : किसी बच्चे को आज्ञा क्यों माननी चाहिए? मेरा जवाब है : इसलिए, ताकि वह वयस्कों की सत्ता की लालसा पूरी करे। अन्यथा बच्चा आज्ञा क्यों मानेगा भला।

आप कहेंगे (अगर बच्चा जूते पहनने की आज्ञा न माने तो उसके पैर गीले हो सकते हैं। अगर वह अपने बाप की डांट न सुने तो पहाड़ी से नीचे गिर सकता है।) जी हां, ज़रूर। यह बात बिल्कुल सही है कि जिंदगी और मौत के सारे मसलों में बच्चे को आज्ञापालन करना ही चाहिए। पर बच्चे को हम कितनी बार जीवन-मरण के मसले पर कहा मानने की सज़ा देते हैं? शायद ही कभी। उस वक्त हम उसे गले से लगाते हैं। कहते हैं (मेरी आंख का तारा! भगवान का लाख-लाख शुक्र है, उसने तुम्हे बचा लिया!) बच्चे को अमूमन सज़ा मिलती है छोटी-छोटी बातों पर।

ऐसा घर भी ठीक से चल सकता है जहां आज्ञापालन की ज़रूरत ही न हो। अगर मैं किसी बच्चे से कहूं, (चलो किताबें निकालो और अंग्रेजी का पाठ पढ़ो) तो संभव है वह मना करे क्योंकि अंग्रेजी में उसकी रुचि ही न हो। ऐसे में आज्ञा न मानना महज उसकी अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। ऐसी इच्छाएं न किसी दूसरे की बाधा बनती हैं और न ही किसी को चोट पहुंचाती हैं। पर अगर मैं कहूं, (बाग के बीच वाले हिस्से में बीज बोए गए हैं। उस पर कोई दौड़ेगा नहीं।) सभी बच्चे इस आज्ञा का पालन करते हैं। ठीक उस तरह ही जैसे डेरिक की यह आज्ञा कि, (मुझसे पहले पूछे बिना कोई मेरी गेंद को हाथ नहीं लगाएगा।) आज्ञापालन असल में एक दो-तरफा, लेन-देन का रिश्ता है। समरहिल में यदाकदा स्कूल की आमसभा में बनाए गए नियम तोड़े भी जाते हैं। ऐसे में बच्चे खुद ही उचित कार्यवाही करते हैं। फिर भी समरहिल सामान्यत: बिना सत्ता और आज्ञापालन के बखूबी चलता है। हरेक बच्चा वह जो चाहे, करने को स्वतंत्र है, बशर्ते वह दूसरों की आज़ादी में बाधा न डालता हो। और यह ऐसा लक्ष्य है जो किसी भी समुदाय में हासिल किया जा सकता है।

स्व-नियंत्रण (सेल्फ रेग्यूलेशन) के तहत घर में कोई सत्ता नहीं होती। मतलब वहां कोई ऊंची आवाज में यह घोषणा नहीं करता,(मैं कह रहा हूं ना। तुम्हें मेरी बात माननी होगी।) ऐसे व्यवहार में दरअसल सत्ता ही तो होती है। उसे आप चाहें तो सुरक्षा के लिए देखभाल या व्यस्क जिम्मेदारी का नाम दे सकते हैं। पर ऐसी सत्ता कहीं आज्ञापालन की मांग करती है तो कहीं आज्ञा का पालन भी करती है। इसलिए मैं अपनी बेटी से कह सकता हूं कि,(दीवानखाने में पानी और मिट्टी तुम नहीं ला सकतीं) और मेरा यह कहना उसके यह कहने के समान है,(पापा, मेरे कमरे से निकलो। मुझे अभी तुम्हारी मौजूदगी नहीं चाहिए।) और उसकी इस इच्छा का पालन मैं बिना किसी प्रतिवाद के करता हूं।

माता-पिता की यह इच्छा भी सज़ा समान ही है कि बच्चे को जितना वह चबा पाए उससे ज्यादा बड़ा कौर नहीं लेना चाहिए। क्योंकि सच में यह शब्दश: सच है कि बच्चे की आंखें उसके पेट से कहीं बड़ी होती हैं और वो थाली में उतना परोस बैठता है जितना वह खा नहीं सकता है। बच्चे को थाली में रखा सब कुछ खाने पर उसे बाध्य करना गलत है। अच्छे माता-पिता होने का मतलब है कि अपने बच्चे के साथ तादात्म्य, उसकी मंशाओं को समझना, बिना किसी छुपे मकसद या नाराज़गी के उसकी सीमाओं को पहचानना।

एक मां ने मुझे पत्र डाला कि वे अपनी बच्ची को आज्ञाकारी बनाना चाहती हैं। इधर मैं उनकी बेटी को सिखा रहा था कि वह खुदकी आज्ञा का पालन करे। मां को लगता है कि वह कहा नहीं मानती, पर मुझे वह हमेशा आज्ञाकारी लगती है। वह पांच मिनट पहले मेरे कमरे में कुत्तों और उनके प्रशिक्षण पर बहस करने आई थी। मैंने कहा (अभी फूटो। इस वक्त मैं लिखने में व्यस्त हूं।) वो बिना एक चूं

के लौट गई।

आज्ञाकारिता एक सामाजिक शिष्टाचार है। व्यस्कों को बच्चों से आज्ञाकारिता पाने का कोई 'अधिकार' नहीं होना चाहिए। यह भीतर से उपजना चाहिए, बाहर से नहीं लादना चाहिए।

अनुशासन किसी लक्ष्य तक पहुंचने का माध्यम है। सेना का अनुशासन लड़ाई में कुशलता के लिए होता है। ऐसा अनुशासन व्यक्ति को किसी मकसद के अधीन बना डालता है। अनुशासित देशों में लोगों की जान की कोई कीमत नहीं होती।

पर एक दूसरी तरह का अनुशासन भी होता है। एक वाद्यवृन्द में साज बजाने वाले संगीत निर्देशक की आज्ञा का पालन करते हैं क्योंकि उनकी भी एक उम्दा प्रर्दशन की उतनी ही इच्छा होती है जितनी उनके निर्देशक की। पर फौज का जवान सावधान होकर जब सलाम बजाता है तो वह सेना की कार्यकुशलता को लेकर चिंतित नहीं होता। सभी सेनाएं भय से शासित होती हैं और सैनिक यह जानता है कि अगर वह हुक्म नहीं मानेगा तो उसे सज़ा मिलेगी। अगर शिक्षक अच्छे हों तो स्कूली अनुशासन वाद्यवृन्द के अनुशासन सा भी हो सकता है। परंतु ज़्यादातर वो सेना के अनुशासन जैसा ही नज़र आता है। यही बात घर पर भी लागू होती है। एक खुश घर वाद्यवृन्द सा होता है, उसमें समूह की, एक साथ होने वाली भावना होती है। पर दुखी घर सेना के बैरकों जैसा होता है जहां नफ़रत और अनुशासन का राज होता है।

अजीब बात यह है कि सहयोगी अनुशासन वाले घर अक्सर सैनिक अनुशासन वाले स्कूलों को स्वीकार लेते हैं। इन स्कूलों में लड़के शिक्षकों से पिटते हैं - वे लड़के भी जो घरों में कभी नहीं पिटे। हमारी दुनिया के परे अगर कोई अधिक पुराना और बुद्धिमान ग्रह हो तो वहां का निवासी यह सुनकर धरती के निवासियों को बेवकूफ ही समझेगा कि हमारी प्रारंभिक शालाओं में बच्चों को जोड़ने या वर्तनी की गलतियां करने पर पीटा जाता है। जब मानवतावादी माता-पिता पिटाई की वारदातों की शिकायतें ले अदालत पहुंचते हैं, तो ज़्यादातर अदालतें सज़ा देने वाले शिक्षक का ही पक्ष लेती हैं।

माता-पिता कल ही शारीरिक दंड बंद करवा सकते हैं अगर वे सचमें ऐसा चाहें। ज़ाहिर हे कि अधिकांश माता-पिता यह चाहते ही नहीं। यह व्यवस्था, दरअसल उन्हें भी रास आती है। इसके चलते ही तो उनके बेटा-बेटी अनुशासित होते हैं। और तो और इससे बच्चों के मन में बसी नफ़रत भी बड़ी सिफत से शिक्षकों की ओर मुड़ जाती है। शिक्षक माता-पिता के लिए किराए का टट्टू है, जो उनके गंदे काम करता है। यह व्यवस्था माता-पिता को इसलिए पसंद आती है क्योंकि उन्हें भी कभी इच्छानुसार जीने और प्यार करने नहीं दिया गया था। उन्हें भी सामूहिक अनुशासन का गुलाम बनाया गया था और वे बेचारे कभी आज़ादी की कल्पना तक न कर पाए थे।

यह सच है कि घर में अनुशासन की ज़रूरत है। सामान्यत: यह ऐसा अनुशासन है जिससे परिवार के हरेक सदस्य की आज़ादी की रक्षा हो सके। उदाहरण के लिए मैं अपनी बेटी जोए को अपने टाइपराइटर से खेलने नहीं देता पर एक खुश परिवार में इस तरह का अनुशासन खुद-ब-खुद आ जाता है। वहां का जीवन आपसी लेन-देन पर टिका होता है। माता-पिता और बच्चे दोस्त होते हैं, सहकर्मी होते हैं।

पर दुखी परिवार में अनुशासन का उपयोग घृणा के अस्त्र के रूप में होता है और आज्ञापालन एक अनुकरणीय आदर्श बन जाता है। वहां बच्चे चल-संपत्ति जैसे होते हैं, जिन पर माता-पिता का मालिकान हक हो और जिन्हें हमेशा अपने मालिक के लिए यश कमाना हो। मेरा मानना है कि जो माता-पिता अपने बच्चे की पढ़ाई-लिखाई को लेकर बेहद व्यग्र रहते हैं, वे स्वयं को जिंदगी में असफल मानने वाले होते हैं। उन्हें लगता है कि शिक्षा के अभाव के कारण वे में पीछे रह गए हैं।

जो माता-पिता स्वयं खुद को अस्वीकार करते हैं वे ही कठोर अनुशासन में विश्वास करते हैं। जो पिता स्वयं भद्दे मजाक करता है, या किस्से सुनाता है, वही अपनी बेटी को टट्टी या पाद की कहानी सुनाने पर डपटता है। जो मां खुद झूठ बोलती है वह अपने बेटे को झूठ बोलने के लिए पीटती है। मैंने मुंह में पाइप ठूंसे पिता देखे हैं जो अपने बेटे को सिगरेट पीने पर धुन कर रख देते हैं। मैंने एक पिता को अपने बारह वर्षीय बेटे को यह कहकर ठोकते सुना (गाली बकता है? हरामी! मैं तेरी गाली वाली भुला दूंगा।) जब मैंने उन्हें टोका तो उनका जवाब था,(मेरी बात और हैं मैं गाली दूं तो दूं, पर वह तो अभी बच्चा है।)

घर में घोर अनुशासन खुद से नफरत का परिचायक हैं जो व्यस्क ताउम्र श्रेष्ठता पाने की कोशिश करते रहे, पर उसे पाने में असफल रहे वे ही बाद में अपने बच्चों के माध्यम से उसे तलाशने में जुटते हैं। और यह महज इसलिए, क्योंकि वे प्यार करना ही नहीं जानते। महज इसलिए, क्योंकि वे आनंद से उतना ही डरते हैं मानों वह शैतान हो। दरअसल शैतान को ईजाद भी इसलिए किया गया होगा क्योंकि शैतान वह है जो केवल मज़ा करता है। शैतान जीवन और आनंद से प्यार करता है। और इसी लक्ष्य से उपजता है रहस्यवाद, अतार्किकता, धर्म और तपस्या।

माता-पिता चाहते हैं कि बच्चे वह बनें जो वे खुद नहीं बन पाए। केवल इतना ही नहीं, वे यह भी नहीं चाहते कि बच्चों को उनके जीवन में उतना आनंद मिल सके जितना उन्हें खुद नहीं मिल पाया था। जो माता-पिता स्वयं जीवंत नहीं हैं वो अपने बच्चों को भला क्यों जीवंत रहने देंगे। उनके मनमें भविष्य की दुश्चिंलाएं बसती हैं। वे सोचते हैं कि अनुशासन बच्चों को बचा लेगा। स्वयं में आस्था की यही कमी उसे एक ईश्वर में विश्वास करना भी सिखाती है। ऐसे ईश्वर में जो अच्छाई और सत्य को जबरदस्ती लादता है। दरअसल अनुशासन धर्म की ही एक शाखा मात्र है।

समरहिल व अन्य ठेठ स्कूलों में अंतर यही है कि समरहिल में हम बच्चे के व्यक्तित्व में आस्था रखते हैं। हम मानते हैं कि अगर टॉमी को डॉक्टर बनना है तो वह स्वेच्छा से प्रवेश परीक्षाएं देगा। अनुशासित स्कूल यह मान कर चलते हैं कि अगर उसे ठोका-पीटा न जाए, उस पर तयशुदा घंटों तक पढ़ने का दबाव न बनाए रखा जाए, तो फिर टॉमी कभी भी डॉक्टर नहीं बन सकता है।

मैं यह स्वीकारता हूं कि सामान्यत: स्कूल से अनुशासन हटाना, घर से उसे हटाने से कहीं आसान है। समरहिल में अगर कोई सात साल का बच्चा सबकी नाक में दम करे तो पूरा समुदाय उसकी आलोचना करता है। और क्योंकि सबको ही दूसरों का अनुमोदन चाहिए होता है इसलिए बच्चा अपने व्यवहार को सुधारना सीखता है। अनुशासन की ज़रूरत ही नहीं पड़तीं

घर में जहां तमाम भावनात्मक घटक व दूसरी परिस्थितियां भी जुड़ी होती हैं, वहां चीजें इतनी आसान नहीं होतीं। एक गृहणी जो खाना

बनाने में उलझी हो, वह अपने चिड़चिड़े बच्चे को सामाजिक निंदा नहीं सकती, और न ही थका-मांदा घर लौटा पिता अपनी रौंदी हुई क्यारी को देख अपना पारा संभाल सकता है। मेरा कहना सिर्फ इतना है, कि जिस घर में शुरू से बच्चे स्व-नियंत्रित होते हैं, वहां अनुशासन की ज़रूरत पैदा ही नहीं होती है।

कुछ साल पहले मैं अपने मित्र विलहैल्म राईख़ के मॉइन स्थित घर गया था उसका बेटा पीटर उस वक्त तीन साल का था। घर के ठीक सामने एक गहरा तालाब था। विलहैल्म और उसकी पत्नी ने बच्चे को समझा रखा था कि उसे तालाब की ओर नहीं जाना है। पीटर का अपने माता-पिता के प्रति पूरा विश्वास था क्योंकि उसके पालन-पोषण में घृणा का स्थान था ही नहीं। वह कभी पानी की ओर गया नहीं उसके माता-पिता भी जानते थे कि उन्हें बच्चे को लेकर बहुत चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। डर और सत्ता में विश्वास करने वाले माता-पिता तालाब के किनारे अगर रहते तो उनका जीवन ऐसा होता मानों जैसे सिर पर तलवार लटकी हो। बच्चों को मां-बाप से इतना झूठ सुनना पड़ता है कि जब उन्हें कहा जाता है कि गहरा पानी उनके लिए खतरनाक हो सकता है, वे उसका विश्वास तक नहीं करते। उनके मनमें एक विद्रोह जनित इच्छा जगती है कि पानी की ओर ज़रूर जाया जाए।

अनुशासित बच्चा अपनी घृणा जताने के लिए मां-बाप को परेशान करता है। बच्चों की बदतमीजी अक्सर उसके साथ किए गए दुरव्यवहार का सबूत होती है। अगर घर में प्यार हो तो एक औसत बच्चा अपने माता-पिता के अनुभवों और ज्ञान पर कान देता है। परंतु अगर घर में नफ़रत हो तो कुछ नहीं स्वीकारता। या सभी बातों को नकारात्मक रूप में लेता है। ऐसा बच्चा तोड़फोड़ करने वाला ढीठ और बेईमान होता है।

बच्चे बुद्धिमान होते हैं। वे प्रेम के बदले प्रेम देते हैं और घृणा के बदले घृणा। वे समूह का अनुशासन आसानी से स्वीकार लेते हैं। मेरा मानना है कि बुराई मानवीय स्वभाव का मूलभूत हिस्सा नहीं है। ठीक उसी तरह जैसे वह किसी खरगोश या शेर के स्वभाव का वह हिस्सा नहीं होती। पर अगर किसी अच्छे कुत्ते को लगातार बांधे रखो तो वह खूंखार बन जाता है। इसी तरह अगर किसी अच्छे और मिलनसार बच्चे को अनुशासित करो तो वह बुरा, कपटी और घृणा करने वाला बन जाता है। दुख की बात यह है कि अधिकतर लोग यह मानते हैं कि कोई खराब बच्चा खराब बनना चाहता है। उनका विश्वास यह होता है कि भगवान, या मोटे डंडे की मदद से बच्चे को अच्छा और सही रास्ता चुनने की ताकत मिल सकेगी। और अगर वह इस ताकत के इस्तेमाल से इंकार करता है तो वे यह सुनिश्चित करेंगे कि बच्चा अपने दुराग्रह की सज़ा भुगते।

इस तरह से देखें तो पुराने स्कूल की भावना अनुशासन का प्रतीक है। एक बड़े, लड़कों के स्कूल के प्रधानाचार्य से कुछ समय पहले सवाल किया गया था। पूछा था कि उनके स्कूल के बच्चे कैसे है? उनका जवाब था,(ऐसे जो बिना विचारों और आदर्शों के स्कूल से निकलते हैं। वे किसी भी युद्ध में तोपची बनने को तैयार रहते हैं। पर वे ठहर कर यह विचार तक नहीं करते कि युद्ध लड़ा किस लिए जा रहा है? वे स्वयं क्यों लड़ रहे हैं?)

पिछले चालीस सालों में मैंने किसी बच्चे पर हाथ नहीं उठाया है। पर जब मैं एक नौजवान, शिक्षक था तब मैं बिना सोचे-विचारे अपना हाथ छोड़ बैठता था। अबमैं किसी बच्चे को छूता तक नहीं, क्योंकि मैं जानता हूं कि पिटाई के क्या खतरे हैं। मैं पिटाई के पीछे छुपी नफरत की बात भी आज बखूबी समझता हूं।

समरहिल में हम बच्चों को वयस्कों के समान मानते हैं। हम बच्चे के व्यक्तित्व और उसके चरित्र का भी कमोबेश सम्मान करते हैं। ठीक वैसे ही जैसे हम किसी वयस्क के व्यक्तित्व और चरित्र का सम्मान करते हैं। हम चचा बिल से यह नहीं कहते हैं कि उन्हें चाहें गाजर पसंद हो या न हो, परंतु थाली में परोसी पूरी सब्जी उन्हें खत्म करनी ही है। न हम पापा से कहते हैं कि खाने बैठने से पहले वे हाथ जरा ठीक से तो धो आएं। बच्चों को लगातार टोकने से उनमें हीन भावना पनपती है। हम उसके स्वाभाविक आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाते हैं। यह तुल्नात्मक मूल्यों का प्रश्न है।

गलत तरह के अनुशासन में पले बच्चे ताउम्र एक झूठ जीते हैं। वे कभी अपना सहज रूप नहीं धर पाते। वे स्थापित रीति-रिवाजों और व्यवहार के गुलाम बन जाते हैं। वे बिना सवाल उठाए इतवार को बेवकूफी भरे कपड़े पहनते हैं। इसलिए क्योंकि अनुशासन की जड़ में आलोचना का भय होता है। पर खेलने वालों से दंड मिलना डर की बात नहीं होती। पर अगर कोई वयस्क सज़ा दे तो डर स्वत: पैदा होता है। क्योंकि वे बड़े होते हैं, ताकतवर होते हैं और उन्हें देख बच्चे सकते में आ जाते हैं। इस सबसे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वे डरावने पिता या डरावनी मां का भी प्रतीक होते हैं।

अड़तीस सालों में मैंने बराबर बदमिजाज, बदतमीज, और नफरत से भरे बच्चों को समरहिल के आज़ाद वातावरण में कदम रखते देखा है। हरेक बच्चे में क्रमश: एक बदलाव आते भी देखा है। समय के साथ ये बिगड़ैल बच्चे, खुशमिजाज़, मेलजोल रखने वाले, ईमानदार और दोस्ताना व्यवहार करने वाले बच्चों में बदले हैं।

मानवता का भविष्य नए माता-पिता के हाथों में है। अगर वे अपने बच्चों पर निरंकुश अनुशासन लाद कर अपने बच्चे की सारी जीवन उर्जा खत्म कर डालते हैं तो अपराध, युद्ध और दुख ही पनपेगा। अगर वे अपने अनुशासन प्रिय माता-पिता के पदचिन्हों पर चलते रहेंगे तो वे अपने बच्चों का स्नेह और प्यार खो देंगे। जिससे कोई डरे, उसे प्यार कैसे कर सकता है?

मनोरोग माता-पिता के अनुशासन से जन्मता है। अनुशासन, जो माता-पिता के प्रेम का विलोम है। घृणा, सज़ा और दमन के वातावरण में अच्छी मानवता नहीं पनपनी। इसका एक ही रास्ता है, वही प्यार का।

बचपन की अधिकांश समस्याओं का समाधान ऐसे प्रेममय वातावरण से ही हो सकता है जिसमें माता-पिता का अनुशासन न हो। मैं चाहता हूं कि यह बात सभी माता-पिता समझें। अगर उनके बच्चों को घर में प्यार और अनुमोदन का वातावरण मिलेगा तो बदमिजाज़ी, घृणा और नष्ट करने की इच्छा कभी नहीं जन्मेगी।

पुरस्कार व दंड

बच्चे को पुरस्कृत करने कमें उतना खतरा नहीं है, जितना उसे सज़ा देने में है। पर पुरस्कार देना बच्चे के मनोबल को तोड़ने का सूक्ष्म तरीका है। पुरस्कार सतही होते हैं और नकारात्मक भी। किसी काम को करने के लिए पुरस्कार देनक का अर्थ यह भी निकलता है कि वह काम अपने-आप में करने लायक नहीं है।

कोई भी कलाकार विशुद्ध रूप से पैसे के लिए काम नहीं करता। उसका एक पुरस्कार होता है रचनात्मकता का सुख। साथ ही पुरस्कार स्पर्धात्मक प्रणाली की सबसे खराब बातों को उभारते हैं। दूसरे को पछाड़ना एक घटिया उद्देश्य है।

पुरस्कार देने का बच्चों पर बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इससे उनमें जलन पैदा होती है। अक्सर कोई लड़का अपने छोटे भाई को इसलिए नापसंद करने लगता है क्योंकि उसकी मां टिप्पणी करती है कि(तुम से अच्छी तरह तो तुम्हारा छोटा भाई ही यह काम कर लेता है।) बच्चे के लिए मां की यह टिप्पणी छोटे भाई को बेहतर होने के नाम पर दिए गए पुरस्कार के समान ही होती है।

जब हम बच्चों की चीजों में स्वभाविक रुचियों पर विचार करते हैं तो हमें सज़ा और पुरस्कार दोनों के खतरे साफ़ नज़र आने लगते हैं। पुरस्कार और दंड बच्चों पर ऐसा दबाव डालते हैं कि वह जबरन किसी चीज में रुचि लेने लगता है। पर वास्तविक रुचि ही पूरे व्यक्तित्व की जीवन उर्जा होती है और वह रुचि बिल्कुल स्वत: स्फूर्ति होती है। किसी का ध्यान जबरदस्ती आकर्षित किया जा सकता है क्योंकि ध्यान देना सचेत होकर किया जाने वाला काम है। यह पूरी तरह संभव है कि श्यामपट पर खिंची रेखाओं पर ध्यान देते हुई भी किसी की रुचि डाकुओं में बनी रहे। ध्यान तो जबरदस्ती खींचा जा सकता है पर रुचि जबरन पैदा नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए कोई बंदा मुझे टिकट-संग्रहण में रुचि लेने पर बाध्य नहीं कर सकता है, मैं खुद भी अपने आपको इसमें रुचि लेने पर बाध्य नहीं कर सकता। फिर भी पुरस्कार और दंड दोनों ही रुचि को बाध्य करने की कोशिश करते हैं।

मेरा एक बड़ा सा बगीचा है। जिस समय खरपतवार निकालने का मौसम आता है, उस वक्त नन्हें लड़के और लड़कियों की टोली मेरे लिए बेहद मददगार सिद्ध हो सकती है। यह संभव है कि मैं उन्हें आज्ञा दे डालूं कि वे मेरे काम में मेरी मदद करें। पर आठ-नौ-दस साल की उम्र में खरपतवार निकालने की आवश्यकता पर उन्होंने अपनी राय नहीं बनाई होती। इस काम में उनकी कतई रुचि नहीं होती।

एक बार मैं छोटे लड़कों के एक झुंड के पास गया और पूछा, (कोई खरपतवार निकालने में मदद करना चाहेगा?) सबने मना कर दिया।

मैंने जानना चाहा क्यों। तुरंत जवाब किे (बिल्कुल उबाऊ काम है।) (उन्हें उगने दो ना।) (मैं फिलहाल शब्द-पहेली में व्यस्त हूं।) (मुझे बागवानी नापसंद है।)

मुझे भी खरपतवार निकालना उबाऊ लगता है, मुझे भी शब्द-पहेलियां बूझना पसंद है। पर बच्चों के प्रति इंसाफ़ करना हो तो कहना होगा कि आखिर खरपतवार निकालने से उनका क्या लेना-देना है? आखिर बगीचा मेरा है। जब मिट्टी से मटर की पौध निकलती है तो गर्व से मेरा ही सीना फूलता है। साग-सब्जियां खरीदने पर मेरा ही खर्च कम होता है। संक्षेप में बाग मेरे स्वार्थ से जुड़ा है। पर जब बच्चों की इसमें रुचि ही नहीं है तो मैं जबरदस्ती रुचि कैसे पैदा कर सकता हूं। मेरे सामने अकेला रास्ता यह है कि मैं उन्हें हर घंटे के हिसाब से मजदूरी दूं। तब ही हम दोनों एक स्तर पर होंगे। मेरी रुचि बागवानी में और उनकी रुचि कुछ जेब खर्च कमाने में होगी।

रुचि मूलत: अहं से जुड़ी होती है। चौदह वर्षीय मौड अक्सर खरपतवार निकालने में मेरी मदद करती है यद्यपि उसका कहना है कि उसे इससे घृणा है। पर वह मुझसे नफ़रत नहीं करती है। वह इसलिए खरपतवार निकालती है ताकि वह मेरे साथ कुछ समय बिता सके। उस वक्त खरपतवार निकालने से उसका स्वार्थ भी सधता है।

जब डेरिक, जिसे खरपतवार निकालना नापसंद है, खुद आगे बढ़कर अपनी सेवाएं देता है तो मुझे मालूम होता है कि वह फिर से मेरा जेबी चाकू मुझसे मांगेगा। उसकी वही रुचि है।

अगर कोई पुरस्कार हो भी तो वह आत्मगत होना चाहिए। उस काम को करने में आत्म-संतुष्टि का। दुनिया में तमाम अरुचिकर काम होते हैं : कोयला खोदकर निकालना, इक्यावन नंबर के बोल्ट में पचास नंबर का नट बैठाने की कोशिश करना, नालियां खोदना, संख्याएं जोड़ना। दुनिया ऐसे कामों से भरी पड़ी है जिन्हें करने में कोई मज़ा आ ही नहीं सकता। लगता है कि हम अपने स्कूलों को जीवन की नीरसता के अनुकूल बनाना चाहते हैं। हम अपने बच्चों का ध्यान उन तमाम विषयों पर जबरदस्ती केंद्रित करवाते हैं, जिनमें उनकी कोई रुचि न हो, या दरअसल हम उन्हें उन कामों के लिए अनुकूलित करते हैं जिन्हें करने में उन्हें कोई मज़ा न आए।

अगर मेरी, लिखना या गिनती सीखती है तो इसलिए क्योंकि उसकी इन विषयों में रुचि है इसलिए नहीं कि अगर उसके अच्छे अंक आएंगे तो उसे साइकिल मिलेगी, या मां बड़ी खुश होगी।

एक मां ने अपने बेटे को वादा किया कि अगर वह अंगूठा चूसना बंद कर देगा तो उसे रेडियो मिलेगा। किसी भी बच्चे के लिए यह कितनी अन्यायपूण्र दुविधा उपस्थित करता है। अंगूठा चूसना एक अवचेतन रूप से किया गया काम है, जो बच्चे की इच्छाशक्ति के बस में नहीं है। संभव है कि बच्चा बड़ी बहादुरी से सचेत हो इस आदत पर काबू पाने की कोशिश करे। पर वह इसमें बार-बार असफल होगा। परिणाम यह होगा कि उसके मन में लगातार अपराधबोध की भावना जगेगी और वह दुखी होता जाएगा।

भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में जो भय है वह उस वक्त बड़ा खतरनाक बन उठता है जब उसमें घूस का सुझाव जुड़ जाता है। (जब तू पढ़ना सीख लेगा तो डैडी तुझे साइकिल दिला देंगे।) ऐसे सुझाव हमारी संस्कृति के स्वार्थ साधने वाले पक्ष को स्वीकृति प्रदान करते हैं। मुझे खुशी है कि एकाधिक बच्चे चमचमाती साइकिल के बदले निरक्षर रहना ही पसंद करते हैं।

ऐसी घूस का एक दूसरा रूप तब नज़र आता है जब बच्चे की भावनाओं को छूने की कोशिश होती है। (अगर तुम अपनी कक्षा में हमेशा सबसे नीचे रहे तो मां को बड़ा दुख होगा।) घूस के ये दोनों ही तरीके बच्चे की वास्तविक रुचियों को अनदेखा करते हैं।

जब हम बच्चों से अपना काम करवाते हैं तब भी मुझे सख्त आपत्ति होती है। अगर हमें उससे अपने काम करवाने हों तो हमें उसे उसकी क्षमता के अनुसार पैसे देने चाहिए। अगर मैं टूटी दीवार की मरम्मत करना चाहूं तो कोई भी बच्चा ईंट इक्ट्ठा करने में रुचि नहीं लेता। पर मैं एक हाथ-ठेली भर ईंटें लाने के लिए कुछ पैसे देने की बात करूं तो शायद वह खुशी-खुशी करे। क्योंकि तब मैं उसके स्वार्थ को जगाता हूं। पर मुझे बच्चे के साप्ताहिक खर्च को कुछ काम करने से जोड़ना भी पसंद नहीं आता। माता-पिता को उसके बदले में अपेक्षा रखे बिना ही वह सौंपना चाहिए।

सज़ा कभी न्यायपूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि कोई व्यक्ति न्यायपूर्ण नहीं हो सकता। न्याय का निहितार्थ है 'पूरी समझ। न्यायाधीशों की नैतिकता किसी कूड़ा-कचरा इक्ट्ठा करने वाले से अधिक नहीं होती। जो न्यायाधीश बेहद रूढ़िवादी और सैन्यवादी हो, वो एक शांति चाहने वाले व्यक्ति जो (सेना, हाय! हाय!) का नारा लगा रहा हो, के प्रति न्याय कैसे करेगा।

हम इसलिए न्याय नहीं कर पाते क्योंकि हम खुदको नहीं जानते, अपनी दमित आकांक्षाओं को नहीं पहचानते। बच्चे पर इस कारण बड़ी ज्यादतियां होती हैं। कोई भी वयस्क अपनी कुंठाओं के परे जाकर बच्चों की शिक्षा-दीक्षा नहीं कर सकता। जब हम खुद ही अपने दमित भयों से त्रस्त हैं, तो हम बच्चों को मुक्त कैसे बना सकते हैं। हम बच्चों पर बस अपनी कुंठाएं लाद सकते हैं। अगर हम खुद को समझने की कोशिश करें तो बच्चों को सज़ा देना कठिन बन जाए। उन पर किसी दूसरे का गुस्सा उतारना मुश्किल हो जाए। सालों पहले मेरे प्रथम स्कूल में मैं बच्चों को बारबार ठोकता था। निरीक्षक के आने की चिंता हो, या अपने मित्र से झगड़ा हो गया हो। दरअसल मैं खुद किस बात से नाराज़ हूं, यह जानने के बदले मैं किसी भी बहाने अपनी नाराजगी बच्चों पर निकालता। आज मैं अपने अनुभव से यह जानता हूं कि सज़ा देना निरर्थक है। मैं किसी बच्चे को सज़ा नहीं देता, सज़ा देने का लोभ भी मन में नहीं जागता।

हाल में मैंने अपने एक नए छात्र से, जो बेहद असामाजिक व्यवहार कर रहा था, कहा (तुम ये सारी बेवकूफी भरी हरकतें इसलिए कर रहे हो ताकि, मैं तुम्हारी पिटाई करूं, क्योंकि तुम ताउम्र पिटते ही आए हों पर तुम अपना समय बरबाद कर रहे हों तुम जो कुछ भी करो मैं तुम्हें सज़ा नहीं दूंगां) इसके बाद उसने तोड़फोड़ बंद कर दीं उसे मनमें घृणाा को पालते रहने की ज़रूरत न रहीं

सज़ा हमेशा नफ़रत से उपजा काम है। सज़ा देते समय शिक्षक या माता-पिता दरअसल बच्चे से घृणा कर रहे होते हैं, और बच्चे को यह बात समझ में आती है। ज़ाहिराना तौर पर पीटा गया बच्चा जो पश्चाताप कर करुणामय प्रेम अपने माता-पिता की ओर दर्शाता है वह सच्चा प्यार नहीं होता। उसके मन में जो वास्तविक भावना है वह है नफ़रत की, पर अपराधबोध से बचने के वास्ते उसे उस घृणा को छुपाना पड़ता है। पिटाई उसे काल्पनिक जगत में धकेलती है। काश, मेरे पिता इसी वक्त गिरें और मर जाएं। और यह कल्पना मनमें तत्काल अपराधबोध जगाती है - पिता के मरने की इच्छा मनमें जगी। हाय ! कैसा पापी हूं मैं और तब जो पश्चाताप उपजता है वह उसे अपने पिता के पास बाहरी तौर पर प्रेम जताने की ओर जाता है। पर उसके मनमें घृणा होती है जो स्थाई तौर पर बने रहने के लिए उपजती है।

इससे भी खराब बात यह है कि सज़ा एक भयावह दुष्चक्र बनाती है। पिटाई घृणा को प्रकट करना है। और हर पिटाई से बच्चे में घृणा बढ़ती जाती है। और जब उसमें भरी हुई घृणा उसके बुरे व्यवहार में झलकती है तो और पिटाई होती है। और यह दूसरे बार की पिटाई अपने साथ और बढ़ी हुई घृणा का फल बन चुका होता है कि वह जान बूझकर तमाम पाप करता है ताकि उसके मां-बाप में भावनात्मक प्रतिक्रिया जागे। क्योंकि जहां प्रेम की भावना ही न हो वहां घृणा की भावना तो जगाई जा सकती है। सो बच्चा पिटता है और तब पश्चाताप जगाता है। पर अगली सुबह वही चक्र फिर शुरू होता है।

जहां तक मैं देख पाया हूं स्व-निर्देशित बच्चे को सज़ा की ज़रूरत ही नहीं होती और वह घृणा के दुश्चक्र से नहीं गुजरता है। उसे कभी सज़ा नहीं मिलती और दुर्व्यवहार की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसे झूठ बोलने की, तोड़-फोड़ करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसके शरीर को कभी गंदा, या उसे कभी शैतान नहीं कहा जाता, उसे सत्ता के प्रति विद्रोह जताने की या मां-बाप से थर्राने की ज़रूरत नहीं होती। वह भी झल्लाता है, पर उसकी झल्लाहट कुछ समय टिकती है और वह मनोरोग में नहीं बदलती।

यह सच है कि यह तय करना बड़ा मुश्किल है कि दरअसल किसे सज़ा कहा जाए और किसे नहीं। एक दिन एक लड़के ने मेरा सबसे बढ़िया आरा उधार मांगा। अगले दिन वह आरा बरसात में पड़ा मिला। मैंने उससे कहा कि मैं उसे वह आरा भविष्य में कभी नहीं दूंगा। यह सज़ा नहीं थी। क्योंकि सज़ा में हमेशा नैतिकता का विचार होता है। आरे को बरसात में छोड़ना आरे के लिए खराब ज़रूर था, पर यह काम अनैतिक काम नहीं था। बच्चे को यह तो बखूबी समझ लेना चाहिए कि वह किसी दूसरे के औज़ार मांग कर उन्हें खराब नहीं कर सकता। किसी दूसरे की संपत्ति को नुकसान नहीं पहुंचा सकता। किसी दूसरे की कीमत पर अपनी बात मनवाना, या वह पा लेना जो वह चाहता है बच्चे के लिए नुकसानदेह है। इससे बच्चे बिगड़ैल बनते हैं और बिगड़ैल बच्चे खराब नागरिक होते हैं।

कुछ समय पहले हमारे पास एक बच्चा आया। अपने पिछले स्कूल में उसने सबकों चीजें फेंक-फेंक कर आतंकित कर रखा था। यहां तक कि उसने बच्चे मार डालने तक की धमकी दी थी। उसने मेरे साथ भी यही खेल शुरू किया। मैंने जल्दी ही यह निष्कर्ष निकाला कि वह अपना गुस्सा दूसरों को डराने और अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए जताता है।

एक दिन खेल कमरे में घुसते ही मैंने सब बच्चों को एक कोने में झुंड बनाए सिमटा हुआ पाया। कमरे के दूसरे कोने में वह आतंकवादी हथौड़ा लिए खड़ा था। जो बच्चा पास आएगा उसका ही वह सिर फोड़ेगा की धमकी दे रहा था। मैंने तल्खी से कहा (बस, नाटक बंद करो। हम तूम से डरते तक नहीं।) हथौड़ा फेंक कर वह मेरी ओर लपकां उसने मुझे काटा और लातें जमाईं। मैंने शांत आवाज में कहा (तुम जितनी बार चाहो मुझे मारो या काटोगे, मैं तुम्हें पलट कर मारूंगा।) मैंने यह किया भी। कुछ समय में उसने यह स्पर्धा बंद की और कमरे से भाग गया।

यह सज़ा नहीं थी। यह एक ज़रूरी पाठ था : उसे सिखाना था कि कोई अपने संतोष के लिए दूसरों को ठोक नहीं सकता।

अधिकांश घरों में सज़ा इसलिए दी जाती है कि आज्ञा का पालन नहीं किया गया। स्कूलों में भी कहना न मानना और बदतमीज़ी करना

अपराध माना जाता है। जब मैं एक युवा शिक्षक था तो बच्चों की पिटाई करना मेरी आदत थी, क्योंकि ब्रिटेन में अधिकांश शिक्षकों को इसकी छूट होती थी। मुझे सबसे ज्यादा गुस्सा भी उन्हीं लड़कों पर आता था जो मेरी आज्ञा की अवहेलना करते थे। मेरे नाजुक से आत्मसम्मान को इससे बड़ी ठेस पहुंचती थी। मैं कक्षा में खड़ा टिन का देवता था, ठीक वैसे ही जैसे घर का टिन देवता कोई पिता होता है। अवज्ञा की सज़ा देने का मतलब है खुद को परमेश्वर मानना : तू मेरे सिवा किसी और को खुदा नहीं मानेगा।

बाद में जब मैंने जर्मनी और ऑस्ट्रिया में पढ़ाया तो मुझे उस वक्त बेहद शर्म आती जब लोग पूछते कि क्या ब्रिटेन में शारीरिक दंड दिया जाता है। जर्मनी में जो शिक्षक बच्चे को मारते हैं उन पर हमला करने का मामला दर्ज होता है और उन्हें अमूमन सज़ा होती थी। ब्रिटिश स्कूलों में जो बेंत या पटों से पिटाई होती है वो हमारे लिए सबसे शर्मनाक बात है।

एक बड़े शहर के चिकित्सक ने एक बार मुझे कहा था (हमारे एक स्कूल का प्रधानाध्यापक निहायत जंगली है। वह बच्चों को बेरहमी से पीटता है। मेरे पास अक्सर उसके कारण दहशत से भरे बच्चे लाए जाते हैं। पर मैं कुछ नहीं कर सकता। लोकमत और कानून जो उसके साथ हैं)

कुछ ही समय पहले अखबारों में एक मामला छपा जिसमें न्यायाधीश ने दो गुनाहगार भाईयों से कहा कि अगर उन्हें बचपन में दो-चार बार ठोका जाता तो शायद उन्हें अदालत में खड़ा न होना पड़ता। पर जैसे मामले के सबूत सामने आते गए पता चला कि दोनों भाईयों के पिता हर रात उनकी धुनाई करते थे।

सॉलोमन और उसके डंडे की कहानी ने जितना नुकसान किया है उतना फायदा उनकी सूक्तियों तक से नहीं हुआ है। जो व्यक्ति जरा भी अंर्तमुखी होकर अंदर झांकने की ताकत रखता है वह कभी भी बच्चे को पीट नहीं सकता, न ही उसे पीटने की इच्छा कर सकता है।

फिर से दोहरा रहा हूं कि पिटाई के द्वारा बच्चे के मन में उसी समय डर बैठता है जब उसके साथ नैतिकता का विचार जोड़ा जाता है, जब 'गलती' का विचार जगाया जाता है। अगर सड़क चलता कोई छोकरा ढेला मार कर मेरी टोपी गिरा दे, और मैं उसे पकड़ कर चांटा जड़ दूं तो वह मेरी प्रतिक्रिया को बिल्कुल स्वाभाविक मानेगा। उसकी आत्मा को मैं कोई नुकसान न पहुंचा सकूंगा। पर अगर मैं उसके स्कूल के प्रधानाध्यपक के पास जाकर उसे सज़ा दिलवाना चाहूं तो यह बच्चे के लिए खराब होगा। क्योंकि तब यह मामला नैतिकता और सज़ा का बन जाएगा। बच्चे को लगेगा कि उसने भारी अपराध किया है।

इसके बाद के दृश्य की बखूबी कल्पना की जा सकती है। मैं एक तरफ अपने कीचड़ से सने टोप को लेकर खड़ा हूं। प्रधानाध्यापक, अपनी कुर्सी पर जमे हैं, उनकी दुखी सी आंखें लड़के पर गड़ी हुई हैं। बच्चा गर्दन झुकाए खड़ा है। वह आरोप लगाने वालों की गरिमा से त्रस्त है। सड़क पर उसका पीछा करने समय दोनों एक ही समान थे। सिर का टोप गिरने के बाद मेरी गरिमा भी गायब हो चुकी थी। मैं बस एक राह चलता आदमी भर था। पर मेरे चांटे ने उसे जिंदगी का एक ज़रूरी पाठ पढ़ाया था वह यह कि अगर वह किसी व्यक्ति को ढेला तो वह आदमी नाराज़ होगा, और पलट कर झापड़ धरेगा।

सज़ा का गर्ममिजाजी से कोई रिश्ता नहीं होता। सज़ा तो बिल्कुल ठंडी और सोची-समझी चीज होती है। सज़ा का रिश्ता नैतिकता से है। सज़ा का दावा यह रहता है कि वह गुनहगार के हित में दी जा रही है (और अगर मौत की सज़ा है, तो वह समाज के हित में मानी जाती है)। सज़ा वह क्रिया है जिसमें इंसान खुद को भगवान की जगह बैठाता है और दूसरे पर नैतिक फैसला सुनाता है।

कई मां-बाप इस विश्वास को ही जीवन में उतारते हैं कि क्योंकि ईश्वर पुरस्कार या दंड देता है इसलिए उन्हें भी अपने बच्चे को पुरस्कार या दंड देना चाहिए। वे ईमानदारी से न्याय करना चाहते हैं और खुद को यह विश्वास दिला देते हैं कि वे अपने बच्चों को उनके ही भले के लिए सज़ा दे रहे हैं। उनका यह कहना कि 'सज़ा देने से तुमसे अधिक तकलीफ मुझे हो रही है' उतना झूठ नहीं है जितना खुद को छलना है।

याद रखना चाहिए कि धर्म और नैतिकता 'सज़ा' को प्राय: आकर्षक संस्था बना देते हैं। क्योंकि सज़ा हमारी चेतना पर मलहम लगाती है। पापी यह कह पाता है 'मैंने अपने पापों की कीमत चुकाई है।' मेरे भाषणों के बाद प्रश्नोत्तर के समय कोई न कोई पुरातनपंथी अक्सर कहता है (मेरा बाप अपनी चप्पल से मुझे पीटा करता था, पर मुझे इसका कोई खेद नहीं है। अगर मुझे वह मार न पड़ती तो जो मैं आज हूं, वह होता ही नहीं।) मैंने कभी यह पूछने की धृष्टता नहीं की (आप आज भला हैं क्या?)

यह कहना कि सज़ा से हमेशा मानसिक या आत्मिक आघात नहीं पहुंचता, मुद्दे से बचना ही है, क्योंकि अरअसल हम यह जानते ही नहीं कि भविष्य में किसी व्यक्ति पर उसका क्या और कैसे असर होगा।

अगर सज़ा देना कभी भी सफल सिद्ध होता तो उसके पक्ष में कोई तर्क किया जा सकता थां यह सच है कि सज़ा का डर किसी को कुद करने से रोक सकता हैं अगर माता-पिता इस बात से संतुष्ट हैं, कि उनके बच्चे का मनोबल डर से पूरी तरह चकनाचूर हो जाए तो ऐसे माता-पिता के लिए सज़ा एक सफल हथियार है।

सज़ा पाने वाले कितने ही बच्चों का मनोबल जीवन भर के लिए टूट जाता है, और कितने आजीवन अपंग बन जाते हैं, कितने विद्रोह पर आमादा होते हैं और पहले से भी अधिक असामाजिक बन जाते हैं, यह कोई बता नहीं सकता।

स्कूलों में पढ़ाने के पचास साल के अनुभव के दौरान मैंने एक भी माता-पिता को यह कहते नहीं सुना कि (मैंने अपने बच्चे की अच्छे से पिटाई की और अब वह एक अच्छा लड़का बन चुका है।) उल्टे यह दर्जनों बार सुना है (मैंने उसे पीटा है, समझाया है, हर तरह से मदद करने की कोशिश की है, परंतु वो तो बद से बदतर बनता चला जा रहा है।)

दंडित बच्चा सज़ा से बदतर ही बनता है। और तो और, बड़े होकर वे सज़ा देने वाले पिता या मां भी बनते हैं और यही चक्र आगे - पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

मैं अक्सर एक सवाल अपने आपसे पूछता हूं। (ऐसा क्यों है कि दयालू और स्नेही माता-पिता, अपने बच्चों के लिए कठोर स्कूल

सहन कर लेते हैं?) ऐसे माता-पिता का सरोकार रहता है बच्चों की अच्छी शिक्षा-दीक्षा से। वे यह नहीं देखते हैं कि सज़ा देने वाला शिक्षक किसी विषय में रुचि को बांध सकता है। पर यह रुचि बोर्ड पर लिखे सवालों में नहीं होती, वह सज़ा में या सज़ा से बचने में होती है। हमारे स्कूलों और कॉलेजों में सर्वश्रेष्ठ छात्र आगे चलकर औसत व्यक्ति बन जाते हैं। अधिकांश छात्र-छात्राओं में अच्छी पढ़ाई करने की रुचि, उनके माता-पिता के धकियाने से जगी थी। विषय में कोई वास्तविक रुचि उनकी थी ही नहीं।

शिक्षक और सज़ा का भय, जो इन स्कूलों से बच्चों को मिलता है, दरअसल माता-पिता और बच्चे के रिश्ते को भी प्रभावित करता है। क्योंकि बच्चे के लिए प्रत्येक वयस्क, माता-पिता का प्रतीक ही होता है। और जितनी बार शिक्षक उसे सज़ा देता है, बालक के मन में उस प्रतीक के पीछे छुपे वयस्क यानि उसके मां या पिता के लिए घृणा जगती है। यह विचार परेशान करने वाला है। मैंने तेरह साल के बच्चे को यह कहते सुना (मेरे पिछले स्कूल के प्रिंसिपल साब मेरी बेंत से पिटाई करते थे, मुझे समझ नहीं आता कि मेरे मां-बाप मुझे उस स्कूल में क्यों भेजा करते थे। उन्हें पता था कि माटसाब क्रूर-जंगली किस्म का इंसान है, पर वे इस बारे में कुछ भी नहीं करते थें)

जब सज़ा भाषण का रूप लेती है तो वह और खतरनाक हो जाती है। भाषण कितने भयावह हो सकते हैं (क्या तुम्हें पता था कि जो तुम कर रहे हो वह भारी भूल थी?) बच्चा सुबकते हुए हां में सिर हिलाता है। (जो तुमने किया उसके लिए माफी मांगो।)

कपट और ढोंग का प्रशिक्षण देने में इस भाषण विधा की कोई सानी नहीं है। इससे भी घटिया बात है बच्चे की उपस्थिति में उसकी भटकी हुई आत्मा के लिए प्रार्थना करना। यह बिल्कुल अक्षम्य अपराध है क्योंकि यि बच्चे में गहरा अपराधबोध जगाता है।

एक दूसरे तरह की सज़ा होती है जो शारीरिक नहीं होती पर बच्चे के विकास में उतनी ही बड़ी बाधा पैदा करती है। लगातार किसी न किसी बात पर पीछे पड़े रहना। मैंने किसी दस वर्षीय बेटी के दिनभर पीछे पड़ी मां को कहते सुना है : (बाहर धूप में मत जाना,...।) (रेलिंग से दूर रहना,.˙) (आज तैरने नहीं जा सकतीं तुम, जुकाम हो जाएगा।) यह पीछे पड़ना मां के प्यार की निशानी नहीं है। यह तो उस भय की निशानी है, जो उसकी अचेतन घृणा को छुपाती है।

काश वे सब, जो सज़ा की पैरवी करते हैं, वह फ्रेंच फिल्म देख पाते। वह फिल्म एक बदमाश की जिंदगी की कहानी है। वह जब एक छोटा सा बच्चा था तो किसी शैतानी के लिए उसे सज़ा दी जाती हैं सज़ा के बतौर उसे रात को खाना नहीं मिलता। रात को खाने में कुंभी पकी थी जो विषैली थी। परिवार के शेष सदस्य विषैली कुंभी से मारे जाते हैं। वह नन्हा बदमाश सबके ताबूत देखकर निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अच्छा बने रहने का कोई फायदा नहीं होता। यह एक ऐसी अनैतिक कहानी है जिसकी सीख सज़ा देने वरले माता-पिता समझ ही नहीं पाते।

पखाना और पखानों के इस्तेमाल का

समरहिल आने वाले कई लोग इस विचित्र अहसास के साथ लौटते हैं कि हम पखानों की बातचीत कुछ ज्यादा ही करते हैं। मुझे लगता है कि यह बिल्कुल ज़रूरी है। मैंने पाया है कि हरेक बच्चा टट्टी में बेहद रुचि लेता है। अपनी टट्टी-पेशाब में बच्चों की रुचि के बारे में इतना कुछ लिखा गया है कि मैंने सोचा था कि अपनी नन्हीं बेटी के अवलोकन से मैं इस बारे में बहुत कुछ सीख सकूंगा। परंतु उसने न तो इसमें कोई रुचि दर्शाई न कोई घृणा ही। पर जब वह तीन साल की हुई तो उससे साल भर बड़ी लड़की ने उसे टट्टी का एक खेल सिखाया जिसमें फुसफुसाहट शर्म और अपराधबोध से जन्मी ठिठियाहट थी। यह खेल बड़ा थकाऊ था, पर हम इस बारे में कर भी क्या सकते थे। हमें पता था कि इसमें हस्ताक्षेप करने का अर्थ होगा उसके विकास में बाधा पहुंचाना। सौभाग्य से जोए कुछ समय में दूसरी बच्ची की एकल गतिविधि से ऊब गई और यह खेल खुद-ब-खुद बंद हो गया।

वयस्कों को अक्सर यह पता नहीं होगा कि बच्चा टट्टी या बदबू से चौंकता नहीं है। चौंकने वाले दृष्टिकोण ही बच्चों को सचेत करता है। मुझे याद है कि एक ग्यारह वर्षीय लड़की समरहिल आई थी। उसकी एकमात्र रुचि शौचालयों में थी। दरवाज़े के छेद से तांक-झांक करना उसे आनंद देता था। मैंने जल्दी से उसे भूगोल के बदले शौचालयों का विषय दे डाला। वह बहुत खुश हुई। दसेक दिन बाद जब मैंनें शौचालयों पर एक टिप्पणी की तो उसने ऊब की आवाज में कहा (मुझे कुछ नहीं सुनना, मैं तो शौचालयों की बात करते-करते तंग आ चुकी हूं।)

एक और छात्र था एक लड़का जिसका पढ़ाई-लिखाई में मन ही नहीं लगता था, वह मल और उससे मिलती-जुलती चीजों की बात में उलझा रहता था। मैं जानता था कि जब तक उसकी यह रुचि पूरी तरह चुक नहीं जाएगी वह गणित सीख नहीं सकेगा, और हुआ भी यही।

शिक्षक का काम दरअसल बड़ा सरल है। उसे बस इतना भर पता करना है कि बच्चे की रुचि कहां है और तब उस रुचि को भरपूर जी लेने का मौका उसे देना है। यही हमेशा होता है। किसी रुचि को दबाना उसे चुप कर देने से रुचि मरती नहीं सिर्फ सतह के नीचे दब जाती है।

श्रीमती नैतिकता का सवाल होगा,(आपके इस तरीके से बच्चों के दिमागमें गंदगी नहीं भर जाएगी?) (ना, ऐसा नहीं होगा। बल्कि आपका तरीका ऐसा है जो बच्चों की रुचि को स्थाई रूप से उस चीज में रुचि लेने पर मज़बूर करता है, जिसे आप गंदगी कह रही हैं। जब वह रुचि को भरपूर जी लेता है तब ही तो नई दिशा में आगे बढ़न को वह मुक्त हो पाता है।)

(क्या आप अपने स्कूल के बच्चों को दरअसल शौचालयों की बात करने को प्रोत्साहित करते हैं?)

(बेशक, अगर मुझे लगे कि उनकी शौचालयों में रुचि है तो जो बच्चे मनोरोगी होते हैं उन्हें भी इस स्थिति से उबरने में सप्ताह भर से अधिक लगता है।)

कुछ सालों पहले एक ऐसा ही मनोरोगी बच्चा हमारे पास आया। उसे छोटे से लड़के को इसलिए हमारे पास भेजा गया था क्योंकि वह दिन भर अपनी पैंट गंदी करता रहता था। उसकी मां ने उसकी आदत छुड़ाने की कोशिश में उसकी खूब धुनाई की थी और तब हताश होकर उसे अपना मल खाने पर बाध्य किया था। हमारी समस्याओं की आप कल्पना कर सकते होंगे। हमें पता चला कि उसका एक छोटा भाई भी था। उसके जन्म के बाद ही सारी परेशानियां शुरू हुईं थीं। कारण बड़ा ज़ाहिर सा था। लड़के ने सोचा : इस छोटे भाई ने मां का

प्यार चुरा लिया है। अगर मैं भी उस जैसा बन जाऊं और जैसे वह अपने पोतड़े गंदे करता है, अपनी पैंट गंदी करूं तो मां शायद मुझे फिर से प्यार करने लगे।

मैंने उसके लिए कुछ निजी-पाठ बनाए जिसमें उसे क्रमशः बताया कि इन हरकतों के पीछे उसकी असली मंशा क्या है। पर ऐसे मामलों में बदलाव अचानक या नाटकीय तरीके से नहीं आता। साल भर तक वह बच्चा दिन में तीन-तीन बार खुदको गंदा करता रहा। पर किसी ने उसे कड़ुवाहट से भरे शब्द नहीं कहे। श्रीमती कार्कहिल हमारी नर्स उसे बिना फटकारे साफ करती रहीं। जब वह भारी गंदगी मचाता तो मैंने उसे ईनाम देना शुरू किया, इस पर श्रीमती कार्कहिल ने प्रतिवाद किया। क्योंकि ईनाम का मतलब था उसके व्यवहार का अनुमोदन करना।

इस पूरे दौर में वह लड़का एक घिनौना शैतान बना रहा। और इसमें आश्चर्य भी क्या था। उसकी तमाम समस्याएं थीं, संघर्ष थे। पर अपने इलाज के बाद बह एक बिल्कुल साफ-सुथरा बच्चा बन गया और हमारे पास अगले तीन साल तक रहा। अंततः एक ऐसा बच्चा बना जिसे प्यार किया जा सकता था। उसकी मां उसे इस नाम पर समरहिल से निकाल कर एक नए स्कूल में ले गई कि वह वहां दरअसल कुछ सीखे। साल भर नए स्कूल में बिताने के बाद वह हमसे मिलने आया। बिल्कुल बदला हुआ था - पाखंडी, भयभीत और दुखी। उसने कहा कि वह अपनी मां को उसे समरहिल से हटाने पर कभी माफ नहीं कर सकेगा, कभी माफ करेगा भी नहीं। आश्चर्यजनक बात यह है कि इतने सालों में पैंट गंदे करने वाला यही एक उदाहरण हमारे पास आया था। संभव है कि ऐसे दृष्टांत मां द्वारा प्रेम न मिलने से उपजी घृणा का नतीजा हो।

यह संभव है कि हम किसी बच्चे को, शारीरिक क्रियाओं में स्थिर या दमित रुचि बिना भी, साफ रहना सिखा सकें। बिलौटियों या बछड़ों में अपने मल के प्रति कोई मनोग्रंथि नहीं होती। बच्चों में ये ग्रंथियां उसे सिखाने के तौर-तरीके से उपजती हैं। जब मां शैतान या गंदा केवल 'चच्च-चच्च' कहती है तब भी सही या गलत का भाव जागता है। तब यह नैतिकता का प्रश्न बन जाता है, एक भौतिक सवाल नहीं रहता।

पखाने में बाहरी रुचि रखने वाले किसी बच्चे से निपटने का तरीका ही है कि उससे यह कहा जाए कि वह गंदा काम कर रहा है। सही तरीका है कि उसे अपने मल/बिष्ठा में रुचि को भरपूर जी लेने के लिए मिटी देना। इससे वह अपनी रुचि का दमन करने के बदले उसे उभार सकेगा। वह उसे पूरा जिएगा और जीते हुए उसे खत्म कर सकेगा।

एक बार मैंने अखबार के लिए एक लेख लिखा जिसमें बच्चे के मिट्टी के आकार बनाने के अधिकार का उल्लेख किया। एक जाने-माने मॉन्तेसरी शिक्षाविद् ने प्रतिक्रिया में एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने लिखा कि उनका अनुभव बताता है कि जब बच्चे को कुछ बेहतर करने को दिया जाए तो वह मिट्टी के आकार नहीं बनाएगा। पर जब किसी बच्चे की रुचि मिट्टी के आकारों में स्थिर हो तो उससे भला क्या कहा जा सकता है? पर समस्यात्मक बच्चों को यह बताया जाना चाहिए कि वह दरअसल क्या कर रहा है। क्योंकि इसके बिना सालों-साल तक मिट्टी के आकार बनाने के बावजूद वह मल में अपनी मूल-रुचि से बाहर नहीं निकल सकेगा।

मुझे जिम की याद आती है। आठ साल का जिम मल को लेकर तमाम कल्पनाएं करता था। मैंने उसे मिट्टी के आकार बनाने को प्रोत्साहित किया। पर मैं उसे हमेशा यह भी बताया करता कि उसकी वास्तविक रुचि किसमें है। इस तरह उसके इलाज की प्रक्रिया त्वरित हो सकी। मैं उससे यह नहीं कहता था कि तुम यह इसलिए कर रहे हो क्योंकि यह उसका विकल्प है। मैं उससे केवल दोनों चीजों की समानता की बात करता था और यह प्रभावी रहा। पर इससे छोटी उम्र के बच्चे, यानि पांचेक साल के बच्चे को यह बताना ज़रूरी नहीं है कि वह मिट्टी के आकार बनाते-बनाते खुद-ब-खुद अपनी कल्पनाओं को जी लेगा और उनसे मुक्त हो सकेगा।

किसी बच्चे के लिए उसकी टट्टी अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय हैं इस रुचि को किसी भी तरह से दबाना खतरनाक और बेवकूफी भरा होगां दूसरी तरफ मल को खास अहमियत देने की ज़रूरत भी नहीं है, बशर्ते बच्चा - स्वयं अपने उत्पाद पर गर्व न करता हो। ऐसे में उसकी प्रशंसा करने में कोई हर्ज नहीं। अगर बच्चा गलती से गंदगी कर दे तो उसे बिल्कुल सामान्य रूप से लेना चाहिए।

मल त्याग केवल बच्चे के लिए ही नहीं बल्कि कई वयस्कों के लिए भी एक रचनात्मक काम है। कई वयस्क इस बात पर खुश होते हैं कि उनका पेट अच्छी तरह से साफ हुआ है। प्रतीकात्मक रूप से यह बड़ी मूल्यवान बात है। जो चोर, चोरी करने के बाद कालीन पर पाखाना कर जाता है, वह चोट पहुंचाने के बाद अपमान नहीं कर रहा होता। वह अपने अपराधबोध के चलते चुराई हुई चीज के बदले कोई कीमती चीज छोड़ने की कोशिश करता है।

पशु प्राकृतिक क्रियाओं के प्रति सचेत नहीं होते। कुत्ते और बिल्लियां स्वाभिक रूप से अपने मल को त्यागने के बाद खुद ही उसे ढक देते हैं। शायद वह उस वक्त की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है जब भोजन को साफ रखने के लिए यह ज़रूरी रहा होगा। मनुष्यों में अपने मल को लेकर जो नैतिकता का दृष्टिकोण है वह शायद उसके अप्राकृतिक आहार से जन्मा है। घोड़ों की लीद, भेड़ों और खरगोशों की मींगणी बिल्कुल साफ होती है, उससे घिन नहीं आती है। मर मनुष्यों का मल घिनौना होता है क्योंकि वह कृत्रिम चीजों को अपने आहार में शामिल करता है। मुझे कई बार लगा है कि अगर मनुष्यों का मल छूना उतना ही आसान होता जितना पशुओं के मल को छूना, तो शायद बच्चों को भावनात्मक मुक्ति के साथ बड़े होने का बेहतर मौका मिलता।

वयस्कों को मानव मल से जो घिन आती है वह बच्चों के मानस में नकारात्मक, घृणा पैदा करने वाली भावना पनपाती है। क्योंकि प्रकृति ने मल त्याग और जननांगों को पास-पास बनाया है, बच्चा इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि दोनों ही गंदे हैं। अगर माता-पिता मल के प्रति घृणा जताएंगे तो बच्चा यौन के प्रति भी वैसा ही दृष्टिकोण अपनाएगा। अतः यौन और मल के प्रति घृणा एक ही दमित भावना का हिस्सा है।

जब कोई मां अपने बच्चे के पोतड़े धोती है तो उसके मन में घिन नहीं जगती। पर तीन साल बाद अगर वही बच्चा कालीन पर निबट आए तो उसे साफ करने में वह काफी झुंझलाती है। सभी माताओं को मल की स्थितियों से सावधानी से निपटना चाहिए। उन्हें याद रखना

चाहिए कि किसी तरह का भावनात्मक गुस्सा बच्चे पर न छलके। क्योंकि वो अंदर पैठता है और वहीं बस जाता है और उसके व्यक्तित्व पर दर्ज हो जाता है।

भोजन

सत्तावाद शिशुकक्ष में प्रारंभ हुआ था और अब भी वहीं प्रारंभ होता है। बच्चे की स्वाभाविकता में पहला हस्तक्षेप तानाशाही ही है। और यह हस्तक्षेप हमेशा खान-पान को लेकर होता है। यह उस वक्त शुरू होता है जब हम बच्चे को एक समय सारिणी के अनुसार भूखे रहने या खाने पर बाध्य करते हैं।

इसकी सतही स्पष्टीकरण तो यह दिया जाता है कि समयबद्ध तरीके से खिलाना-पिलाना वयस्कों के दैनिक कामों की सहूलियत के लिए ज़रूरी है। पर कहीं गहरे दबा है इसका सच्चा उद्देश्य। वह यह कि नवजात जीवन के प्रति, उसकी स्वाभाविक आवश्यकताओं के प्रति हमारे मन में एक नफ़रत सी बसी है। यह बात उस वक्त नज़र आती है जब कुछ परिवार किसी भूखे बच्चे को रोना निहायत उदासीनता के साथ बड़े आराम के सुनते जाते हैं।

स्वनिर्देशन की शुरुआत जन्म से, पहले स्तनपान से ही होती जाती है। हरेक शिशु का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि जब वह भूखा हो उसे दूध मिले। अगर बच्चा घर पर होता है तो मां को बच्चे की इच्छानुसार खिलाने-पिलाने में आसानी होती है पर अधिकांश अस्पतालों में मातृ-वॉर्डों में प्रसव के बाद ही बच्चे को मां से अलग कर शिशु-वॉर्ड में ले जाया जाता है। पहले चौबीस घंटों में मां, उसे न तो स्तनपान करा सकती है, न ही बोतल से दूध दे सकती है। इसका बच्चे पर क्या स्थाई असर पड़ता है, यह कौन जानता है?

आजकल कुछ अस्पतालों में शिशु को, मां की देखरेख में छोड़ा जाता है। इस विषय पर पहले से बात किए बिना अगर कोई अस्पताल में दाखिल हो तो इसका मतलब है उनकी व्यवस्था को जस का तस स्वीकारना। अगर कोई मां बच्चे के लिए आत्म संचालन का उपयोग करना चाहती है, तो उसे ऐसे अस्पताल में जाना चाहिए जहां बच्चा उसके पास रह सके। यानि जहां शिशु स्वनिर्देशन की उपेक्षा न हो। अन्यथा यही बेहतर है कि बच्चे पर ऐसी क्रूरता करने के बदले बच्चा घर पर ही हो।

समय-सारिणी के अनुसार बच्चे को खिलाने-पिलाने की इतनी आलोचना हुई है कि कई चिकित्सकों और नर्सों ने यह सुझाव देना बंद कर दिया है। ज़ाहिर है कियह गलत है और खतरनाक भी। अगर कोई बच्चा चार बजे भूख से कुलबुलाते हुए रोने लगता है, पर उसे उस वक्त तक दूध नहीं पिलाया जाता है, जब तक समय नहीं हो जाता निहायत बेवकूफी का काम है। यह क्रूरता है, जीवन विरोधी अनुशासन है। शिशु को उस वक्त दूध देना चाहिए जब वह चाहे। शुरू-शुरू में वह जल्दी-जल्दी आहार चाहेगा, क्योंकि वह एक बार में भरपेट दूध नहीं पी सकता।

रात के समय बच्चे को बोतल से पानी पिलाना गलत है। रात को अगर उसे भूख लगे तो उसे मां का दूध ही पिलाया जाना चाहिए। दो-तीन महीनों में शिशु खुद-ब-खुद अपना संचालन करना सीख लेगा। धीरे-धीरे वह एक बार में अधिक आहार ले सकेगा, और दूध पीने का अंतराल भी बढ़ता जाएगा। तीन-चार माह का होते-होते बच्चा रात को दस-ग्यारह बजे और सुबह पांच-छह बजे आहार की मांग करेगा। पर इस बारे में कोई पक्का नियम नहीं होता।

हरेक शिशुकक्ष में एक मूलभूत नियम तो लिखकर टांग देना चाहिए वह यह : कि बच्चे को रोते-रोते थक जाने की स्थिति में कभी नहीं आने देना चाहिए। उसकी ज़रूरतों पर हर बार ध्यान दिया जाना चाहिए।

जब बच्चों को समय-सारिणी के हिसाब से प्रशिक्षित किया जाता है तो मां हमेशा उससे कुछ कदम आगे रहती है। एक कुशल विशेषज्ञ की तरह उसे पता रहता है कि आगे क्या और कैसे करना है। परंतु इस प्रकार वह एक यांत्रिक शिशु को पाल रही होगी। ज़ाहिर है कि ऐसा बच्चा वयस्कों के लिए न्यूनतम परेशानी खड़ी करेगा। पर इसकी कीमत होगी उसका स्वभाविक विकास। पर स्वनिर्देशित शिशु का मतलब होगा हर दिन, हर पल, मां कुछ नया जानेगी, खोज पाएगी। क्योंकि तब मां हमेशा शिशु से एक कदम पीछे होगी, उसे पास से देखते हुए हमेशा सीखती रहेगी। ऐसे में ठीक से दूध पीने के आधे घंटे बाद ही अगर बच्चा रोने लगे तो उसे खुद सोचना होगा कि उसे क्या तकलीफ हो सकती है। समय-सारिणी बनाने वाले यांत्रिक जो कहते हैं उसे भूल जाना होगा। क्या बच्चा आराम से नहीं है? क्या उसके पेट में गैस बनी हे? क्या वह और दूध चाहता है? या कि वह अकेलापन महसूस कर रहा है और सिर्फ आपका स्पर्श और ध्यान चाहता है? मां को हमेशा अपने स्वत: जगने वाले प्रेम के आधार पर प्रतिक्रिया करनी चाहिए, किसी किताब में लिखे, बेवकूफी भरे नियम के आधार पर नहीं।

अगर शिशुओं को उनकी तरह जीने दिया जाए तो प्रत्येक शिशु अपनी खुद की समय-सारिणी बना लेगा। अर्थात उसमें स्वनिर्देशन की क्षमता है, केवल दूध पीने के बारे में ही नहीं, बल्कि आगे चलकर दूसरे ठोस आहारों के बारे में भी।

कुछ बड़े होने के बाद और कभी-कभी किशोरावस्था तक भी बच्चे अंगूठा चूसते रहते हैं। यह समय-सारिणी के हिसाब से दूध पिलाने का साफ-साफ दिखाई देने वाला नतीजा है। अंगूठा चूसने के दो पक्ष हैं - खाने की भूख और चूसने में आने वाला आनंद। जब भूख लगती है तो मौखिक आनंद भी आता है, जो भूख शांत होन के पहले ही शांत हो जाता है। पर अगर बच्चे को इसलिए रोना पड़े क्योंकि घड़ी के हिसाब से उसे भूखा नहीं होना चाहिए तो ये दोनों ही पक्ष अवरुद्ध हो जाते हैं।

मैंने अस्पतालों में मातृ-वार्डों में माताओं को, चिकित्सक के निर्देश पर बच्चे से जबरन स्तन छुड़ाते देखा है, क्योंकि घड़ी के हिसाब से उनका दूध पीने का समय पूरा हो चुका होता है। मुझे लगता है कि एक समस्याग्रस्त बच्चा तैयार करने का यह सबसे बढ़िया तरीका है।

नासमझ चिकित्सक और माता-पिता शिशु की स्वाभिवक इच्छाओं और व्यवहार में आश्चर्यजनक रूप से दखल देते हैं। शिशु को ढालने और गढ़ने में के बेवकूफी भरे विचारों के चलते, वे उसकी खुशी और स्वभाविकता ही नष्ट कर डालते हैं। ऐसे लोग मानव के सार्वजनीन शारीरिक व मानसिक रोगों को जन्म देते हैं। बाद में स्कूल व गिरजे अपनी अनुशासित शिक्षा पद्धति के द्वारा उस प्रक्रिया को

जारी रखते हैं जो आनंद विरोधी और स्वतंत्रता विरोधी हैं।

एक मां ने अपने स्वनिर्देशित बच्चे के बारे में लिखा कि : जब वह ठोस आहार लेने लगा तो उसे अपना खाना और उसकी मात्रा चुनने की छूट दी गई। अगर वह कोई सब्जी नापसंद करता तो उसे दूसरी तरह की सब्जी दी जाती, चाहता तो उसे कुछ मीठा दिया जाता। कई बार वह मीठा खाने के बाद वही सब्जी भी खा लेता जिसके लिए उसने पहले मना किया था। कभी ऐसा भी होता कि वह कुछ भी नहीं खाना चाहता। ज़ाहिर था कि उसे उस वक्त भूख नहीं है। तब वह अगले खाने के समय भरपेट खाता।

अक्सर मां यह सोचती है कि वह बच्चे की ज़रूरत को बच्चे से भी ज्यादा अच्छी तरह समझती है। पर यह सच नहीं है। बच्चों के खान-पान के बारे में तो इसे आसानी से जांचा जा सकता है। कोई भी मां अगर मेज़ पर ऑइसक्रीम, मीठी गोलियां, रोटी, टमाटर, सलाद और दूसरी चीजें रखें और तब बच्चे को चुनने की छूट दें। एक औसत बच्चा जिसे हस्तक्षेप का सामना नहीं करना पड़ा है, हमेशा संतुलित आहार ही चुनेगा। मैंने सुना है कि अमरीका में हुए नियंत्रित प्रयोगों में भी यही परिणाम निकला है।

हम समरहिल में छोटे से छोटे बच्चे को हर दिन बने खाने में से अपनी पसंद का खाना चुनने देते हैं। रात के खाने में भी तीन तरह की चीजों में से चुनने की छूट होती है। फलस्वरूप समरहिल में अधिकांश स्कूलों की तुलना में कम खाना बरबाद होता है। पर यह हमारा 'उद्देश्य' नहीं हैं हम खाना बचाने के बदले बच्चे को ही बचाना चाहते हैं।

जब बच्चे संतुलित आहार लेते हैं तो जेबखर्च के पैसों से खरीदी मीठी गोलियां भी नुकसान नहीं करतीं। ये गोलियां इसलिए पसंद आती हैं क्योंकि शरीर को उनकी चीनी की ज़रूरत होती है। और वह उन्हें मिलनी ही चाहिए।

बच्चे को मांस और अंडा खाने पर बाध्य करना, खासकर जब उसे वह नापसंद हो तो, सरासर ज्यादती हैं जोए को खुद अपनी पसंद से खाना चुनने की अनुमति दी गई थी। उसे जब भी जुकाम होता तो सिर्फ फल खाती और फलों का रस पीती, बिना किसी सुझाव के। जोए से पहले मैंने ऐसा कोई नन्हा नहीं देखा था जो खाने-पीने के प्रति इतना उदासीन हो। चॉकलेट की थैली उसकी मेज़ पर दिनों-दिन पड़ी रहती और वह उसे हाथ तक न लगाती। दोपहर या रात के खाने में बनी स्वादिष्ट से स्वादिष्ट चीज तक में उसकी रुचि नहीं जगती। वह नाश्ता करने बैठती, पर अगर कोई बच्चा उसे खेलने को बुलाता तो झट भाग लेती। पर उसका शरीर हमेशा हटा-कटा रहा, हमें कभी चिंता नहीं हुई।

आहार के बारे में मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूं। पर मेरा मत है कि इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि बच्चा मांस खाता है या नहीं। उसका भोजन संतुलित हो तो उसका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। समरहिल में बच्चों को दस्त लगते या कब्ज होते मैंने बिरले ही देखा-सुना है। हम हमेशा कच्ची हरी सब्जियां रखते हैं कई बार नए बच्चे उन्हें खाने से मना कर देते हैं। पर धीरे-धीरे कुछ समय बाद वे उसे पसंद करने लगते हैं। समरहिल में बच्चे खाने को लेकर बहुत चिंता नहीं करते। होना ही यही चाहिए।

बचपन में खाना बच्चों को बेहद आनंद देता है इसलिए उस आनंद को खाने के शिष्टाचार से बांधकर नष्ट नहीं करना चाहिए। दुखद सच्चाई यह है कि समरहिल में वे बच्चे ही सबसे खराब तरह से खाते हैं जिनके घरों में शिष्टाचार पर बड़ा जोर होता है। जिनके घरों में खाने को लेकर जितना कायदा-कानून होता है, आज़ादी मिलने पर वे बच्चे ही सबसे खराब तरह से खाते हैं इस बारे में कुछ किया नहीं जा सकता। उसे अपनी दबी कुंठाओं को निकालने का मौका देना होता है ताकि किशोरावस्था में वह फिर से सहज हो सके।

स्वास्थ्य व नींद

समरहिल के अड़तीस वर्षों में हमारे बच्चों को बीमारियां बहुत कम हुई हैं। इसका मुझे जो कारण लगता है वह है कि हम जीवन प्रक्रियाओं के पक्ष में हैं, शरीर के प्रति हमारा नज़रिया सकारात्मक है। हम खानपान से अधिक महत्व बच्चों की खुशी को देते हैं। समरहिल आनेवाले मेहमान अमूमन यह टिप्पणी करते हैं कि हमारे बच्चे कितने स्वस्थ लगते हैं। मुझे लगता है कि आनंद ही हमारी लड़कियों को सुंदर और लड़कों को आकर्षक बनाता है।

संभव है कि हरी पत्तियां व सलाद आदि गुर्दे की बीमारियां ठीक करते हों। पर दमन से जन्मा आत्मिक रोग दुनिया भर के हरे पत्तों से ठीक नहीं किया जा सकता है। संतुलित आहार लेने वाला कोई व्यक्ति नैतिकता का उपदेश दे अपने बच्चों का जीना हराम कर सकता है, पर जो व्यक्ति मनोरोगी न हो वह अपने बच्चों का अहित नहीं कर सकता। मेरा अनुभव बताता है कि मानसिक रूप से आहत बच्चों की तुलना में आज़ाद बच्चे शारीरिक रूप से अधिक स्वस्थ होते हैं।

एक बात और देखी है मैंने। समरहिल के कई लड़के छह फुटे होते हैं तब भी जब उनके माता-पिता तुलनात्मक रूप से नाटे हों। संभव है कि यह महज संयोग ही हो। पर यह भी संभव है कि मुक्ति और स्नेह का वातावरण उन्हें हर तरह से बढ़ने देता हो। इंचों में भी।

एक और प्रश्न है नींद कां मुझे पता नहीं कि चिकित्सकों का यह कहना कहां तक सच है कि एक बच्चे के लिए कम-से-कम इतने घंटे सोना ज़रूरी है। जब बच्चे बिल्कुल छोटे हों तो यह बात सच होती है। एक सात साल के बच्चे को देर रात तक जगने देने का उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि वह सुबह देर तक सो नहीं पाता। कुछ बच्चे सोने जाना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें लगता है इससे वे तमाम मज़ेदार चीजों से वंचित रह जाएंगे।

मुक्तशाला में सोने का समय बड़ा सरदर्द है। छोटे बच्चों के मामले में शायद उतना नहीं जितना बड़े बच्चों के मामले में। यौवन रातजगा पसंद करता है। मुझे इससे हमदर्दी है क्योंकि मैं खुद भी जल्दी सोना पसंद नहीं करता।

अधिकांश वयस्कों के लिए यह सवाल काम के कारण अपने आप हल हो जाता है। अगर सुबह आठ बजे आपको दफ्तर में हाज़िर होना है तो देर रात तक जगने के लोभ पर काबू पाना ही पड़ता है।

कुछ दूसरे घटक जैसे खुशी, अच्छा खाना, आदि नींद की कमी की पूर्ति कर देते हैं। समरहिल में बच्चे इतवार की सुबह नींद की कमी

पूरी करते हैं। ज़रूरत पड़े तो दोपहरी का खाना तक छोड़ देते हैं।

जहां तक काम और स्वास्थ्य के रिश्ते का प्रश्न है, मैं अपने काम दोहरे मकसद से करता हूं। मैं यह जानते हुए भी आलू खोदता हूं कि अगर वही समय मैं एक लेख लिखने में लगाऊं और आलू किसी मजदूर से खुदवाऊं तो फायदे में रहूंगा। फिर भी मैं आलू खोदता हूं क्योंकि मैं स्वस्थ रहना चाहता हूं। और यह उद्देश्य मेरे लिए चंद रूपयों से ज्यादा कीमती है। मेरा एक दोस्त जो गाड़ियों का व्यापारी है, मुझे अव्वल दर्जे का अहमक समझता है। वह कहता है कि आज मशीनी युग में हाथ से खुदाई करने वाले गधे ही हो सकते हैं। मैं उसे कहता हूं कि मशीनें पूरे देश का स्वास्थ्य बरबाद कर रही हैं। उनकी वज़ह से आज न कोई पैदल चलता है, न खुदाई करता है। वह और मैं दोनों उम्र के उस पड़ाव पर पहुंच चुके हैं कि स्वास्थ्य की समस्याओं के बारे में सचेत हों।

पर एक बच्चा स्वास्थ्य के बारे में कोई पिक्र नहीं करता। कोई लड़का स्वस्थ रहने के लिए आलू नहीं खोदता। वह जो कुछ करता है उसके पीछे एक ही उद्देश्य होता है, उस वक्त उसकी रुचि। समरहिल के स्वस्थ्य रहने का राज है आज़ादी, बढ़िया भोजन और ताजी हवा ठीक इसी क्रम में।

स्वच्छता और कपड़े

व्यक्तिगत साफ-सफाई के मामले में लड़कों की तुलना में लड़कियां अधिक व्यवस्थित होती हैं। समरहिल में तकरीबन पंद्रह साल की उम्र के लड़के-लड़कियां अपने रंग-रूप और कपड़ों के प्रति सचेत होने लगते हैं। पर अपने कमरों की सफाई के प्रति लड़कियां भी उतनी ही उदासीन होती हैं, जितने लड़के। पर तकरीबन चौदह सालों तक वे अपनी गुड़ियों को सज़ाती हैं, नाटक की पोशाकें बनाती हैं, और फर्श पर सब कुछ बिखरा छोड़ती हैं। पर यह गंदगी रचनात्मक गंदगी है।

समरहिल में बिरले ही कोई ऐसी लड़की आई होगी जो नहाती न हो। हां एक नौ साल की बच्ची ज़रूर आई थी जिसकी दादी को सफाई की बीमारी थी। वे उसे दिन में दसियों बार नहलाती थीं। इसी मिल्ड्रेड की आवास मां एक दिन मेरे पास यह कहते हुए आई कि (सप्ताह भर से मिल्ड्रेड नहाई नहीं है। अब हाल यह है कि वो गंधाने लगी है। मैं क्या करूं?) मैंने कहा, (उसे मेरे पास भेज दीजिए।) कुछ देर में मिल्ड्रेड आई, उसका चेहरा और हाथ बहुत गंदे थे। मैंने सख्त आवाज में कहा,(देखो, यह सब नहीं चलेगा।) उसने प्रतिवाद किया (पर मैं मुंह-हाथ धोना नहीं चाहती।) (चुप) मैंने कहा (नहाने-धोने की बात कौन कर रहा है? आइने में अपनी शक्ल तो देखो।) उसने चेहरा देखा (अपनी शक्ल-सूरत के बारे में क्या सोचती हो?)

(बहुत साफ तो शायद नहीं है) उसने खिली बांछों के साथ कहा।

(बहुत ही साफ है!) मैंने पलट कर कहा (इस स्कूल में मुझे लड़कियों की साफ शक्लें नहीं चाहिए। चलो दफा हो जाओ।)

वह सीधे कोयलाघर में गई और अपना चेहरा काला कर आई लौटकर शान से मेरे पास आई (अब चलेगां) उसने जानना चाहां

मैंने आवश्यक गंभीरता से उसका चेहरा निहारा तब कहा, (ना, ये देखो, गाल पर यह सफेद धब्बा तो छूट ही गया।)

उस रात मिल्ड्रिड नहाई। पर मुझे समझ में नहीं आया कि उसने ऐसा क्यों किया।

मुझे एक सत्रह साल के लड़के का किस्सा याद आता है जो एक निजी स्कूल से आया था। आने के सप्ताह भर बाद ही उसने स्टेशन के उन मजदूरों से दोस्ती कर ली जो कोयला उठाने का काम करते थे। उसने उनकी मदद करनी शुरू की। जब वह खाना खाने भोजनकक्ष में पहुंचता तो उसके हाथ और चेहरे पर कालिख पुती होती। पर किसी ने उसे एक शब्द भी नहीं कहा। किसे परवाह थी।

निजी स्कूल और घर में साफ-सफाई के लादे गए विचारों की गिरफ्त से छूटने में उसे कई सप्ताह लग गए। जब कोयले उठाने-लादने की झक पूरी हुई तो फिर से उसका शरीर, उसके कपड़े साफ रहने लगे पर एक फर्क के साथ। अब सफाई उस पर थोपी हुई चीज नहीं थीं गंदगी संबंधी अपनी ग्रंथियां वह खोल चुका थां

वह बिली मिट्टी के टीले बनाता है ताक मां चौंकती है, आखिर बच्चे के गंदे कपड़े देख पड़ोसी क्या कहेंगे! इस स्थिति में जो सामाजिक प्रतिष्ठा दांव पर लगी होती है। समाज आखिर क्या सोचेगा? यानि सामाजिक दांव? व्यक्तिगत दांव भारी पड़ता है। यानि खेलने और बनाने के आनंद से कहीं ज़रूरी समाज की राय रहती है।

अक्सर मां-बाप साफ-सफाई पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देते हैं। सात भयंकर सद्गुणों में एक स्वच्छता माना जाता है। जो व्यक्ति अपनी साफ-सफाई पर बड़ा घमंड करता है, वह अक्सर दूसरे दर्जे का इंसान होता है, जो कभी किसी चीज में अव्वल न आ सका हो। जो सबसे साफ-सफाई पसंद होते हैं, अक्सर उनके दिमाग में बेहद उथल-पुथल होती है। मैं यह बात एक ऐसे इंसान की तटस्था के साथ कह रहा हूं जिसकी मेज़ हमेशा कागजों की बेतरतीब ढेर से पटी रहती है, किसी सार्वजनिक बाग में लगे (गंदगी करना मना है) के साईन बोर्ड के बावजूद।

हमारे परिवार में स्वनिर्देशन में सबसे बड़ी समस्या कपड़े लत्तों को लेकर आई। जोए का बस चलता और अगर उसे ऐसा करने दिया जाता तो वह दिन भर नंगी ही घूमती। एक दूसरी स्वनिर्देशित बच्ची के माता-पिता ने बताया कि जब ठंड पड़ने लगती तो उनकी बिटिया अपने आप घर लौट आती और गरम कपड़े मांगती। जोए के साथ हमारा यह अनुभव नहीं रहा। जोए उस समय तक ठिठुरती रहती, जबतक उसकी नाक और गाल नीले न पड़ जाते। और तब भी कपड़े पहनाने की हमारी कोशिशों का वह विरोध करती।

साहसी माता-पिता कह सकते हैं (कि उसका शरीर ही उसे निर्देशित करेगा। ठिठुरने दो, वह ठीक ही रहेगी।) पर हममें इतनी हिम्मत न थी कि हम निमोनिया का जोखिम उठा पाते। सो हम उसे ज़ोर-ज़बरदस्ती कपड़े पहनाते, जितने हमें ज़रूरी लगते।

छोटे बच्चे क्या पहनेंगे यह मां-बाप को तय करना चाहिए। जब वे किशोर बन जाएं तो उन्हें अपने कपड़े चुनने की छूट देनी चाहिए। लाखों लड़कियां इस बात से तकलीफ पाती हैं क्योंकि उनकी मां उनके कपड़े चुनने पर आमादा रहतीं हैं। लड़कों के कपड़ों को चुनना

अमूमन आसान होता है। जिन मां-बाप के लिए संभव है, उन्हें बच्चों को कपड़ो का खर्च दे देना चाहिए। अगर बच्चा वह पैसा सिनेमा देखने या गोली-चॉकलेट खाने पर खर्च करे, तो यह उसका मामला मानना चाहिए।

जो अक्षम्य अपराध है वह अपने बच्चों को ऐसे कपड़े पहनाना जिससे वह अपने दोस्तों से फर्क नज़र आएं। किसी लड़के को जो बेहद लंबा हो गया हो हाफपैंट पहनाना जबकि उसके साथी लंबी पैंटे पहनने लगे हों, बेहद क्रूरता का काम है।

बेटियों को अपने बालों को अपनी तरह से संवारने की छूट दी जानी चाहिए। वे बाल लंबे रखें या छोटे, या चोटियां गूंथें। अगर वे लिपस्टिक लगाना चाहें तो उसमें हर्ज क्या है? व्यक्तिगत स्तर पर मुझे उससे नफ़रत है पर मेरी बेटी लगाना चाहेगी तो मैं उसे मना नहीं करूंगा।

छोटे बच्चों की कपड़ों में कोई सजह रुचि नहीं होती। पर जिन बच्चों के माता-पिता कपड़ों के बारे में हमेशा फिक्रमंद रहते हैं उनेक बच्चे भी कुछ समय बाद ऐसी ग्रंथि के शिकार हो जाते हैं। वे पेड़ पर इस डर से नहीं चढ़ते कि कहीं पैंट फट न जाए।

सामान्य बच्चे अपने कपड़े इधर-उधर पटकते रहते हैं। स्वेटर उतारने के बाद भूल जाते हैं कि वह कहां धरा था। गर्मियों की शाम स्कूल परिसर में घूमते वक्त मुझे ढेरों जूते और जर्सियां बिखरे मिलते हैं।

जाक बच्चे छात्रावास में नहीं रहते, उन्हें पड़ोसियों की राय को लगातार झेलना पड़ता हैं जरा उन हजारों बच्चों की बात सोचिए जिन्हें (इतवारी कपड़ों) के नाम पर बलि चढ़ाया जाता हैं वे कलफदार कॉलरों और सफेद कपड़ों में जकड़े चलते दिखाई देते हैं और किसी गेंद को लतियाने या फाटक पर चढ़ने से डरते हैं। सौभाग्य से यह बेवकूफी अब धीरे-धीरे खत्म हो रही है।

समरहिल में गर्मियों में लड़के और शिक्षक खाते वक्त बिना कमीजों के देखे जा सकते हैं इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होतीं ऐसी छोटी-मोटी बातों को हम उनकी सही जगह पर रखते हैं। उनके प्रति उदासीन ही रहते हैं।

कपड़ों को लेकर माता-पिता रुपए-पैसों से जुड़ी ग्रंथि का प्रदर्शन करते हैं। हमारे यहां एक किशोर चोर आया था। चार साल की कड़ी मेहनत और शिक्षकों के अथाह धीरज के बाद वह सुधर सका। जब सत्रह साल की उम्र में वह घर लौटा तो उसकी मां ने एक खत लिखा। (बिल घर आ गया है। उसके दो जोड़ी मोजे गायब हैं कृपया उन्हें लौटाने की व्यवस्था करें।)

कई बार आवासगृह माता के प्रति भी, माता-पिता अपनी जलन दर्शाते हैं। कुछ माएं मिलने आने पर सीधे बच्चों के कपड़ों की अल्मारी की ओर जाती हैं, नाक-भौं सिकोड़ती हैं और 'चच्च चच्च' करती हैं। जताना चाहती हैं कि आवासगृह माता पूरी देखभाल नहीं करती। दरअसल वे बच्चे के प्रति बेहद चिंतित रहती हैं। क्योंकि कपड़ों को लेकर चिंता दरअसरल उसके सीखने, और हमारे दूसरे मसले के प्रति चिंता है।

खिलौने

अगर मुझमें बनिया बुद्धि होती तो मैं खिलौनों की दुकान खोलता। हरेक शिशुकक्ष ढ़ेरों टूटे-फूटे खिलौनों से भरा होता है। उनकी कोई भी देखभाल नहीं करता है। हरेक मध्यवर्गीय बच्चे के पास हद से ज्यादा खिलौने होते हैं।

सच्चाई यह है कि मंहगे खिलौने हमेशा बरबाद होते हैं। जोए को एक बार एक पुराने छात्र ने एक बहुत ही बढ़िया बोलने वाली गुड़िया लाकर दी। ज़ाहिर था कि गुड़िया बड़ी मंहगी थी। ठीक उसी दौरान एक नए छात्र ने उसे एक सस्ता सा खरगोश भी दिया। उस कीमती गुड़िया से जोए कुल आधा घंटा खेली होगी। पर उस खरगोश से हफ्तों तक खेलती रही। हर रात सोते समय वह खरगोश के साथ सोती रही।

जोए के तमाम खिलौंनों में एक ही के प्रति उसका प्यार लंबे समय तक बना रहा। यह खिलौना था एक गुड़िया जो पेशाब करती थी। गुड़िया मैंने उसे तब दी थी जब वह डेढ़ साल की थी। गुड़िया गीली कैसे होती थी इसमें उसकी कोई रुचि नहीं थी। जब वह चार साल की हुई तब उसने कहा (मुझे गुड़िया अब अच्छी नहीं लगती मैं किसी को यह दे देना चाहती हूं।)

कुछ साल पहले बड़े बच्चों से मैंने एक सवाल पूछा था। (तुम्हें अपने छोटे भाई या बहन पर सबसे ज्यादा गुस्सा कब आता है?) प्राय: हरेक बच्चे का जवाब समान था (जब वह मेरे खिलौने तोड़ता/तोड़ती है।)

कोई खिलौना कैसे चलता है या काम करता है, वह बच्चों को कभी नहीं बताना चाहिए। बल्कि उसकी तब तक मदद नहीं करनी चाहिए जबतक वह उसके राज को खुद सुलझा ही न सके।

स्वनिर्देशित बच्चे घंटों अपने खेल-खिलौनों में उलझे रह पाते हैं। वे उन्हें तोड़ते-फोड़ते भी नहीं, जैसे अक्सर वयस्कों द्वारा निर्देशित बच्चे करते हैं।

कोई कारण नहीं है कि किसी निजी घर में, या जिस कमरे से आवाज बाहर न निकलती हो, बच्चों को रसोई के शोर करने वाले बर्तनों से खेलने से रोका जाए। ढक्कन, चम्मच बजाने या ढोल पीटने में मजा आता है। संभव है कि दुकानों में बिकने वाले खिलौनों की बजाए बच्चे को उनमें ही अधिक मजा आए। अक्सर बाजारू खिलौने बच्चे को उबाते हैं।

मां-बाप आदतन बच्चे के लिए ज़रूरत से ज्यादा खिलौने खरीदते हैं। बच्चों ने किसी ट्रैक्टर या जिराफ की ओर हाथ बढ़ाया और गर्दन हिलाई कि तुरंत, उसी दम, वे उसे खरीद लेंगें यही कारण है कि अधिकांश बच्चों के कमरे में ऐसे ढेरों खिलौनों का अंबार होता है जिनमें उसकी वास्तविक रुचि होती तक नहीं

बाजार में आज रचनात्मक खिलौनों की भारी कमी हैं धातु या लकड़ी के ऐसे कई खिलौने हैं जिनसे कुछ बनाया जा सकता है, पर ये रचनात्मक खिलौने नहीं हैं निर्माण करने वाले खिलौने, शब्द या गणित की पहेलियों की तरह होते हैं। क्योंकि उन्हें किसी दूसरे ने बनाया होता है, इसलिए उनके समाधान पूरी तरह मौलिक हो ही नहीं सकते। मुझे स्वीकारना पड़ रहा है कि मैं कोई मौलिक खिलौना ईजाद नहीं

कर पाया हूं। न ही इस दिशा में मेरे पास कोई सुझाव ही हैं। खिलौनों की दुनिया एक ऐसे जादूगर की तलाश में हैं जो आज के खिलौना निर्माताओं के बजाए बच्चों के दिलों के करीब पहुंच सके।

शोर

बच्चे स्वभाव से शोरगुल मचाने वाले होते हैं, माता-पिता को यह तथ्य स्वीकारना और उसके साथ जीना होगा। अगर बच्चे का सही व स्वस्थ विकास होना है, तो उसे काफी शोरगुल भरे खेल की छूट देनी होगी।

मैं चालीस सालों से बच्चों के शोर के साथ जी रहा हूं। अमूमन मैं कोशिश करता हूं कि मैं वे आवाजें न सुनूं। बच्चों के शोरगुल की तुलना एक पीतल की फैक्ट्री से की जा सकती है। वहां लोगों को हथौड़ों की ठोक-पीट की आदत पड़ जाती है। इसी तरह जिनके घर व्यस्त सड़कों पर स्थित होते हैं वे गाड़ियों के शोर के आदी हो जाते हैं फर्क इतना भर है कि हथौड़ों की ठोक-पीट और गाड़ियों के शोर में एक तरह की निरंतरता होती है। पर बच्चों का शोर विविध और कर्णकटु होता है। उस शोर से सिर भन्नाने लगता है। कुछ साल पहले जब मैं मुख्य भवन से निकल कर पास के कॉटेज में रहने लगा तो पचासेक बच्चों के शोर के बाद मुझे अपनी शामें शांत और सुखदाई लगने लगीं।

समरहिल का भोजनकक्ष बेहद चिल्ल-पौं वाली जगह है। जानवरों की तरह बच्चे भी खाने के समय बड़ा शोर करते हैं। हम केवल उन मेहमानों के साथ खाने को आमंत्रित करते हैं जिन्हें हंगामा परेशान नहीं करता। मैं और मेरी पत्नी अलग खाते हैं, पर हर दिन दो घंटे बच्चों को भोजन परोसने के बाद शिक्षकों को बहुत शोर पसंद नहीं आता। पर किशोर बच्चे छोटे बच्चों के शोरगुल को आसानी से झेलते हैं जब बड़े बच्चे भोजनकक्ष में छोटे बच्चों के शोर का सवाल उठाते हैं तो छोटे बच्चे इसके विराध में दूसरी सच्चाई सामने रखते हुए कहते हैं कि बड़े बच्चे भी उतना ही शोर करते हैं

शोरगुल को दबाना या नियंत्रित करना बच्चों पर उतना भारी दमनकारी असर नहीं डालता जितना शारीरिक क्रियाओं में रुचि को दबाने का होता हैं क्योंकि शोर कभी 'गंदा' नहीं कहा जातां जब पिता नाराज है और चीखता है (बंद करो यह शोर!) तो यह उसके अधैर्य की ईमानदार अभिव्यक्ति होती हैं पर जब मां-बाप (हे राम! छि: गंदा!) कहते हैं तो उसमें नैतिक विस्मय की ध्वनि होती है।

समरहिल में कुछ बच्चे पूरे दिन सिर्फ खेलते हैं, खासकर जब सूरज मेहरबान होता है। उनका खेल अमूमन शोरगुल भरा होता है अधिकांश स्कूलों में खेल की तरह शोर का भी दमन किया जाता है। हमारा एक पुराना छात्र पढ़ाई के बाद स्कॉटिश विश्वविद्यालय गया। उसने हमें लिखा कि (छात्र कक्षाओं में बेहद शोर करते हैं। यह बात बड़ी थकाती है क्योंकि हम समरहिल में दस साल की उम्र में ही इस चरण को पार कर चुके थे।)

मुझे 'द हाउस विद द ग्रीन शटर' नामक उपन्यास की एक घटना याद आती है। उसमें एक कमजोर शिक्षक को चिढ़ाने और परेशान करने के लिए एडिनबर्ग विश्वविद्यालय के छात्र अपने पैरों से आवाज निकाला करते थे। शोर और खेल साथ चलते हैं।

शिष्ट आचरण

अच्छे आचरण का मतलब है दूसरों के बारे में सोचना, उनके बारे में महसूस करनां व्यक्ति को समूह के प्रति सचेत होना चाहिए। खुद को दूसरे की स्थिति में रख पाने की क्षमता होनी चाहिए। शिष्ट आचरण दूसरे को तकलीफ पहुंचाने की छूट नहीं देता। भद्र होने का मतलब है सचमें सुरुचिपूर्ण होना। ऐसा भद्र आचरण सिखाया नहीं जा सकता, वह तो अचेतन मानस का हिस्सा होता है।

इसके विपरीत शिष्टाचार सिखाया जा सकता है, क्योंकि वह चेतन मानस का हिस्सा होता है। शिष्टाचार भद्र आचरण का मुलम्मा भर है। शिष्टाचार हमें संगीत सभा के दौरान फुसफुसाने की, दूसरों पर टीका-टिप्पणी करने और उनकी निंदा करने की अनुमति देता है। शिष्टाचार हमें खाने के पहले कपड़े बदलने, किसी महिला के अंदर आने पर कुर्सी छोड़ने, मेज़ से उठने पर 'माफ कीजिए' कहने पर बाध्य करता है। पर यह सब बाहरी दिखावा है।

अभद्र आचरण हमेशा मन की गड़बड़ी से उपजता है। झूठ बोलना, बुराई करना, दूसरों पर टीका-टिप्पणी करना, किसी के पीठ पीछे बकवास करना, ये सब व्यक्तिगत कमजोरियां हैं। ये कमजोरियां यह बताती हैं कि वह व्यक्ति खुद से नफ़रत करता है। इनसे यही सिद्ध होता है कि झूठी बुराई करने वाली स्वंय दुखी है। अगर हम बच्चों को ऐसी दुनिया में ले जाएं जहां वे खुश रह सकें तो घृणा करने की इच्छा भी मर जाएगी। दूसरे शब्दों में ये बच्चे सच्चे और एक गहरे अर्थ में भद्र आचरण करने वरले होंगे। यानि उनमें सचमें स्नेह भरी करुणा होगी।

कुछ बच्चे कांटे-छुरी से मटर खाने में महारत हासिल कर पाते हैं पर वे ही बच्चे बीथोवन की सिंफनी के दौरान संगीत सुनने के बदले गप्पे लड़ा सकते हैं। पर जो श्रीमती ब्राउन के सामने पड़ने पर तुरंत टोपी उतार कर सर नहीं झुकाते, वे लौटकर यह भी नहीं बताते कि श्रीमती ब्राउन ब्रैंडी पीती है।

मेरे एक भाषण के दौरान एक वृद्ध सज्जन खड़े हुए और आज के बच्चों की अभद्रता की शिकायत करने लगे। उन्होंने गर्मी से कहा, (पिछले इतवार मैं पार्क में जा रहा था तो दो छोटे बच्चे आए। उनमें से एक बोला (हलो मैन!) मैंने पूछा (तो इसमें क्या हर्ज था? अगर वह कहला हलो भद्रपुरुष तो क्या आपको बेहतर लगता? सच्चाई यह है कि आपका आत्म सम्मान आहत हो गया। आपको बच्चों से भद्रता की गुलामी की अपेक्षा है।

यह बात कई वयस्कों के बारे में सच है। यह विशुद्ध घमंड ही है। यह कुछ ऐसा है मानों आप सामंती राजा हैं और बच्चे आपकी प्रजा हैं। यह स्वार्थ है, जिसका बच्चों के स्वार्थ की तरह, कोई औचित्य भी नहीं है। बच्चों को तो स्वार्थी होना ही होता है, पर वयस्कों को

अपने स्वार्थीपन को केवल वस्तुओं तक सीमित रखना चाहिए, व्यक्तियों को उसके दायरे में नहीं लपेटना चाहिए।

मैं देखता हूं कि बच्चे एक-दूसरे की गल्तियां सुधारते हैं मेरा एक छात्र खाते समय काफी चपचप करता था। उसके सभी दोस्त उसे टोकते थे। पर जब एक नन्हें ने कीमा खाने के लिए चक्कू को काम में लिया तो सबको यह तरीका बड़ा पसंद आया। वे एक-दूसरे से पूछने लगे कि खाने के लिए कांटा ही क्यों, चक्कू क्यों नहीं काम में लिया जा सकता। यह जवाब कि उससे मुंह कट सकता है, उन्हें नहीं जंचा। क्योंकि उनका मानना था कि खाने के चक्कू अक्सर इतने भोथरे होते हैं कि उनसे कुछ भी नहीं कटता।

बच्चों को यह छूट होनी चाहिए कि वे शिष्टाचार पर सवाल उठाएं। आखिर कोई मटर खाने के लिए कांटे-छुरी का इस्तेमाल करता है या नहीं, व्यक्तिगत मामला है। पर जिन्हें सामाजिक आचरण कहा जाता है न पर सवाल उठाने की छूट उन्हें नहीं होनी चाहिए। अगर कोई बच्चा कीचड़ में सने जूते लेकर बैठक घर में घुस आए तो हम सब चिल्लाते हैं। क्योंकि बैठक का कमरा बड़ों का होता है वहां वयस्कों को अधिकार होता है कि वे तय करें कि कौन-कैसे घुस सकता है, और कौन नहीं।

एक लड़के ने हमारे कसाई से बदतमीज़ी करी। मैंने स्कूल की आम सभा में कहा कि कसाई ने शिकायत की है। पर मुझे लगता है कि बेहतर यह होता कि वह पलट कर उसे लड़के को एक झापड़ रसीद कर देता। लोग जिन्हें अमूमन भद्रता कहते हैं, उसमें सिखाने लायक कुछ भी नहीं होता। हद से हद ये नियम-कायदे, सामाजिक तौर-तरीकों के अवशेष कहलाए जा सकते हैं। महिलाओं के आने पर सिर पर से टोपी उठाना एक अर्थहीन रिवाज है। मैं जब छोटा था तो मैं पादरी साहब की पत्नी को देखकर टोपी उठाता था, पर अपनी मां या बहन को देखकर नहीं। शायद मुझे कहीं यह लगता होगा कि मां और बहन के सामने ढोंग की ज़रूरत नहीं है। वैसे देखा जाए तो टोप उतारने का रिवाज़ कम-से-कम नुकसानदेह तो नहीं है। पर बेहतर यही है कि दस साल के बच्चों से ऐसी चीजें दूर ही रखी जाएं, जिनसे ढोंग की बू आती हो।

भद्रव्यवहार सिखाया नहीं जाना चाहिए। अगर सात साल की लड़की या लड़का उंगलियों से खाना चाहे तो उसे इसकी छूट दी जानी चाहिए। किसी भी बच्चे को ऐसा व्यवहार करने के लिए सिर्फ इसलिए बाध्य नहीं करना चाहिए कि मेरी चाचीजी उसे पसंद करती हैं। बच्चे को बेईमानी भरा शिष्टाचार सिखाने के बदले दुनिया भर के रिश्तेदारों और पड़ोसियों की तिलांजलि देना बेहतर है।

समयहिल के पुराने छात्र-छात्राओं का आचरण बेहद भद्र है। इस बात के बावजूद कि बारह साल की उम्र में उन्होंने खाते वक्त अपनी थालियां चाटी थीं। किसी बच्चे को 'धन्यवाद' कहने पर बाध्य नहीं करना चाहिए। उन्होंने बल्कि धन्यवाद कहने को प्रोत्साहित भी नहीं करना चाहिए।

वयस्कों के बनाए शिष्टाचार को काम में लेने वाले अधिकांश लोग अगर यह जानते तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होता कि बच्चे दरअसल कितने अभद्र होते हैं। वे समरहिल आते हैं तो उनका शिष्टाचार कुछ समय में पूरी तरह झड़ जाता है। वे अपनी आवाज़ की बेईमानी आचरण और कृत्यों की बेईमानी त्याग देते हैं। निजी स्कूलों से आए बच्चों को ही बेईमानी और बदतमीजी त्यागने में सबसे ज्यादा समय लगता है। पर आज़ाद बच्चे गुस्ताखी नहीं करते हैं।

मेरे अनुसार स्कूल के मास्टर साहब के प्रति श्रृद्धा एक कत्रिम झूठ है, जिसके लिए ढोंग का सहारा लेना पड़ता है। जब कोई सच में किसी की श्रृद्धा करता है तो वह अनायास ही करता है। मेरे छात्र-छात्राएं मुझे जब चाहें 'बूवकूफ गधा' कह सकते हैं। पर वे मेरी श्रृद्धा इसलिए करते हैं क्योंकि मैं भी उनकी श्रृद्धा करता हूं। इसलिए नहीं कि मैं स्कूल का प्रधानाध्यापक हूं और आले पर धरी भगवान की मूरत के समान हूं जिसके सामने सिर झुकाना ज़रूरी है। हमारे बीच परस्पर श्रृद्धा इसलिए है क्योंकि हम एक-दूसरे को पसंद करते हैं, एक-दूसरे के प्रशंसक हैं।

एक बार एक मां ने सवाल किया (अगर मैं अपने बच्चे को यहां पढ़ने भेजूं तो छुटियों में घर आने पर वह जंगली व्यवहार तो नहीं करेगा?

मेरा जवाब था (बेशक ! अगर आपने उसे जंगली बना दिया है तो ज़रूर करेगा।)

यह सच है कि जो बिगड़ैल समरहिल आने के बाद घर जाते हैं, तो कम-से-कम पहले साल तक वे घर लौटने पर बेहद जंगली व्यवहार करते हैं। अगर उसे शिष्टाचार सिखा कर बड़ा किया गया है तो बच्चा हर बार जंगलीपन पर उतरेगा। पर इससे यही तो सिद्ध होता है कि कृत्रिम शिष्टाचार बच्चों के गले नहीं उतरता।

कृत्रिम शिष्टाचार हमारे दिखावटीपन की सतह है जो आज़ादी के वातावरण में सबसे पहले उतार फेंकी जाती है। नए बच्चे सामान्यत: बड़ा शिष्ट आचरण करते हैं। मतलब बनावटी व्यवहार करते हैं। पर समय के साथ वे समरहिल में भद्र व्यवहार भी सीखते हैं। यह वास्तविक भद्रता होती है इसलिए, क्योंकि हम किसी तरह के शिष्टाचार की मांग नहीं करते। हम बच्चों से 'धन्यवाद' तक नहीं बुलवाते। फिर भी बाहर से आए मेहमान कहते हैं कि हमारे बच्चों का व्यवहार बहुत अच्छा है।

पीटर जो हमारे पास आठ साल की उम्र से उन्नीस साल तक रहा बाद में दक्षिण अफ्रीका गया। वहां रहा। उसकी मेज़बान महिला ने खत में लिखा (हरेक व्यक्ति उसके भद्र आचरण से मोहित है।) पर मब वह समरहिल में इतने सालों तक रहा तो मेरा ध्यान इस बात पर कभी नहीं गया कि उसका आचरण बढ़िया है या नहीं।

दरअसल समरहिल एक वर्गहीन समाज है। यहां किसी बच्चे का पिता धनी है, या उनका ओहदा ऊंचा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस चीज का असर होता है वह है बच्चे का व्यक्तित्व। और जिस चीज का सबसे ज्यादा महत्व है वह यह है कि बच्चा कितना मिलनसार है। यानि वह समुदाय का अच्छा सदस्य बन सकता है या नहीं। हमारे यहां जो आचरण नज़र आता है वह हमारे स्वशासन की उपज है। यहां हरेक को दूसरे के नज़रिए को देखने और समझने पर बाध्य होना पड़ता है। हम यह कल्पना तक नहीं कर सकते कि कोई तुतलाने वाले या लंगड़े बच्चे पर हंसे, उसका मखौल उड़ाए। पर अन्य नामी-गिरामी निजी स्कूलों में ये दोनों बातें अक्सर दिखती हैं। जो लड़के-लड़कियां हमेशा बड़ी सिफत से 'कृपया', 'धन्यवाद' और 'सर, जरा माफ करें' आदि कहते हैं उनमें दूसरों के प्रति वास्तविक

सरोकार पूरी तरह नदारद हो सकता है।

भद्र आचरण दरअसल ईमानदारी का मामला है। समरहिल छोड़ने के बाद हमारा एक छात्र जैक एक फैक्ट्री में काम करने लगा। उसने पाया कि जो व्यक्ति लोगों को नट-बोल्ट दिया करता था उसका मिजाज हमेशा खराब रहता था। जैक ने इस पर खूब सोचा और तब इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि हरेक मैकेनिक बिल के पास जाता और चीखता (सुन, बिल जरा आधा इंच वाले नट तो निकाल दे।) पर बिल कोट-पैंट पहनता था। जैक को लगा कि बिल सोचता है कि वह ओवर ऑल पहनने वाले मैकेनिकों से कहीं ऊंचा है। पर दूसरे उसे अपने जैसा साधारण आदमी ही मानते हैं और जो श्रृद्धा सम्मान उसे मिलना चाहिए वह नहीं देते। इसी वजह से बिल गरमाया रहता है। सो जैक को जब भी नट-बोल्ट चाहिए होते वह बिल के पास जाता और कहता (माफ कीजिए, मिस्टर ब्राउन, मुझे कुछ नट-बोल्ट चाहिए।)

जैक ने मुझे बताया (मैं उनकी मस्का-पॉलिश नहीं कर रहा था। मैं तो सिर्फ मनोविज्ञान काम में ले रहा था। दरअसल मुझे उसके लिए बड़ा दुख होता था।) मैंने जानना चाहा (इसका नतीजा क्या निकला?)

(ओह!) जैक ने कहा (फैक्ट्री में अकेला मैं ही हूं, जिससे वह सीधे मुंह बात करता है।)

इसे मैं भद्रता का बेहतरीन नमूना कहता हूं। सामुदायिक जीवन बच्चों को जो बात सिखाता है, वह है - दूसरों की भावना का ख्याल रखना।

छोटे बच्चों में अभद्र व्यवहार पर मेरी नज़र भी नहीं जातीं इसलिए, क्योंकि मैं यह तलाशता भी नहीं पर फिर भी मैंने यह कभी नहीं देखा कि बातचीत करने वाले दो मेहमानों के बीच से कोई छोटा बच्चा भागता हुआ घुस आए। बच्चे मेरी बैठक में आने के पहले दस्तक नहीं देते, पर घुसने पर अगर देखें कि मैं मेहमानों से बात कर रहा हूं, तो चुपचाप, माफी मांग कर खिसक लेते हैं।

हाल मेंउक सौदा लाने वाले ने हमारे बच्चों की तारीफ की। उसने मुझ से कहा "मैं पिछले तीन सालों से अपनी गाड़ियां लेकर आता रहा हूं। एक मरतबा भी किसी ने उसे न तो खरोंचा, न उनमें घुसने की कोशिश कीं और यह उस स्कूल की बात है जिसके बच्चों के लिए कहा जाता है कि वे दिन भर खिड़कियां तोड़ते रहते हैं।"

समरहिल में बच्चे मेहमानों से दोस्ताना बर्ताव करते हैं, जिस बारे में मैं पहले ही बता चुका हूं। दोस्ताना बर्ताव भी भद्र आचरण ही की श्रेणी मे आता है। जो मेहमान मन में शंकाएं या विरोध लिए आते हैं, मैंने उनसे भी बच्चों को बदतमीजी करते नहीं देखा है। बशर्ते वे हमारे पास कम से कम छह महीने रह चुके हों।

हमारे नाटकों के दौरान बच्चों का आचरण अच्छा होता है। अगर नाटक बढ़िया न भी हो तो भी कुछ तालियां तो बजाते ही हैं - ज़ाहिर है कम बजती हैं। सब यह मान कर चलते हैं कि अभिनय करने वाले और नाटककार ने पूरी कोशिश की है, जिसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए, उसका मजाक नहीं उड़ना चाहिए।

कुछ माता-पिता के लिए शिष्टाचार सबसे बड़ा कीड़ा है। एक भद्र घर का दस साल का बच्चा समरहिल आया। वह बैठक में घुसने पर दरवाजा खटखटाता, जाते समय दरवाजा धीमे से बंद करता। मैंने घोषणा की कि यह सब ऊपरी शिष्टाचार सप्ताह भर ही चलेगा। पर मैं गलत सिद्ध हुआ, वह व्यवहार सिर्फ दो दिन ही चला।

मैं किसी बच्चे पर चिल्लाता हूं (दरवाजा बंद करो भाई।) इसलिए नहीं कि मैं उसे भद्र आचरण सिखाना चाहता हूं, इसलिए कि मैं खुद उठकर दरवाजा बंद नहीं करना चाहता। भद्र आचरण की अवधारणा वयस्क अवधारणा है। बच्चों की, फिर चाहे वे किसी प्रोफेसर के बच्चे हों या कुली के, भद्र आचरण में उनकी कोई रुचि नहीं होती।

सभ्यता की प्रगति से ढोंग और कपट हटाना है। हमें बच्चों को अपनी सभ्यता के दिखावटीपन से आगे बढ़ने की छूट देनी होगी। हम बच्चों को भय और घृणा से मुक्त कर सकें तो दरअसल हम भद्र आचरण को नई सभ्यता की दिशा में बढ़ाने में मददगार हो सकेंगें

पैसे

अधिकांश बच्चों के लिए पैसा प्रेम का प्रतीक है। चाचा मुझे चवन्नी देते हैं, पर बुआ मुझे रुपया। सो बुआ मुझे चाचा से ज्यादा प्यार करती हैं। माता-पिता यह समझते हैं और इसीलिए अक्सर अपने बच्चों को ज़रूरत से ज्यादा पैसा दे, उन्हें बिगाड़ते हैं। जिस बच्चे को वे प्यार नहीं करते, उसकी भरपाई करने के लिए उसे ज्यादा जेबखर्च देते हैं।

हममें से कोई भी जीवन में पैसे का मोल आंकने से बच नहीं सकतां इसका दबाव हर ओर से आता हैं हम संगीत सुनने बालकनी की टिकटें खरीद कर बैठते हैं हमारे बच्चे गर्मियों की छुटियों में मंहगे निजी शिविरों में जाते हैं पैसे का मूल्य सबसे लिए एक खतरा हैं

कोई मां प्रतिवाद में कहती है, (अपनी बेटी को मैं दुनिया भर के सोने के बदले भी न बेचूं। पांचेक मिनट बाद ही अगर बच्ची से गलती से भी पांच रुपए की एक प्लेट टूट जाए तो उसे ठोक देती है।

माता-पिता बच्चे में पैसे की चिंता ठूसते हैं। मैंने अक्सर किसी बच्चे को दुखी हो कहते सुना है, (हाय, मेरी घड़ी गिरकर टूट गई। मां क्या कहेगी? मुझे तो उसे बताने में भी डर लग रहा है।)

यदाकदा इसका उलटा भी नज़र आता है। मैंने किसी लड़के या लड़की को अपने घर के प्रति नफरत, नफरत ज़ाहिर करने के लिए जानबूझ कर चीजें तोड़ते देखा है। वे सोचते हैं, मेरे मां-बाप मुझे प्यार नहीं करते, इसकी कीमत उन्हें चुकानी होगी। जब उन्हें नील स्कूल से तोड़फोड़ का बिल भेजेगा तो वे गुस्से से पागल हो जाएंगे।

कुछ माता-पिता समरहिल में पढ़ने वाले अपने बच्चों को कुछ ज्यादा ही जेबखर्च भेजते हैं, तो कुछ बहुत कम। मेरे लिए यह हमेशा से एक बड़ी समस्या रही है, जिसका कोई समाधान नहीं है। हर सोमवार को सभी बच्चों को दो पेंस का जेबखर्च मिलता है। पर कुछके पास डाक से काफी पैसे आते हैं, कुछ के पास बिल्कुल नहीं।

स्कूल की आमसभा में मैंने कई बार यह सुझाव रखा है कि जेबखर्च का सारा पैसा एक साथ जमा कर लिया जाए और सबमें बराबर बंटे। मैंने कहा है कि किसी को सप्ताह में पांच रुपए मिलें और किस को चवन्नी, यह अन्याय है। ज्यादा पैसा पाने वाले बच्चों की संख्या बहुत कम होते हुए भी मेरा यह प्रस्ताव कभी माना नहीं गया। जो सिर्फ चवन्नी पाता है वही बच्चा अपने अमीर दोस्तों की आमदनी को सीमित करने को तैयार नहीं होतां

फिर भी मेरा मानना है कि बच्चे को अधिक देने के बदले कम देना ही बेहतर है। जो पिता एक बारह साल के बच्चे को पांच डॉलर का नोट थमाता है वह नासमझी कर रहा है, यह तभी होना चाहिए जब इतनी बड़ी राशि का कोई खास उद्देश्य हो, जैसे साइकिल की बत्ती खरीदना। अधिक पैसा बच्चों कै मूल्य बिगाड़ता है। किसी बच्चे को एक खूबसूरत, कीमती साइकिल देना, जिसकी वह देखभाल तक न करे या कोई रेडियो, या मंहगा खिलौना देना जो रचनात्मक न हो, बेमानी है।

ज्यादा पैसा बच्चे के काल्पनिक जगत को बाधित करता है। किसी बच्चे को मंहगी नाव देने पर, लकड़ी के टुकड़े से खूद अपनी नाव बनाने का रचनात्मक आनंद भी छिन जाता है। अक्सर कोई नन्हीं खुद की बनाई कपड़े की गुड़िया को मंहगी, खूबसूरत, कपड़े पहने, बाजार में बिकने वाली, रोने या बोलने वाली गुड़िया से ज्यादा प्यार नहीं करती है।

मैंने पाया है कि छोटे बच्चे रुपए-पैसे को कीमती नहीं मानते। पांच साल का नन्हा या नन्ही अपनी चवन्नी, अठन्नी गिरा या फेंक देता है। इससे सीख यह मिलती है कि बच्चों को पैसे बचाना सिखाना गलत है। घरेलू बचत बैंक, बच्चे से नाजायज मांग रखता है। किसी सात साल के बच्चे के लिए यह बात बेमानी है कि उसके खाते में सौ-पचास रुपए जमा हैं, खासकर तब जब उसे यह शक हो कि किसी दिन उसके मां-बाप वह पैसा निकाल कर उससे कुछ ऐसी चीज खरीद देंगे जो वह चाहता तक नहीं।

विनोद

हमारे स्कूलों में और शैक्षिक पत्रिकाओं में हास्य-विनोद की भारी कमी है। मैं जानता हूं कि विनोद के अपने खतरे हैं। कुछ लोग जिंदगी के अधिक गंभीर मुद्दों को छुपाने के लिए भी विनोद का इस्तेमाल करते हैं क्योंकि किसी चीज का सामना करने से अधिक आसान है उसे हंसी-मजाब में उड़ा देना। बच्चे विनोद का इसलिए इस्तेमाल नहीं करतें उनके लिए विनोद और मस्ती का मतलब है दोस्ती, याराना। कठोर शिक्षक यह जानते हैं इसीलिए वे अपनी कक्षा से हंसी-मजाक को दूर रखते हैं।

सवाल यह है कि एक सख्त शिक्षक में विनोद की भावना होती भी है? मुझे तो इसमें शंका है। मैं अपने रोज़मर्रा के काम में दिन भर इसका इस्तेमाल करता हूं। मैं हरेक बच्चे से हंसी-मजाक करता हूं, पर उनको यह भी पता है कि ज़रूरत पड़ने पर मैं पूरी तरह गंभीर भी हो सकता हूं।

आप बच्चों के माता-पिता हों या शिक्षक हों, उनसे सही तरह से निपटने के लिए आपको उनके विचार और भावनाओं को समझना होगा। और आपका स्वभाव विनोदी होना चाहिए। वह भी बचकाना विनोद। बच्चे से हंसी-मजाक करने से उसे लगता है कि आप उसे प्यार करते हैं। ध्यान रहे यह विनोद तीखा या आलोचनात्मक न हो।

बच्चों में विनोद को विकसित होते देखना बड़ा मजेदार होता है। बल्कि इसे मस्ती कहना चाहिए, क्योंकि बच्चों में विनोद जगे उसके पहले मस्ती की भावना जन्मती है। डेविड बारटन का तो जन्म ही मानों समरहिल में हुआ था जब वह तीनेक साल का था तो मैं उससे कहता, (मैं समरहिल देखने आया हूं और नील को तलाश रहा हूं। बताओ जरा वे कहां हैं? डेविड मेरी ओर तिरस्कार से देखता और कहता (बेवकूफ, तुम्हीं तो नील हो।)

जब डेविड सात साल का हुआ तो एक दिन मैंने उसे बाग में रोका। मैंने पूरी गंभीरता से कहा, (डेविड बारटन से कहना कि मैं उससे मिलना चाहता हूं। शायद वह कॉटेज में है।)

डेविड की बांछें खिल उठीं। उसने कहा, (ठीक है!) और वो कॉटेज तक गया और दो मिनट में लौट आया।

(वह कह रहा है कि वह नहीं आएगा।) उसने एक चतुर मुस्कान के साथ कहा।

(उसने कोई कारण बताया?)

(जी हां, उसने कहा कि वह अपने चीते को खाना खिला रहा है।)

सात साल की उम्र में वह मजाक समझने लगा औ मौका पड़ने पर पीछे नहीं हटा। पर जब मैंने नो साल के रेमंड से कहा कि क्योंकि उसने हमारा मुख्य द्वार चुरा लिया है उसके जेबखर्च के आधे पैसे सज़ा के बतौर काट लिए जाएंगे, तो वह रो पड़ा। मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया। परंतु दो साल बाद वो मेरे मज़ाकों का अर्थ समझने लगा।

तीन साल की सैली उस वक्त खिलखिलाती है जब मैं शहर में उसे देखकर समरहिल का रास्ता पूछता हूं। पर सात-आठ साल की लड़कियां मुझे उल्टा रास्ता दिखाती हैं।

जब बाहरी मेहमान आते हैं तो मैं कॉटेज में रहने वाले लड़कों का परिचय देते हुए कहता हूं, (ये सुअर हैं और सुअरों की सी आवाजें निकालते हैं।) एक बार जब मैंने यह परिचय दिया तो मैं हक्का-बक्का रह गया, क्योंकि एक आठ साल की लड़की ने नाक-भौं चढ़ाते हुए कहा, (क्या यह मज़ाक बासी नहीं हो चुका है?) मुझे मानना पड़ा कि वो सही थी।

लड़कियां भी उतनी ही विनोदी होती हैं जितने लड़के। पर वे अपने बचाव के लिए लड़कों की तरह विनोद या उपयोग नहीं करतीं। कई लड़के अपनी रक्षा इस तरह करते हैं। मैंने डेव पर असामाजिक व्यवहार का आरोप लगते देखा है। वह अपनी गवाही इतने मज़ाकिया लहजे में देता है कि, सब प्रभावित हो जाते हैं और उसे छुटपुट सज़ा ही मिलती है। पर लड़कियां खुद को आसानी से गलत मान लेती हैं और अपना बचाव ऐसे नहीं करती हैं। सबसे प्रबुद्ध घरों में भी लड़कियों में भी एक सामान्य हीनभावना होती है, जो हमारा समाज

महिलाओं पर जन्म से ही लादता है।

बच्चे के साथ गलत समय पर हंसी-मजाक नहीं करना चाहिए, न ही उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचानी चाहिए। अगर उसकी शिकायत वास्तविक हो तो उसे पूरी गंभीरता से लिया जाना चाहिए। जिस बच्चे को एक सौ दो बुखार हो तो उससे मज़ाक करना सही नहीं है। पर जब वह किसी रोग से ठीक हो रहा हो तो आप डॉक्टर बन, मज़ाक कर सकते हैं। तब उसे मज़ाक समझ और पसंद आएगा। शायद बच्चों को मज़ाक इसलिए पसंद है क्योंकि इसमें दोस्ताना अंदाज और हंसी का पुट होता है। हाज़िर जवाब बच्चे कभी भी चुभने वाला मज़ाक नहीं करते।

खण्ड 4
धर्म और नैतिकता

हाल ही में एक महिला मेहमान ने मुझसे कहा, (आप अपने बच्चों को यीशू के जीवन की बात क्यों नहीं पढ़ाते, जिससे वे प्रेरित हों और उनके पदचिन्हों पर चलें?) मेरा जवाब था कि किसी के जीवन के बारे में सुनकर व्यक्ति वैसा नहीं बनता, उसके लिए वैसी जिंदगी जीनी पड़ती है, क्योंकि शब्द कृत्यों से कम महत्वपूर्ण नहीं होते हैं। कई लोग समरहिल को इसलिए एक धार्मिक स्थल कहते हैं क्योंकि यहां बच्चों को स्नेह और प्यार मिलता है।

यह बात सच होगी पर पुझे यह विशेषण नापसंद है, क्योंकि धर्म का जो आज प्रचलित अर्थ है वह है स्वाभाभिक जीवन का विरोध। मुझे आपत्ति इस बात पर है कि कोई मनुष्य यह दावा करे कि उसका ईश्वर ही वह सत्ता है जो मानवीय विकास और आनंद पर बंधन लगाता है। यह लड़ाई आध्यात्म में विश्वास रखने वालों और अविश्वास करने वालों की लड़ाई नहीं है। यह लड़ाई है मानवीय स्वतंत्रता में विश्वास करने वालों और मानवीय स्वतंत्रता का दमन करने वालों के बीच।

शायद किसी दिन यह नया धर्म हमारे पास हो। आप मुंह बा कर चीखेंगे, (क्या? एक नया धर्म?) सारे ईसाई उठ खड़े होंगे। प्रतिवाद करेंगे। (क्या ईसाई धर्म शाश्वत नहीं है? यहूदी उठेंगे और प्रतिवाद करेंगे। (क्या यहूदी धर्म शाश्वत नहीं है? यही दूसरे धर्म वाले भी कहेंगे।

नहीं कोई धर्म शाश्वत नहीं है, जैसे कोई देश शाश्वत नहीं है। धर्म भी, को भी धर्म जन्म, यौवन, जरा और मरण के चक्र से गुज़रता है। सैकड़ों धर्म दुनिया में आए और गए हैं लाखों मिस्रवासी, चार हजार वर्षों तक एमॉन रा (सूर्य देवता) के उपासक रहे। पर आज उनमें से एक भी उपासक धरती पर नहीं है। ईश्वर का विचार संस्कृति के साथ बदलता है। पशुपालक समाज में ईश्वर एक दयालु गडेरिया था। युद्ध के समय ईश्वर समर का देवता था। जिस काल में व्यापार-वाणिज्य फल-फूल रहा था तो ईश्वर न्याय का देवता था, जो समता और दया तोल-तोल कर बांटता था। आज के युग में, जब मनुष्य की रचनात्मकता भी मशीनी है, हमारा ईश्वर एच जी वैल्स की तर्ज पर एक 'अविद्यमान ताकत' ही हो सकता है। क्योंकि जब मनुष्य खुद अपना ऍटम-बम बना सके, उस युग में किसी रचनात्मक ईश्वर की ज़रूरत नहीं है।

कोई ऐसा दिन भी होगा जब नई पीढ़ी आज के पुरातन धर्म और मिथकों को अस्वीकार करेगी। जब यह नया धर्म आएगा तब वह इस विचार का विरोध करेगा कि मनुष्य की रचना पाप से हुई है। यह नया धर्म या ईश्वर का गुणगान, मानव को खुश रख सकेगा।

यह नया धर्म शरीर और आत्मा को परस्पर विरोधी नहीं मानेगा। वह मानेगा कि शरीर पापों का पुंज नहीं है। यह धर्म स्वीकारेगा कि इतवार की सुबह तैरना, गिरजे में प्रार्थनाएं गाने से अधिक पवित्र काम है। क्योंकि ईश्वर को खुश रखने के लिए प्रार्थनाएं गाना ज़रूरी नहीं है। इस नए धर्म का ईश्वर आकाश में नहीं, बागों-चारागाहों में मिलेगा। कल्पना कीजिए कि जितने घंटे गिरजे जाने वाले प्रार्थना में बिताते हैं, उसका दस प्रतिशत भी अच्छे दयालू व सहायक कामों में बिताएं, तो क्या कुछ हासिल न हो जाए।

मेरा अखबार हर दिन मुझे बताता है कि हमारा आज का धर्म किस कदर मर चुका है। हम लोगों को जेलों में ठूसते हैं। हमसे मतभेद रखने वालों की आवाजों को दबाते हैं। गरीबों का शोषण करते हैं। युद्ध के लिए हथियारों से लैंस होते हैं। एक संगठन के रूप में गिरजा निहायत कमजोर है। वह युद्ध नहीं रोक सकता। हमारी अमानवीय दंड संहिता को बदल नहीं सकता। शोषणकर्ताओं के विरुद्ध खड़ा तक नहीं होता।

आप एक साथ ईश्वर और धनलोलुपता की सेवा नहीं कर सकते। आज के शब्दों में कहें तो इतवार को गिरजा और सोमवार को बंदूक चलाने को अभ्यास नहीं चल सकता। शायद इससे बड़ा ईश्वर निंदा का कथन दूसरा नहीं होगा, जब युद्ध के दौरान विभिन्न गिरजों में यह कहा गया है कि 'ईश्वर हमारे साथ है। ईश्वर दोनों पक्षों को सही कैसे मान सकता है। ईश्वर एक तरफ प्रेम की मूर्ति और दूसरी तरफविषैली गैस बरसाने वाले कैसे हो सकता है?'

कई लोगों के लिए व्यवस्थित परंपरागत धर्म, व्यक्तिगत समस्याओं से निकलने का आसान रास्ता होता है। रोमन कैथोलिक व्यक्ति अगर पाप करे और उसे अपने पादरी के सामने स्वीकार केरे तो पादरी उसे उन पापों से मुक्ति देता है।

धार्मिक व्यक्ति अपने बोझ ईश्वर के माथे डाल सकता है। उसे विश्वास होता है कि वह ज़रूर महिमा के पथ पर बढ़ेगा। ऐसे में व्यक्तिगत क्षमता और आचरण के बदले इस कथन पर जोर दिया जाता है कि, 'ईश्वर में विश्वास करो, वे तुम्हारा उद्धार करेंगे।' इसका अर्थ दरअसल यह लिया जाता है कितुम बस विश्वास की घोषणा कर दो, तुम्हारी आध्यात्मिक समस्याएं खुद-ब-खुद खत्म हो जाएंगी। स्वर्ग का टिकट तुम्हारे लिए पक्का है।

मूलत: धर्म जीवन के प्रति भयभीत होता है। वह जीवन से दूर भागने का कृत्य है। वह इहलौकिक जीवन को गौण बताता है। यह कहता है कि इस जीवन के परे एक बेहतर जीवन है। रहस्यवाद और धर्म का अर्थ है कि यह जीवन असफल है। स्वतंत्र व्यक्ति निर्वाण नहीं पा सकता। पर स्वतंत्र बालक जीवन को व्यर्थ या असफल नहीं मानते। क्योंकि उन्हें किसीने जीवन को नकारना नहीं सिखाया होता है।

धर्म और रहस्यवाद अवास्तविक विचार और आचरण को पनपाते हैं। सच्चाई यह है कि हम अपने टेलीविजन और जेट विमानों के बावजूद वास्तविक जीवन में एक अफ्रीकी आदिवासी से भी ज़्यादा दूर हैं। यह सच है कि उस आदिवासी का धर्म भी भय से जन्मा है, पर वह प्रेम में नपुंसक नहीं है, न ही कुंठित है।

उसी तथाकथित जंगली आदिवासी की तरह हम भी भय के कारण धर्म की शरण लेते हैं। पर उस जंगली की तुलना में हम नपुंसक बनाए जा चुके हैं। हम अपने बच्चे को धर्म तब ही सिखा सकते हैं जब हम उसे नपुंसक न बनने दें, भय से उसकी आत्मा को टूटने से बचाएं।

मेरे पास तमाम ऐसे बच्चे आए हैं जो धार्मिक प्रशिक्षण द्वारा नष्ट कर दिए गए हैं। उनका उदाहरण देने से किसी को फायदा नहीं होगा। क्योंकि कोई धार्मिक व्यक्ति भी तमाम उदाहरण देगा जहां लोग धर्म के सहारे बचा लिए गए हैं। अगर हम यह मानकर चलें कि मनुष्य पापी है और उसे बचाना ज़रूरी है तो आज के धार्मिक लोग सही हैं।

पर मैं माता-पिता से एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की गुज़ारिश करता हूं। ऐसा दृष्टिकोण जो उनके आसपास के लोगों से परे हो। मैं कहता हूं कि वे एक ऐसी सभ्यता को पनपाएं जो जन्म से बच्चों पर पाप का बोझ न लादे। मेरी गुजारिश है कि माता-पिता बच्चों से कहें कि वह पाप के साथ नहीं जन्मा है, वह अच्छे इंसान की तरह जन्मा है। उसे पापों से मुक्ति की दरकार नहीं है। मैं माता-पिमा से कहता हूं किवे अपने बच्चों को बताएं कि वे इस जीवन को बेहतर बना सकते हैं। उन्हें इसीको बेहतर बनाना चाहिए। सो वे अपनी सारी उर्जा यहां और इस जीवन में लगाएं। मौत के बाद किसी शाश्वत जीवन को सुधारने में नहीं।

किसी बच्चे पर धार्मिक रहस्यवाद नहीं लादना चाहिए। क्योंकि रहस्यवाद उसे सच्चाई व वास्तविकता से बचना सिखाता है, पर एक खतरनाक रूप में। हम सबको यदा-कदा सच्चाई से दूर भागने की ज़रूरत पड़तीर है। अन्यथा हम कभी कोई उपन्यास नहीं पढ़ते, कोई फिल्म नहीं देखते, कभी शराब का जाम न उठाते। पर हमारा भागना, खुली आंखों के साथ होता है, और हम जल्दी ही वास्तविक दुनिया में लौट आते हैं। पर एक रहस्यवादी हमेशा एक भगोड़े का जीवन जीता है।

कोई भी बच्चा स्वभाव से रहस्यवादी नहीं होता। समरहिल में एक स्वत: स्फूर्त अभिनय कक्षा के दौरान इस बात का सबूत मिला कि अगर बच्चों को भय का जामा न उढ़ाया जाए तो उनमें वास्तविकता का सहज-स्वाभाविक ज्ञान होता है। एक रात मैं कुर्सी पर बैठा और मैंने कहा, (मैं स्वर्ग के स्वर्ण द्वार का रखवाला संत पीटर हूं। तुम सब स्वर्ग में घुसना चाहने वाले लोग हो। चलो अभिनय कर इसी बात को आगे बढ़ाओ।)

उन्होंने स्वर्ग द्वार में घुसने के तमाम कारण बताए। एक लड़की तो उल्टे रास्ते आई और बाहर जाने का बहाना बनाने लगी। पर उनमें सबसे उम्दा काम रहा एक चौदह साल के लड़के का जो सीटी बजाता हुआ आया और जेब में हाथ घुसाए अंदर घुसने लगा।

(अरे!) मैं जोर से बोला (तुम अंदर नहीं जा सकते।)

वह पलटा और मुझ पर नज़र डाली। फिर बोला (ओहा! तुम इस काम पर नए-नए आए हो न?)

(क्या मतलब) मैंने पूछा।

(तो तुम्हें पता नहीं कि मैं कौन हूं?)

(कौन हो भला?) मैंने जानना चाहा।

(ईश्वर!) उसने जवाब दिया और सीटी बजाता हुआ स्वर्ग में दाखिल हो गया।

बच्चे दरअसरल प्रार्थना भी नहीं करना चाहते। बच्चों की प्रार्थनाएं ढोंग भरी होती हैं। मैंने दर्जनों बच्चों से पूछा है, (प्रार्थना करते समय तुम क्या सोचते हो?) हरेक एक ही कहानी कहता है : हमेशा उसके दिमाग में तमाम दूसरी बातें सूझती हैं। बच्चा दूसरी बातें सोचेगा ही, क्योंकि उसके लिए प्रार्थना का कोई मायने नहीं है। वह तो उस पर लादी गई बाहरी चीज है।

दस लाख लोग हरेक भोजन से पहले प्रार्थना कहते होंगे, उनमें से नौ लाख नब्बे हजार नौ सौ निन्यानवे अपनी प्रार्थना मशीनी तरीके से बोलते हैं, ठीक वैसे जैसे हम सीढ़िया चढ़ते समय, किसी के आगे बढ़ने के पहले कहते हैं, (जरा माफ कीजिएगा।) अपनी मशीनी प्रार्थनाएं और मशीनी आचरण हम नई पीढ़ी को क्यों दें? यह तो बेईमानी होगी? किसी निरीह बच्चे पर धर्म लादना भी ईमानदारी नहीं है। जब वह बड़ा हो, खुद अपनी राह चुनने लायक हो जाए, तब अपना मन बनाने की छूट उसे मिलनी चाहिए। बच्चों को रहस्यवादी बनाने से भी बड़ा खतरा है उसे नफरत करने वाला इंसान बनाना। अगर बच्चे को शुरू से यह सिखाया जाता है कि कुछ चीजें पाप हैं, तो जीवन के प्रति उसका प्रेम नफरत में बदल जाता हैं जब बच्चे आज़ाद होते हैं तो वे किसी दूसरे बच्चे को पापी नहीं मानतें समरहिल में अगर कोई बच्चा चोरी करता है, और उसके साथियों की जूरी उसके काम पर विचार करती है, तो वे उसे चोरी की सज़ा नहीं देते। वे उसे वह कर्ज चुकाने भर को कहते हैं। बच्चों को सहज ही यह पता होता है कि चोरी करना एक तरह की बीमारी है। वे वास्तविकता से जुड़े होते हैं सो एक गुस्सैल ईश्वर की, एक लालच देकर लुभाने वाले शैतान की कल्पना नहीं करते। गुलाम मानव अपने ईश्वर की कल्पना अपने ही प्रतिरूप में करता है। पर मुक्त बच्चे जो जीवन का उम्मीद व बहादुरी से स्वागत करता है, उसे किसी ईश्वर की ज़रूरत नहीं होती।

अगर हम चाहते हैं कि बच्चों की आत्मा स्वस्थ्य रहे तो हमें उन्हें झूठ मूल्य देने से बचना चाहिए। तमाम लोग जो खुद तो इसाई धर्मशास्त्र पर सवाल उठाते हैं, अपने बच्चों को इसाई विश्वास देने से नहीं हिचकते। ऐसी कितनी माएं होंगी जो सचमें एक आग से सुलगते नरक या स्वर्णिम स्वर्ग को शब्दश: स्वीकारती होंगी? पर ऐसी हजारों माएं अपने बच्चों को पुरानी पुराण कथाएं सुना उनकी आत्मा को तोड़-मरोड़ देती हैं

धर्म इसीलिए पनपता है क्योंकि इंसान अपनी अवचेतन सच्चाई का सामना नहीं कर सकता। धर्म अवचेतन को शैतान बना डालता है और उसके द्वारा दिए गए प्रलोभनों से भागने और बचने की बात कहता है। पर अगर अवचेतन को चेतना के स्तर पर ले आया जाए, तो

धर्म की कोई भूमिका रहेगी ही नहीं।

बच्चे के लिए अमूमन धर्म का अर्थ होता है केवल डर। ईश्वर एक महामानव है जिसकी पलकों में भी छेद हैं और जो तुम्हें हर जगह, हर समय, देख सकता है। बच्चे के जीवन में ऐसे भय को घुसाना सबसे बड़ा गुनाह है। क्योंकि तब वह हमेशा जीवन को नकारेगा, हमेशा कमतर रहेगा, हमेशा के लिए डरपोक बनेगा। जिस किसी को बचपन में मृत्यु के बाद नरक का डर दिखाया गया हो वह इस जीवन के प्रति कभी भी आश्वस्त नहीं हो सकता। फिर चाहे वह व्यक्ति तार्किक रूप से यह समझता क्यों न हो कि स्वर्ग और नर्क की धारणाएं मानवीय आशाओं व भय की बचकानी परिकल्पनाओं पर गढ़ी गई हैं। जो भावनात्मक लबादा हमें बचपन में उढ़ाया जाता है वह ताउम्र स्थाई रूप से लदा रहता है। वह कठोर ईश्वर जो स्वर्ग में वीणा के स्वरों से आपको पुरस्कार देता है या नरक की आग में जलाकर दंडित भी करता है उसे इंसान ने हूबहू अपनी ही शक्ल दी है। वह हमारी ही कल्पना की मूरत है। ईश्वर इच्छा-पूर्ति और शैतान भय-पूर्ति है।

इसलिए, जो कुछ हमें खुशी से मजा दे, वही बुराई बन जाता है। ताश खेलना, नाटक देखना, नाचना आदि शैतानी है। और धार्मिक होने का अर्थ अक्सर है आनंदहीन होना। इतवार को गिरजे जाते वक्त कस्बों में बच्चों को पहनाए जाने वाले कड़क कपड़े धर्म के दंड देने वाले स्वरूप का प्रतीक हैं। धार्मिक संगीत भी अक्सर रुदन भरा होता है। अधिकांश लोगों को गिरजा जाने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ती हैं वहां जाना एक फर्ज ही होता है। और धर्म का मतलब होता है दुखी दिखना, और दुखी होना।

पर नया धर्म स्व के ज्ञान और उसे स्वीकारने पर आधारित होगा। दूसरों को प्यार करने की शर्त यह होती है कि पहले खुद को प्यार किया जाए। यह बात 'मूल पाप' के साथ पैदा होने के कलंक से अलग होगी, क्योंकि वहां इंसान खुद से नफरत करता है, और फलस्वरूप दूसरों से भी। कवि कॉलरिज ने नए धर्म की परिभाषा देते हुए कहा था कि (वही बेहतरीन प्रार्थना कर सकता है जो छोटी-मोटी सभी चीजों को ढ़ेर प्यार करता हैं नए धर्म में इंसान तभी सर्वोत्तम प्रार्थना करेगा, जब वह स्वंय निहित तमाम छोटी और बड़ी चीजों से प्यार कर सकेगा।

भाग पांच
बच्चों की समस्याएं
क्रूरता और परपीड़न

क्रूरता विकृत प्रेम है, इसीलिए परपीड़न मे आनंद हमेशा विकृत कामुकता होती है। क्रूर व्यक्ति कुछ दे नहीं पाता, क्योंकि देना प्रेम का कृत्य है।

क्रूरता मनुष्य का सहज स्वभाव नहीं होता। पशु क्रूर नहीं होतें कोई बिल्ली, चूहे से इसलिए खिलवाड़ नहीं करती कि वह क्रूर हैं उसके लिए यह खेल भर है। वह क्रूरता कर रही है, यह आभास उसे नहीं होता।

मनुष्यों में क्रूरता अक्सर अवचेतन उद्देश्यों के कारण उपजती है। समरहिल के लंबे अनुभव में मुझे बिरले ही ऐसा बच्चा मिला है, जो पशुओं को सताता हो। हां, कुछ साल पहले एक अपवाद ज़रूर था। तेरह साल के जॉन को उसके जन्मदिन पर एक पिल्ला मिला। उसकी मां ने लिखा था (वह जानवरों से प्यार करता है।) जॉन नन्हें स्पॉट को अपने साथ ले जाता। मैंने पाया कि वह कुत्ते से ठीक बर्ताव नहीं कर रहा है। मुझे लगा कि वह स्पॉट को अपने छोटे भाई जिम के रूप में देख रहा है, जो उसकी मां का चहेता था।

एक दिन जॉन को मैंने स्पॉट को पीटते हुए देखा। मैं उस नन्हें कुत्ते के पास गया, उसकी गरदन पर हाथ फेर कर कहा, (हलो जिम।) लगता है कि मैंने उसे इस बात के प्रति सचेत कर दिया कि वह अपने छोटे भाई का गुस्सा उस निरीह पिल्ले पर निकाल रहा है। उसने इसके बाद पिल्ले को नहीं पीटा। पर मैंने केवल उसके लक्षण भर को छुआ था। दूसरे को सताने में आने वाले आनंद का इलाज मैं नहीं कर सका था।

मुक्त और प्रसन्न बच्चों के क्रूर होने की संभावना कम है। कई बच्चों को क्रूरता उन पर हुई वयस्कों की क्रूरता के कारण जन्मती है। कोई खुद, बिना दूसरों को पीटने की इच्छा के, पिट नहीं सकता। शिक्षक की तरह तब आप खुद भी अपने से किसी कमजोर व्यक्ति को पीटने के लिए चुनते हो। किसी भी कठोर अनुशासन वाले स्कूल के बच्चे, समरहिल के बच्चों से कहीं ज्यादा क्रूर होते हैं।

क्रूरता का हमेशा तर्क से स्पष्टीकरण दे दिया जाता है। तुम्हें पीटने से मुझे ही ज्यादा तकलीफ होती है। ऐसे कम ही होंगे जो ईमानदारी से यह कहें कि (मैं लोगों को इसलिए पीटता हूं क्योंकि मुझे इससे संतोष मिलता है। जबकि पिटाई का असली कारण यही होता है। वे दूसरों को पीटने में आने वाले आनंद को नैतिकता की आड़ में छुपाते हैं। (मैं अपने बच्चे को नाजुक नहीं बनाना चाहता हूं कि वह दुनिया में जी सके, जोउसे न जाने कितनी ठोकरे लगाएगी। मैं अपने बेटे को इसलिए ठोकता हूं कि बचपन में मैं खूब ठुका हूं, और उससे मुझे बड़ा फायदा हुआ था।)

जो माता-पिता अपने बच्चों को पीटते हैं वे हमेशा ऐसे ही स्पष्टीकरण देते हैं। मुझे आजतक ऐसे मां-बाप नहीं मिले जो यह कहें कि (मैं अपने बच्चे को इसलिए पीटता हूं क्योंकि मैं उससे नफ़रत करता हूं। मैं अपने आप से, अपनी बीबी से, अपनी नौकरी से, अपने सगे-संबंधियों से, सबसे नफ़रत करता हूं। मैं अपने बेटे को इसलिए पीटता हूं क्योंकि वह छोटा है और पलट कर मुझे पीट नहीं सकता। मैं उसे इसलिए पीटता हूं क्योंकि मैं अपने बॉस से डरता हूं। जब वह मुझे दफ्तर में डपटता है तो घर लौटकर मैं अपना गुस्सा, अपने बेटे पर निकालता हूं।

अगर माता-पिता खुद से यह सब पूरी ईमानदारी से कह सकें, तो उन्हें बच्चों को पीटने की ज़रूरत भी न लगे। क्रूरता, अज्ञानता और

खुद से नफ़रत करने की भावना से जन्मती है। क्रूरता दूसरों को तकलीफ़ देने में संतोष पाने वाले को अपने विकृत स्वभाव को पहचानने से भी बचाती हं

हिटलर की जर्मनी में कॉन्संट्रेशन कैम्पों में यहूदियों पर जो अत्याचार हुए वे सब विकृत यौन प्रवृत्तियों वाले लोगों द्वारा किए गए। बच्चे को घर या स्कूल में पीटना ठीक वैसा है जैसा कॉन्संट्रेशन कैम्पों में यहूदियों को यातना देना। अगर वहां यह यातना का मूल कारण यौन विकृति थी, तो शायद घरों और स्कूलों में मारपीट में आनंद लेने वाले की भावना का भी यही कारण हो।

मानसिक क्रूरता को झेलना, शारीरिक क्रूरता झेलने से कहीं ज्यादा मुश्किल है। सरकारी कानून से स्कूलों में मार-पिटाई पर तो पाबंदी लगाई जा सकती है, पर कोई भी कानून उस व्यक्ति तक नहीं पहुंच सकता जो मानसिक यातना देता है। माता-पिता की कड़वी और द्वेषपूर्ण जबान बच्चे को इतना नुकसान पहुंचा सकती है, जिसका बखान नहीं किया जा सकता। हम उन पिताओं को पहचानते ही हैं जो अपने बेटों पा फब्तियां कसते हैं। (अरे सत्यानाशी, कोई भी काम ढंग से किया नहीं जाता तुमसे।) ऐसे पुरुष अपनी पत्नियों के प्रति अपनी नफरत जताने के लिए लगातार नुक्ताचीनी करते हैं। ऐसी पत्नियां भी होती हैं जो अपने पति व बच्चों को डांट-डपट कर उन पर हुक्म चलाती हैं।

एक खास तरह की मानसिक क्रूरता वे पति दर्शाते हैं, जो अपी पत्नि की नफरत बच्चों पर निकालते है।

कई बार शिक्षक तिरस्कार और तानों के माध्यम से मानसिक क्रूरता जताते हैं। किसी भयभीत और निरीह बच्चे पर फब्तियां कसते समय उनकी अपेक्षा यह रहती है कि बाकि बच्चे उस पर ज़ोर-ज़ोर से हंसे।

बच्चे कभी क्रूर नहीं होते, बशर्ते उनकी किसी गहन भावना का दमन न किया गया हो। आज़ाद बच्चे खुद से नफरत नहीं करते। इसलिए वे दूसरों से भी घृणा नहीं करते, क्रूर नहीं होते।

हरेक नन्हें 'दादा' का जीवन किसी न किसी तरह तोड़ा-मरोड़ा गया होता है। अक्सर वह दूसरों के साथ वही करता है जो उसने झेला होता है। हर पिटाई के साथ बच्चे में दूसरों को पीड़ा देने की इच्छा जगती है या फिर वह दूसरों को वही पीड़ा देता है।

जिन बच्चों का दमन किया जाता है उनके मजाक भी क्रूर होते हैं। समरहिल में मैंने किसी को उल्लू बनाने की वारदातें बिरले ही देखी हैं। ऐसी जो घटनाएं हुई हैं वे निजी स्कूल से आए नए छात्रों के दिमाग की उपज रही हैं। कभी-कभार छुट्टियों के बाद, घरेलू दमन झेलकर लौटने पर बच्चे, छेड़छाड़, साइकिल छुपाना जैसी हरकतें करते हैं। पर यह दौर सप्ताह भर से ज्यादा नहीं चलता। समरहिल का हंसी-मज़ाक अमूमन दयापूर्ण ही होता है। इसका कारण यही है कि बच्चों को अपने शिक्षकों से प्रशंसा और प्यार मिलता है। जब नफ़रत और भय की ज़रूरत न रहे तो बच्चे अच्छा व्यवहार करते हैं।

अपराधवृत्ति

कई मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चा जन्म से अच्छा या बुरा नहीं पैदा होता। उसमें परोपकार और अपराध, दोनों ही वृत्तियां मौजूद होती हैं। मेरा मानना है कि बच्चे में अपराध या द्वेष की स्वाभिव वृत्ति नहीं होती। बच्चे में अपराध वृत्ति विकृत प्रेम के रूप में उभरती है। यह क्रूरता की क्रांतिकारी अभिव्यक्ति है। प्यार की कमी ही इसकी जड़ है।

एक दिन मेरा एक नौ वर्षीय छात्र अपने आप खेल रहा था। वह धीमी आवाज में गुनगुना रहा था (मैं मां को मार डालना चाहता हूं।) यह अवचेतन आचरण था। क्योंकि उस वक्त वह एक नाव बना रहा था। सो उसका पूरा ध्यान नाव बनाने में लगा हुआ था। सच्चाई यह है कि उसकी मां अपनी जिंदगी जीती है और उससे मिलने भी बिरले ही आती है। वह अपने बेटे को प्यार नहीं करती। यह बात वह अवचेतन रूप से समझता है।

पर इस प्यारे से लड़के ने अपनी ज़िंदगी की शुरुआत हिंसक विचारों से नहीं की थी। यह तो वही पुरानी कहानी है, अगर मुझे प्यार नहीं मिलता तो नफ़रत ही सही। बच्चों में अपराध के प्रत्येक उदाहरण की जड़ में प्रेम का अभाव होता है। नौ साल के एक दूसरे छात्र के मन में जहर का डर सा था। उसे डर यह लगता था कि उसकी मां उसे ज़हर दे डालेगी। वह अक्सर कहता था, (मैं जानता हूं कि तुम्हारा इरादा क्या है, तुम मेरे खाने में ज़हर मिला दोगी।) शायद मानसिक रूप से बीमार इस बच्चे के मन में मां और छोटे भाई को ज़हर खिलाने की इच्छा जगती होगी। उसका डर बदले का डर था। मैं मां को ज़हर देना चाहता हूं। कहीं वह बदले में मुझे जहर न खिला दे।

अपराध नफरत की अभिव्यक्ति है। बाल अपराधवृत्ति का अध्ययन अंततः इस अध्ययन में बदल जाता है कि आखिर बच्चा क्योंकर नफ़रत करने लगता है। यह आहत अहं का सवाल होता है।

हम इस तथ्य नज़रअंदाज नहीं कर सकते कि बच्चे मुख्यतः अहंकारी होता है। उसके लिए दूसरा कोई महत्वपूर्ण नहीं होता। जब उसका अहं संतुष्ट होता है तो उसमं अच्छाई पनपती है। पर अहं भूखा हो तो वह पनपता है जिसे हम अपराध वृत्ति कहते हैं। अपराध समाज से बदल लेता है क्योंकि समाज ने उसके अहं को प्यार देकर नवाजा नहीं होता।

अगर इंसान आपराधिक वृत्ति के साथ पैदा होता, तो मध्यवर्ग के भद्र परिवारों में भी उतने ही अपराधी पैदा होते जितने वंचित कच्ची बस्तियों में। पर संपन्न लोगों को अपने अहं की अभिव्यक्ति के अधिक पैदा होते हैं। पैसे से मौज-मस्ती खरीदी जाती है, सुसंस्कृत परिवेश मिलता है। अपनी संस्कृति और अपने परिवार के प्रति गर्व की भावना आती है। यह सब व्यक्ति के अहं को पालते-पोसते हैं। पर गरीबों का अहं भूखा रह जाता है। चंद ही गरीब बच्चे जीवन में किसी तरह की विशिष्टता हासिल कर पाते हैं। अपराधी बनकर गुंडा बन कर या दादा बन कर भी विशिष्टता हासिल की जा सकती है।

कई लोग मानते हैं कि खराब फिल्में देखने से बच्चे अपराधी बनते हैं। मुझे यह दूरदर्शी नज़रिया नहीं लगाता। मुझे शंका है कि कोई फिल्म किसी को भ्रष्ट कर सकती है। किसी नवयुवक को एक फिल्म किसी अपराध को करने का कोई तरीका ज़रूर सुझा सकती है। पर

अपराध वृत्ति का कारण पहले से मौजूद होता है। एक फिल्म किसी अपराध कला का जामा पहना सकती है। पर जिसने पहले से अपराध करने का विचार नहीं किया हो उसे अपराध करने की बात नहीं सुझा सकती।

अपराध पहले स्तर पर एक पारिवारिक मामला है। दूसरे स्तर पर समुदाय का। हममें से जो ईमानदार होंगे वे ये स्वीकार करेंगे कि अपनी कल्पनाओं में हमने अपने परिवार की हत्या की है। मेरी एक छात्रा थी जो अपने परिवार के सभी सदस्यों की अचानक मौत की कल्पना करती थी। खासकर अपनी मां की।

ऐसी हत्यारी इच्छाओं के मूल में सत्ता और ईर्ष्या होती है। कोई भी बच्चा सत्ता नहीं सह सकता। पर चार से सोलह वर्ष की उम्र में इतने बच्चों का दमन होता है कि मुझे आश्चर्य इस बात से ही होता है कि दुनिया में जितनी हो रही हैं, उससे अधिक हत्याएं क्यों नहीं होतीं।

बच्चे में सत्तापान की इच्छा दरअसल प्रशंसा और प्रेम पाने की इच्छा होती है। बच्चा अपनी चेष्टाओं से प्रशंसा और ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए जो अंर्तमुखी बच्चे होते हैं, जो भीरू होते हैं, जिनमें मेल-जोल बढ़ाने की क्षमता नहीं होती उनमें अपराधिक विचार मिलते हैं। एक साधारण दिखने वाली लड़की मेहमानों के सामने नाचती अपनी छोटी बहन को देख, उसकी भयानक मृत्यु की कल्पना कर सकती है।

जो बच्चे बर्हिमुखी हैं उन्हें नफरत करने के कम कारण मिलते हैं। वें हंसते हैं, नाचते हैं, गप्पें लगाते हैं। देखने-सुनने वालों की प्रशंसा उन्हें संतुष्ट करती है।

अंतर्मुखी बच्चे एक कोने में बैठे सोचते रहते हैं कि क्या कैसे होना चाहिए। मेरे स्कूल का जो सबसे अंतर्मुखी बच्चा है, वह हमारी सामाजिक संध्याओं में कोई हिस्सा नहीं लेता, कभी गाता-गुनगुनाता नहीं है। बच्चे जब एक-दूसरे के साथ धक्कमपेल करते हैं, वह उस खेल तक में शामिल नहीं होता। जब वह मेरे पास व्यक्तिगत पाठों के लिए आता है, तो वह मुझे बताता है कि एक निहायत उम्दा जादूगर उसका हुक्म मानता है। अगर वह कहे तो जादूगर तुरंत एक रोल्स रॉयस गाड़ी उसकी खिदमत में पेश कर दे। एक दिन मैंने उसे एक कहानी सुनाई कि समरहिल के सारे बच्चे दुर्घटना के बाद एक द्वीप में फंस गएं लगा उसे कहानी पसंद नहीं आई। मैंने कहा कि वह कहानी में मनचाहा बदलाव कर सकता है। उसने कहा कि कहानी कुछ यों बदल दीजिए कि अकेला मैं बच जाऊं।

हम सब इस प्रवृत्ति से परिचित हैं यह प्रवृत्ति है दूसरों को धकेल कर या गिरा कर खुद ऊपर चढ़ने की। एक चुगलखोर की यही मानसिकता होती है, (सर, टॉमी गाली बक रहा था।) यानि मैं गाली नहीं बकता, मैं तो बिल्कुल अच्छा लड़का हूं।

कल्पना में अपने दुश्मन को मारने और सच में उसका खून कर डालने में केवल कुछ डिग्री का ही अंतर है। जिस स्तर तक हम सबमें प्यार की भूख है, हम सब संभावित अपराधी हैं। मैं पहले इस बात पर इतराया करता था कि मनोवैज्ञानिक तौर-तरीकों के कारण मैं बच्चों की अपराधवृत्ति से छुटकारा दिला पाता हूं। पर मुझे लगता है कि दरअसल यह श्रेय प्रेम को ही देना चाहिए। यह ढोंग करना कि मैं नए छात्र को प्यार करने लगता हूं, गलत होगा। पर इतना ज़रूर है कि बच्चे यह समझते हैं कि मैं उनके अहं का सम्मान करता हूं, इसलिए उन्हें चाहता भी हूं।

अपराधिकता का वास्तविक इलाज है, बच्चे को वह जैसे है वैसा बने रहने की इज़ाज़त देना। यह मैंने सालों पहले उस वक्त सीख लिया था जब मैं होमर लेन के 'लिटिल कॉमनवैल्थ' में गया था। उसने अपराधी बच्चों को वे जैसे थे, वैसे बनाने की आज़ादी दी, और वे सुधर गए। कच्ची बस्तियों में अपने अहं की तुष्टि के लिए, सबका ध्यान खींचना हो तो यह असामाजिक आचरण द्वारा ही किया जा सकता है। लेन ने मुझे बताया था कि ये बाल अपराधी अदालत में अपना बयान देते समय गर्व से चारों ओर नज़र डालते हैं। पर लेन के साथ जाकर जिन बाल-अपराधियों ने कृषक समूह बनाया, उन्होंने अपने लिए नए मूल्य पाए, सामाजिक मूल्य पाए, अच्छे मूल्य पाए। डोरसेट फार्म में जो लेन ने कर दिखाया मेरे लिए वह अपने आप में इस बात का पर्याप्त सबूत है कि बच्चों में जन्मजात अपराध वृत्ति नहीं होती।

मुझे एक नया लड़का याद आता है जो डोरसेट फार्म से भागा था। लेन उसके पीछे-पीछे दौड़े और उसे पकड़ने में सफल रहे। लड़के की पिटने की आदत थी। उसने बचाव में बांह से चेहरा ढंक लिया। लेन मुस्कुराए और उसकी जेब में कुछ पैसे डाले।

(यह किसके लिए?) लड़के ने हकलाते हुए पूछा।

लेन ने कहा, (ट्रेन से घर लौटो, पैदल न जाना।) वह लड़का उसी रात कॉमनवैल्थ में लौट आए।

मैं इस तरीके के बारे में सोचता हूं ओर तब अधिकांश सुधार गृहों के कठोर कायदे-कानूनों के बारे में। कानून दरअसल अपराधी बनाता है। पिता की कठोर आवाज में घर का कानून तमाम पाबंदियां लगा, बच्चे के अहं को दबाता है। राज्य का कानून, घरेलू कानून की, अवचेतन यादें जगाता है।

दमन हमेशा अवज्ञा जगाता है। स्वभाविक है कि अवज्ञा बदले की भावना पैदा करती है। अगर हमें अपराध खत्म करने हैं तो हमें वे सब चीजें खत्म करनी होंगी जो बच्चों में बदला लेने की इच्छा जगाती हैं। हमें बच्चे के प्रति प्यार और सम्मान दर्शाना होगा।

चोरी

हमें दो तरह की चोरियों में फर्क करना होगा : एक सामान्य बच्चे द्वारा की गई चोरी और किसी मनोरोगी द्वारा की गई चोरी।

एक साधारण बच्चा भी चोरी करता है। ऐसा, वह कुछ पाने के लोभ में करता है। या फिर अपने दोस्तों के साथ मिलकर कुछ जोखिम उठाने की इच्छा से करता है। उसके मन में 'मेरा' और 'तेरा' का फर्क पक्का नहीं होता। एक उम्र तक समरहिल के कई बच्चे ऐसी चोरियां करते हैं। उन्हें उम्र के इस चरण को जी लेने की छूट दी जाती है।

कई स्कूली मास्टरों ने अपने बगीचों पर बात करते समय मुझे बताया कि उनक छात्र उनके फल चुराते हैं। समरहिल के बड़े से बगान के पेड़, फलों से लदे रहते हैं। पर हमारे बच्चे बिरले ही फल चुराते हैं। कुछ समय पहले स्कूल की आमसभा में दो बच्चों पर फल चुराने

का आरोप लगाया गया। वे नए लड़के थे। जब उन्हें अपनी आत्मा की आवाजों से मुक्ति मिल गई तो फल चुराने में उनकी कोई रुचि नहीं रही।

स्कूल की चोरियां अधिकतर सामूहिक होती हैं। इससे लगता है कि दरअसल जोखिम उठाने की इच्छा की इसमें प्रमुख भूमिका होती है। बल्कि इतना ही नहीं इसमें दूसरों के सामने प्रदर्शन करने, अपनी जुगत-भिड़त की और नेतृत्व की क्षमता दिखाने की इच्छा से सबही जुड़े होते हैं।

बिरले ही कोई एकल चोर दिखता है। अमूमन ऐसा चोर एक चालाक लड़का होता है, जिसका चेहरा फरिश्तों सा भोलाभाला होता है। वह समरहिल में अक्सर बच जाता है क्योंकि हमारे यहां कोई ऐसा चुगलखोर नहीं है जो उसका राज बता दे। चेहरे सक किसी चोर को पहचाना नहीं जा सकता। हमारे यहां एक अबोध चेहरे और आंखों वाला एक लड़का है। मुझे शक यह है कि भंडारघर से कल रात जो फलों का डब्बा गायब हुआ उसके बारे में उसे सब पता है।

इस सबके बावजूद तेरह साल की उम्र में चोरी करने वाले तमाम बच्चे, बड़े होकर ईमानदार नागरिक बनते हैं। सच्चाई यह लगती है कि हम जितना सोचते हैं, उससे कहीं ज्यादा समय बच्चों को बड़े होने में लगता है। यहां बड़ा होने से मेरा मतलब सामाजिक व्यक्ति बनने से है।

बच्चा दरअसल आत्म-केंद्रित होता हैं यह चरण करीब-करीब वय: संधि की उम्र तक चलता हैं उस वक्त तक वह अपनी पहचान को दूसरों के साथ नहीं जोड़ पातां 'मेरा-तेरा' का विचार वयस्क विचार है। बच्चे जब परिपक्व होते हैं तभी उनमें यह विचार विकसित होता है।

अगर बच्चों को प्यार मिले, वे आज़ाद हों, तो समय के साथ वे अच्छे और ईमानदार ही बनते है। हो सकता है कि आपको लगे कि बात को अति सरल बना कर कहा जा रहा है। पर मैं व्यवहार और इस सिद्धांत में आड़े आने वाली परेशानियों से परिचित हूं।

समरहिल में मैं ऑइस-बाक्स या पैसों का डिब्बा खुला नहीं छोड़ सकता। हमारे स्कूल की आमसभा में बच्चे एक-दूसरे पर संदूक खोलने का आरोप लगाते हैं। समुदाय में एक ही चोर हो तो पूरा समुदाय ताले-चाबी वाला बन जाता है। पचपन साल पहले विश्वविद्यालय के छात्रों के कमरे में, मैं अपने ओवरकोट की जेब में कोई किताब छोड़ने से डरता था। मैंने यह भी सुना है कि कुछ संसद सदस्य अपने कोटों और ब्रीफकेस मे कोई कीमती सामान छोड़ने से हिचकिचाते हैं।

व्यक्ति के विकास में ईमानदारी का विचार काफ़ी बाद में, निजी संपत्ति की अवधारणा के साथ, विकसित हुआ। ईमानदारी के बारे में एक सच है, भय। किसी प्रकार की अमूर्त ईमानदारी मुझे अपने आयकर के बारे में झूठ बोलने से नहीं रोकती। बल्कि जो रोकता है वह है पकड़े जाने पर अपमान का डर। यह भय कि मेरी साख मिट्टी में मिल जाएगीं घर और कौम बरबाद हो जाएगीं

अगर किसी भी मसले पर कोई नियम बनता है तो यह मान कर चलना चाहिए कि लोग उसके विपरीत आचरण करते रहे हैं। जिस देश में पूर्ण शराब बंदी हो चुकी हो, वहां यह नियम नहीं होगा कि शराब पीकर वाहन चलाना जुर्म है। सभी देशों के चोरी-डकैती, धोखाधड़ी आदि के जो कानून हैं, वे इसी विश्वास पर आधारित हैं कि मौका मिला, तो लोग चोरी-डकैती और धोखाधड़ी करेंगे। और यह सच भी है।

सभी वयस्क कम या अधिक बेईमान होते हैं। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो कस्टम अधिकारी की नज़र बचा कर कुछ सामान साथ न ले आते हों। उससे भी कम ऐसे लोग होंगे जो आयकर बचाने के लिए हेरा-फेरी न करते हों। फिर भी उनमें से हरेक सचमें इस बात से परेशान हो उठेगा कि उसके बेटे ने एक धेला चुराया है।

दूसरी ओर, एक-दूसरे के साथ लेन-देन में लोग काफी ईमानदार होते हैं। किसी के यहां खाने पर जाने पर उनका चांदी का एक चम्मच चुरा लेना आसान होता है। पर यह विचार शायद ही मनमें उठे। पर अगर आपके वापसी टिकट को, टिकट जांचने वाले ने पंच न कर दिया हो, तो उसे फिर से इस्तेमाल करने की बात आप ज़रूर सोच सकते हैं। दरअसल वयस्क, एक व्यक्ति और एक संस्था में, चाहें वह निजी हो या सरकारी अंतर करते हैं बीमा कंपनी को धोखा देने में कोई हर्ज नहीं माना जाता पर परचून का सामान बेंचने वाले को धोखा देने की बात भी नहीं सूझती। पर बच्चे ऐसा कोई अंतर नहीं करते। वे छात्रावासों में अपने साथ रहने वाले लड़कों, अपने शिक्षकों, यहां तक कि दुकानों तक से कुछ उठा लेते हैं। सभी बच्चे शायद चोरी न करें, पर चुराई गई चीजों में हिस्सेदारी बांटने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं होतीं ज़ाहिर है कि ऐसी बेईमानी जितनी गरीब बच्चों में मिलती है, उतनी ही संपन्न परिवारों के बच्चों में भी।

मैंने पाया है कि मौका मिलने पर कुछ बच्चे चोरी करते हैं। बचपन में मैंने चोरी इसलिए नहीं की क्योंकि मुझे पूरी तरह अनुकूलित कर दिया गया था। चोरी का मतलब था पकड़े जाने पर जम की धुलाई और नरक की आग में निरंतर जलना। पर जो बच्चे मेरी तरह आसानी से डरने वाले नहीं हों, स्वाभाविक है कि चोरी करेंगे। फिर भी मैं कहता हूं कि प्यार के वातावरण में पले-बढ़े बच्चे चोरी करने की उम्र पार करने के बाद ईमानदार इंसानों के रूप में परिपक्व होंगे।

दूसरी तरह की चोरी आदतन या विवशता में की जाने वाली चोरी, बच्चे में मनोरोग का प्रमाण है। अमूमन यह प्यार की कमी की निशानी होती है। इसका उद्देश्य अवचेतन होता है। जो घोषित बाल अपराधी हैं, उनमें से हरेक बच्चे को लगता है कि उन्हें कोई नहीं चाहता है। ऐसी चोरी किसी मूल्यवान वस्तु को पा लेने की कोशिश का प्रतीक है। चाहे पैसे चुराए जाएं, या गहने, या कुछ और, यह प्रेम चुराने की अवचेतन कोशिश हैं इसका इलाज यही है कि बच्चे को भरपूर प्यार दिया जाए। जब मैं, अपनी तम्बाकू चुरा लेने वाले बच्चे को कुछ पैसे देता हूं, तो मैं उसके चेतन विचारों को नहीं, उसकी अवचेतन भावना संबोधित करता हूं। संभव है कि वह यह सोचे कि मैं निहायत बेवकूफ हूं। पर जो वो सोचता है उससे फर्क नहीं पड़ता है। फर्क पड़ता है उससे, जो वह महसूस करता है। समय के साथ चोरी-चपाटी बंद हो जाती है, क्योंकि जिस प्रेम को वह अवचेतन रूप से चुरा रहा था वह उसे स्वत: मिलने लगता है। फिर उसे चोरी की दरकार नहीं रहती।

इस संदर्भ में मैं उस लड़के का वाकया बताना चाहता हूं जो हमेशा दूसरे बच्चों की साइकिल चलाया करता था। आम सभा में उस पर

आरोप लगा कि वह दूसरों की साइकिल काम में ले, निजी संपत्ति के नियम को लगातार तोड़ता है। फैसला हुआ, वह गुनहगार है, सज़ा दी जाए। सज़ा थी, समुदाय को कहा गया उसके लिए एक साइकिल खरीदने के लिए सब चंदा करें। समुदाय ने चंदा दिया।

चोरी के बदले ईनाम देने की बात को मैं सीमित करना चाहूंगा। अगर बच्चे की मनोवृत्ति घटिया है, या उसका भावनात्मक विकास रुक गया है, तो इसका उल्टा असर होगा। अगर उसका माथा चढ़ा हुआ है तो उसे प्रतीकात्मक उपहार से फायदा नहीं होगा। समस्यात्मक बच्चों के साथ काम करते समय मैंने पाया है कि प्रायः हरेक नन्हें चोर की चोरी के बदले दिए गए पुरस्कार के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया रही। केवल उन्हीं परिस्थितियों में असफलता हासिल हुई, जहां चोरी वाला बच्चा समझ-बूझ कर चोरी कर रहा था, जिसको पुरस्कार की आड़ में छिपे इलाज से, सुधारा नहीं जा सकता था। स्थिति उस समय और पेंचीदा हो जाती है जब चोरी, माता-पिता के प्रेम के अभाव और यौन भावनाओं के दमन के कारण की जाती हैं। इस श्रेणी में वे लोग आते है। जिन्हें चोरी का रोग (क्लैप्टोमैनिया) होता है। शिक्षक अपने स्तर पर ऐसे बच्चों की पूरी मदद नहीं कर सकते। दमन को शुरू करने वाले होते हैं, माता-पिता, वे अगर प्रतिबंध लगाना बंद करें तो बच्चा सुधर सकता है।

मेरे स्कूल में एक बार एक सोलह साल का लड़का भेजा गया। वह जब स्टेशन पर उतरा तो उसके हाथ में आधा टिकट था, जो उसके पिता ने लंदन में यात्रा के लिए खरीदा था। यानि उसकी उम्र कम बताते हुए। जिन बच्चों को बेईमानी की आदत पड़ चुकी है, उनके माता-पिता से मैं कहना चाहूंगा कि वे अपने गिरहबान में झाकें। पता करने की कोशिश करें कि उनके किस आचरण ने बच्चे को बेईमान बनाया है।

जब माता-पिता बच्चों की बेईमानी के लिए बदमाश दोस्तों, फिल्मों की हिंसा, या पिता के सेना में होने की वजह से बच्चे पर नियंत्रण की कमी आदि को दोष देते हैं, तो वे दरअसल भूल करते हैं। जो बच्चा घर में प्रेम और प्रशंसा के साथ पलता है, यौन के प्रति जिसका दृष्टिकोण सहज रूप में विकसित हो पाता है, उन पर इन तमाम कारणों का असर सीमित या न के बराबर पड़ता है।

मुझे पता नहीं कि बच्चों कके जो सामाजिक क्लीनिक खोले गए हैं वहां नियमित रूप से जाने का छोटे चोरों पर क्या असर पड़ता है। मैं इतना भर जानता हूं कि उनके तौर-तरीके कठोर नहीं हैं और वहां के सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों को समझने की कोशिश करते हैं। उन पर नैतिक फैसले नहीं देते, न ही चरित्र सुधारने के नाम पर उन्हें डांटते-फटकारते हैं। पर वहां काम करने वाले बाल-मनोवैज्ञानिक व प्रोबेशन अधिकारियों के प्रयास मानसिक रूप से बीमार बच्चों के घर द्वारा बाधित होते हैं। लगता है सफलता तब ही मिलती है जब मनोवैज्ञानिक और अधिकारी बच्चे के प्रति मां-बाप का आचरण बदल पाते हैं। क्योंकि ये छोटे चोर दरअसल हमारे बीमार समाज की बीमारी के प्रतीक हैं। व्यक्तिगत स्तर पर चाहे कितना भी इलाज क्यों न किया जाए, वह एक खराब घर, कच्ची बस्ती की गलियों, और एक विपन्न परिवार का असर धो नहीं सकेगा।

यह बिल्कुल सच बात है कि पांच से पंद्रह साल के अधिकांश बच्चों को ऐसी शिक्षा मिल रही है जो सिर्फ दिमाग को संबोधित करती है। उनके भावनात्मक जीवन से किसी का कोई सरोकार नहीं होता। जब कि किसी मनोरागी बच्चे में भावनात्मक उतार-चढ़ाव ही उसे चोरी करने पर मज़बूर करता है। स्कूल में पढ़ाए जाने बाल विषयों का ज्ञान या अज्ञान उसके अपराध में कोई भूमिका नहीं निभाता।

सीधा-साधा सच यह है कि कोई भी सुखी व्यक्ति लगातार कुछ चुराने पर मजबूर नहीं होतां जो सवाल आदतन चोरी करने वाले बच्चों के संदर्भ में पूछे जाने चाहिए वे हैं : उसकी पृष्ठभूमि क्या है? क्या उसका घर-परिवार सुखी है? क्या उसके माता-पिता उससे हमेशा सच बोलते रहे? धर्म या यौन को लेकर उसके मन में अपराधबोध तो नहीं है? क्या उसे लगता है कि उसके माता-पिता उससे प्यार नहीं करते? उसे चोर बनाने के लिए उसके भीतर का कौन सा नरक जिम्मेदार है। ज़ाहिर है कि हमारे जज उसे जिस नरक में ढूसेंगे वह उसके आंतरिक नरक को खत्म नहीं कर सकेगा।

मानसिक इलाज किशोर चोरों की समस्याओं का समाधान कर पाए यह आवश्यक नहीं है। उससे बच्चे को मदद ज़रूर मिलेगी। शायद वह अपने कुछ भयों या नफरतों से मुक्त भी हो पाएगा। पर जब तक नफरत का बीज उसके वातावरण में बना रहेगा, वह किसी भी वक्त अपनी पुरानी स्थिति में लौट सकता है। पर अगर उसके साथ उसके माता-पिता को भी मानसिक इलाज दिया जाए तो संभवतः अधिक सफलता मिलेगी।

मेरे पास एक समय एक बड़ा सा बच्चा था जिसकी मानसिक आयु दो या तीन साल की ही थी। वह दुकानों से चोरी करता था। मैंने सोचा कि पहले दुकानदार को आगाह कर मैं उसके साथ दुकान में जाऊं और उसकी मौजूदगी में कुछ चुराऊं। उस लड़के की नज़र में मैं उसके पिता के समान भी था और खुदा भी। मेरा विचार यह था कि उसका पिता उससे नाखुश था और चोरी का कारण भी शायद यही था। मैंने सोचा कि अगर वह अपने नए पिता-खुदा को चोरी करते देखेगा तो चोरी के बारे में फिर से विचार करेगा। मेरी अपेक्षा यह थी कि वह मेरी चोरी का जोरदार विरोध करेगा।

किसी मनोरोगी बच्चे को चोरी की आदत से छुटकारा दिलाने का मुझे उसके अनुमोदन करने के अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं लगता। मनोरोग विरोधाभास से उपजे दबाव का परिणाम है, जहां बच्चे को यह कहा गया हो कि उसे किसी चीज को चाहना नहीं चाहिए, पर जिसे वह दरअसल चाहता है। मैंने पाया है कि ऊपर से लादी गई आत्मा की आवाज, जब ढीली पड़ती है तो बच्चे अधिक खुश और बेहतर बन पाते हैं।

अपराध

बंदूकों और औजारों की तरह हाथ में पहने जाने वाले पीतल के दस्तानों के इस युग में अधिकारी बाल अपराध को लेकर पूरी तरह उलझे हुए हैं, और उसे रोकने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। अखबारों में आए दिन इस समस्या से निपटने के तमाम सुझाव छपते हैं। किशोरों को सुधारगृहों में भेजना, जहां ड्रिल और सज़ा के कठोर नियम हों, एक मुश्किल तरीका है। मैंने एक चित्र देखा था, जिसमें

लड़कों को भारी लट्ठो कंधों पर रखवा कर कवायद करवाई जा रही थी। ऐसी जगहों में किसी के कोई अधिकार माने ही नहीं जाते।

मैं मानता हूं कि ऐसे नरक में कुछ महीने गुजारने पर कुछ संभावित अपराधी रोके जा सकते हैं। पर ऐसा करना समस्या की जड़ तक नहीं पहुंचता। बल्कि भय यह है कि वह किशोरों को स्थाई रूप से समाज से नफरत करने वालों में बदल दे।

आज से तीस साल पहले होमर लेन ने लिटिल कॉमनवैल्थ नामक सुधार गृह द्वारा सिद्ध कर दिया था कि बाल-अपराधियों को प्रेम से जीता जा सकता है, सत्ता उनके पक्ष में हो तो जीता जा सकता है। लेन ने लंदन की अदालत से उन लड़के-लड़कियों को छांटा था जो पूरी तरह असामाजिक थे, गुंडों या ठगों के रूप में अपनी पहचान पर उन्हें घमंड था। ऐसे लाइलाज बच्चे लिटिल कॉमनवैल्थ में आए जहां उन्हें स्व-शासित समुदाय, स्नेह और अनुमोदन मिलां समय के साथ ये बच्चे नेक और ईमानदार नागरिक बने। उनमें से कई को मैं अपना दोस्त मानता था।

अपराधी बच्चों को समझने और उनसे निपटने में लेन बेमिसाल था। वह उन्हें इसलिए सुधार सका क्योंकि वह उन्हें लगातार प्यार और समझ देता रहा। उसने हरेक अपराध कृत्य में छिपे उद्देश्य तलाशे क्योकि उसका विश्वास था कि हरेक अपराध के पीछे मूलत: कोई नेक इरादा रहा होगां उसने पाया कि बच्चों से कोरी बातचीत बेकार है। इससे सिर्फ क्या किया गया केवल इसकी गिनती होती है। उसका मानना था कि अगर किसी बच्चे का सामाजिक आचरण खराब हो तो उसे अपनी इच्छाओं को भरपूर जी लेने देना चाहिए। उसके पास आए बच्चों में से एक, जाबेज ने, एक बार सारे प्याले-प्लेटें तोड़ डालने की नाराजगी भरी इच्छा जताई। लेन ने उसे लोहे का सरिया थमाया और चालू हो जाने को कहा। जाबेज ने अपनी भड़ास निकाली। पर अगले ही दिन वह लेन के पास आया और कोई जिम्मेदारी भरा और अधिक वेतन वाले काम की मांग की। लेन ने जानना चाहा कि उसे ज्यादा पैसों की ज़रूरत क्यों है। जाबेज ने कहा, (मैं उन प्याले-प्लेटों की कीमत चुकाना चाहता हूं।) लेन का स्पष्टीकरण यह था कि तोड़फोड़ से जाबेज के कई अंर्तविरोध और मानसिक कुंठाएं चरमरा कर गिर गईं। जिंदगी में पहली बार सत्ता में बैठे किसी व्यक्ति ने उसे गुस्सा निकालने के लिए प्याले तोड़ने पर प्रोत्साहित किया। इस कृत्य का एस पर सकारात्मक भावनात्मक असर हुआ होगा।

होमर लेन की लिटिल कॉमनवैल्थ से जुड़े सभी बाल-अपराधी शहर की कुख्यात कच्ची बस्तियों से थे। पर मैंने उनमें से एक के बारे में भी यह नहीं सुना कि सुधरने के बाद गुंडागर्दी की जिंदगी की ओर लौटे। मैं लेन के उपाय को प्यार की राह कहता हूं। और किसी अपराधी को नाटकीय सज़ा देने को नफरत का रास्ता। नफ़रत ने किसीके, किसी मर्जका इलाज कभी नहीं किया। मेरा निष्कर्ष यही है कि नाटकीय तरीका किसी किशोर को सुधार नहीं सकेगा। मैं यह बखूबी जानता हूं कि अगर मैं आज एक जज होता और मेरे सामने एक अकड़ा, अपराधी किशोर होता तो मुझे यह नहीं सूझता कि मैं उसका क्या करूं? मुझे यह कहते शर्म आती है कि आज लिटिल कॉमनवैल्थ जैसा कोई दूसरा सुधारगृह हमारे देश में नहीं है। लेन की 1925 में मृत्यु हो गई थी और हमारी सरकार ने इस अनोखे इंसान से कुछ भी नहीं सीखा।

फिर भी कहना होगा कि हाल के चंद वर्षों में हमारे प्रोबेशन अधिकारियों ने बाल-अपराधियों को समझने की वास्तविक इच्छा जताई है। वकीलों के विरोध के बावजूद मनोवैज्ञानिकों ने भी आम जनता को यह सिखाया है कि बाल-अपराध का कारण बदमाशी नहीं बल्कि रोग है, जिसमें रोगी को समझ और संवेदनशीलता की ज़रूरत होती है। हवा का रुख नफरत की ओर न होकर प्रेम की ओर है। अटूट नैतिक नाराजगी के बदले समझने की कोशिश की ओर है। यह हवा धीमी है। पर धीमी हवा भी कुछ संक्रमण तो बहा ले जा सकेगी। समय के साथ इसका वेग बढ़ेगा।

मुझे किसी भी ऐसे प्रमाण का पता नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि हिंसा, या क्रूरता या नफरत से किसी व्यक्ति को अच्छा बनाया जा सका है। एक लंबे अर्से के दौरान काम करते हुए मैंने कई समस्यात्मक बच्चों के साथ काम किया है, जिनमें से कई बाल-अपराधी भी थे। मैंने देखा कि वे कितने दुखी और नफ़रत से भरे होते हैं। मेरे प्रति वे अहंकारी और श्रृद्धाहीन व्यवहार करते हैं, क्योंकि मैं एक शिक्षक हूं, पिता की जगह हूं, उनका दुश्मन हूं। मैंने उनकी तनावपूर्ण नफ़रत और उनका अविश्वास झेला है। पर समरहिल में ये संभावित बाल-अपराधी स्वशासित समुदाय में खुद पर शासन करते हैं। वे सीखने के लिए स्वतंत्र हैं, खेलने के लिए भी। जब वे चोरी करते हैं तो पुरस्कार पाने की संभावना भी रहती है। उन्हें कोई उपदेश की घुट्टी नहीं पिलाता, इहलौकिक या पारलौकिक सत्ता का भय नहीं दिखाता। कुछ ही सालों में ये नफरत से भरे बच्चे प्रसन्न सामाजिक प्राणियों के रूप में दुनिया में वापस लौटते हैं। जहां तक मुझे पता है, समरहिल में जिन बाल-अपराधियों ने सात साल बिताए हों, उनमें से एक भी जेल नहीं भेजा गया है, न उसने कभी बलात्कार किया है, या असामाजिक व्यक्ति बना है। उन्हें मैंने नहीं सुधारा है, उन्हें सुधारने वाला है वातावरण। समरहिल का वातावरण विश्वास देता है, सुरक्षा देता है। इसमें संवेदनशीलता है, यही दोषारोपण नहीं होता, यहां कोई किसी पर फैसला नहीं सुनाता।

समरहिल के बच्चे स्कूल से निकलने पर न तो अपराधी बनते हैं, न ही गुंडाटोली के सदस्य। इसलिए क्योंकि उन्हें बिना भय, सज़ा, और उपदेशों के, गुंडागर्दी की सहज वृत्तियों को जी लेने का अवसर दिया जाता है। उन्हें एक स्थिति के विकसित हो स्वभाविक रूप से दूसरी स्थिति में पहुंचने की छूट दी जाती है।

मुझे पता नहीं कि कोई वयस्क अपराधी की प्रेम के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी। निश्चित है कि चोरी के ईनाम से उसका इजाल नहीं हो पाएगा। यह बात मुझे उतनी ही पक्की तरह पता है जितनी यह बात कि उसे जेल भेजने से भी उसका इलाज नहीं किया जा सकेगा। इलाज की आशा तभी हो सकती है जब अपराधी की उम्र कम हो। फिर भी पंद्रह साल के किशोर को भी अगर आज़ादी दी जाए तो वह सुधर कर अच्छा नागरिक बन सकता है।

एक बार समरहिल में एक बारह साल का बच्चा आया। उसे उसके दुराचरण के कारण कई स्कूलों से निकाला जा चुका था। यही बच्चा हमारे यहां एक प्रसन्न, रचनात्मक व सामाजिक बच्चे में बदला। अगर उसे किसी सुधारगृह में भेजा जाता, तो वहां की दमनकारी सत्ता के नीचे वह निश्चित रूप से खत्म हो जाता। अगर किसी समस्यात्मक बच्चे के लिए आज़ादी इतना कुछ कर सकती है, तो फिर

उन लाखों-लाख सामान्य बच्चों के लिए आज़ादी क्या कुछ नहीं कर सकती जो पारिवारिक दमन के कारण विकृत हो जाती है।

तेरह वर्षीय टॉमी एक बड़ी भारी समस्या था। वह चोरी करता था, तोड़फोड़ करता था। एक बार छुट्टियों के दौरान वह घर नहीं जा सका, हमने उसे स्कूल में ही रखा। दो महीनों तक वह समरहिल में अकेला रहा। उसका आचरण बढ़िया था। हमें खाने-पीने की चीजों और रूपए-पैसों पर ताला-चाबी नहीं लगाने पड़े। पर जैसी ही उसकी टोली लौटी उसने भंडार गृह पर धावा बोला। इससे यही सिद्ध होता है कि एक व्यक्ति के रूप में और एक समूह के सदस्य के रूप में बच्चा दरअसल दो भिन्न व्यक्ति होता है।

सुधार गृहों के शिक्षक मुझे अक्सर बताते हैं कि असामाजिक किशोर की बढ़त सामान्य बच्चों की तुलना में कम होती है। मैं कहना चाहूंगा कि भावनात्मक रूप में भी वे सामान्य से कम होते हैं। एक समय था जब मैं यह मानता था कि बाल-अपराधी दरअसल एक कुशाग्र बच्चा होता है जिसकी रचनात्मक उर्जा असामाजिक कृत्यों में इसलिए झलकती है, क्योंकि उसे अभिव्यक्त करने का कोई रचनात्म तरीका उसके पास नहीं होता। उसे कुंठाओं और अनुशासन से मुक्त करें, तो वह ज़रूर चतुर, रचनात्मक यहां तक कि कुशाग्र बच्चा बन सकेगा। पर मैं गलत था, दुखद रूप से गलत था। बाल-अपराधियों के साथ सालों-साल बिताने के बाद मुझे एक ही बच्चा याद आता है जो बाद में कुछ कर गुज़र सका। उनमें से कई का आचरण और बेईमानी ज़रूर सुधर सकी, और वे नियमित नौकरियां करने लगे। पर एक भी अच्छा विद्वान या कलाकार, कुशल इंजिनियर या बढ़िया अभिनेता नहीं बना। जब उनकी असामाजिक प्रवृत्तियां खत्म हो गईं तो वयस्क अधिकांश मरे-मरे से और उबाऊ बने। उनमें किसी तरह की, आगे बढ़ने की इच्छा नहीं थी।

जब भी बच्चों को अज्ञानी मां-बाप के साथ खराब वातावरण में जीना पड़ता है वह अपनी असामाजिकता को पूरी तरह जी नहीं पाता। अगर गरीबी और कच्ची बस्तियां खत्म कर दी जाएं, माता-पिता का अज्ञान मिटा दिया जाए तो सुधारगृहों की ज़रूरत कम हो जाएगीं

बाल-अपराधों का इलाज दरअसल समाज के अपने नैतिक अपराधों और उनके प्रति नैतिक उदासीनता के अलाज से ही हो सकता है। हमें हमारे सामने उपस्थित दो पक्षों में से एक चुनना है। हम चाहें तो अपने बाल-अपराधियों को घृणा भरे नरक के रास्ते धकेलें या फिर प्रेम की राह चुनें।

मुझे कुछ पल यह कल्पना करने दीजिए कि मैं आंतरिक मामलों का सचिव हूं, और शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने की असीमित ताकत मेरे पास है। मुझे एक सामान्य कार्यक्रम, या कहें स्कूलों के लिए एक पंच-वर्षीय योजना बनाने दें।

सचिव के रूप में मैं सारी तथाकथित सुधार शालाओं को खत्म कर दूंगा और उनके बदले पूरे देश में शैक्षणिक बस्तियां बसाऊंगा। मैं शिक्षकों और आवासगृह माताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण केंद्र खुलवाउंगा। हरेक बस्ती पूरी तरह स्वशासित होगी। शिक्षकों को विशेष सुविधाएं नहीं होंगी। वे वही खाएंगे, वहीं ही रहेंगे जैसे उनके छात्र-छात्राएं। जो भी सामुदायिक काम बच्चे करेंगे उसके लिए उन्हें मजदूरी मिलेगी। इन बस्तियों का नारा होगा आज़ादी। किसी किस्म का धर्मोपदेश, नैतिक उपदेश, या सत्ता वहां नहीं होगी।

धर्म को इसलिए दूर रखूंगा क्योंकि धर्म सिर्फ बोलता है, उपदेश देता है, भावनाओं का शुद्धिकरण और दमन करता है। धर्म पाप की कल्पना वहां करता है, जहां दरअसल पाप न हो। वह स्वतंत्र इच्छा शक्ति की इच्छा को मानकर चलता है। कई बच्चे अपनी प्रवृत्तियां के इस कदर गुलाम होते हैं कि उनकी इच्छाशक्ति स्वतंत्र रह ही नहीं पाती।

धार्मिक अनुकूलन के बदले मैं, बिना क्रूरता और अन्याय के, भावनाओं को प्रेम से अनुकूलित करने की पैरवी करूंगा। शैक्षणिक बस्तियों में इस आदर्श को पाने का एक तरीका होगा जहां तक हो सके बिना सत्ता की नफ़रत के नौजवानों को अपने हाल पर छोड़ना। मेरा अनुभव बताता है कि यही अकेला रास्ता है।

शिक्षकों को अपने छात्र-छात्राओं के समान बनना सिखाया जाएगा, उनसे श्रेष्ठ बनना नहीं। सम्मान के लबादे और व्यंग्य का वे त्याग करेंगे। वे किसी तरह का भय नहीं जगाएंगे। उन्हें असीमित धैर्यशील स्त्री-पुरुष बनना होगा, जो दूर तक देख सकें। अंततः आने वाले परिणामों में उन्हें आस्था रखनी होगी।

शिक्षकों की मुख्य विशेषता होगी अपने छात्र-छात्राओं में आस्था दर्शा पाने की क्षमता। बच्चों के प्रति शिक्षकों का व्यवहार सम्मानजनक होगा, वे उनसे चोर-उच्चकों सा व्यवहार नहीं करेंगे। पर साथ ही उन्हें व्यवहारिक भी बनना पड़ेगा। वे किसी आदतन चोरी करने वाले को समुदाय के कोषाध्यक्ष की जिम्मेदारी नहीं सौपेंगे। शिक्षकों को उपदेश झाड़ने के लोभ पर काबू पाना होगा। उन्हें यह सीख लेना होगा कि शब्दों से अधिक प्रभावशाली, कृत्य होते हैं उन्हें प्रत्येक बाल/किशोर अपराधी का इतिहास जानना होगा, उसकी पूरी पृष्ठभूमि को समझना होगा।

बुद्धिमानी जांचने वाले परीक्षणों को इस बस्ती में गौण स्थान दिया जाएगा। क्योंकि वे महत्वपूर्ण संभावनाओं की ओर इंगित नहीं कर पाते। वे भावनाओं, रचनात्मकता, मौलिकता और कल्पनाशक्ति का सही आकलन नहीं कर पाते।

शिविर का वातावरण जेल जैसी संस्था का न होकर, अस्पताल जैसा होगा। जिस प्रकार कोई चिकित्सम किसी यौन रोग से पीड़ित व्यक्ति के प्रति नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाता उसी प्रकार शिविर का स्टाफ भी यह मानकर चलेगा कि सभी अपरीधी रोगी हैं। अस्पताल से एक ही अर्थ में यह बस्ती फर्क होगीं यहां सामान्यतः किसी को कोई दवाएं नहीं दी जाएंगी। मनोचिकित्सा से संबंधित दवाएं भी नहीं। इलाज वातावरण में मौजूद वास्तविक प्रेम का ही नतीजा होगा। स्टाफ को मानवीय प्रकृति में भी वास्तविक आस्था दर्शानी होगी। यह सच है कि कई दृष्टांतों में असफलता ही हाथ लगेगी। कुछ लोग लाइलाज सिद्ध होंगे। समाज को उनसे निपटना होगा। पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम होगी। अधिकांश बाल-अपराधी प्रेम, सहिष्णुता व विश्वास के वातावरण में सुधर सकेंगे।

अविश्वासी लोगों को मैं होमर लेन और एक किशोर अपराधी के वाकिए की याद दिलाना चाहूंगा, जिसन आजीवन कारावास भुगत रहे एक कैदी को जूते बनाने की एक नई मशीन लाने न्यूयार्क भेजा। वह नई मशीन के पूरे हिसाब-किताब के साथ लौटा। वॉर्डन ने पूछा, (तुम्हें न्यूयॉर्क में भागने का नायाब मौका मिला था, तुमने उसका फायदा क्यों नहीं उठाया।) कैदी सिर खुजलाता, कुछ देर सोचता रहा, तब बोला, (पता नहीं, शायद इसलिए क्योंकि आपने मुझ पर भरोसा किया।)

जेल और सज़ा, इंसानों में इस अनूठी आस्था की जगह नहीं ले सकते। किसी उलझे हुए व्यक्ति के लिए इस विश्वास का अर्थ यह होता है कि कोई उन्हें नफ़रत की जगह प्यार दे रहा है।

बच्चों का इलाज

इलाज, उपचार करने वाले से अधिक बीमार पर निर्भर होता है। उपचारक के पास जाने वाले तमाम लोगों में असफलता इसलिए हासिल होती है क्योंकि उन्हें उनके रिश्तेदार घेर-घार कर उपचारक के पास भेजते हैं। अगर कोई पुरुष अपनी पत्नी को मनोविश्लेषण के लिए जाने पर मजबूर करता है, तो उसकी पत्नी गुस्से से भर जाती है। (मेरे पति मुझे नापसंद करते हैं, मुझमें बदलाव लाना चाहते हैं मुझे यह बात अच्छी नहीं लग रही है।)

यही परेशानी उस वक्त भी आती है, जब किशोर अपराधी को जबरन उपचार के लिए भेजा जाता है। किशोरों या वयस्कों का उपचार तब ही कारगर हो सकता है, जब रोगी स्वयं इलाज चाहे।

अधिकांश बाल-अपराधियों को अगर सिर्फ आज़ादी दी जाए, उपचार न भी जोड़ा जाए, तो भी उनकी अधिकतर समस्याएं सुलझ सकेंगी। मैं आज़ादी की बात कह रहा हूं, स्वेच्छाचारिता की नहीं, भावुकता की भी नहीं। पर जो रोगी हैं वे केवल आज़ादी से नहीं सुधारे जा सकेंगे। जिन लोगों का मानसिक विकास रुक गया है उन पर आज़ादी का कोई असर नहीं होगा। पर बच्चों के छात्रावास में यह ज़रूर कारगर होगी, बशर्ते उसका उपयोग हम समय हो।

कुछ साल पहले एक लड़का मेरे पास भेजा गया। वह पक्का चोर था और चोरी भी चतुराई से करता था। उसके आने के बाद मेरे पास लिवरपूल से एक फोन आया, "मैं फलां-फलां (एक नामी-गिरामी नाम) बोल रहा हूं। मेरा भतीजा आपके स्कूल में है। उसने पत्र लिखकर मुझसे पूछा है कि वह चंद दिनों के लिए मेरे पास आ सकता है क्या? आपको कोई आपत्ति तो नहीं हैं"

"बिल्कुल नहीं," मैंने जवाब दिया, "पर उसके पास पैसे तो नहीं हैं। उसका किराया कौन देगा? बेहतर हो कि आप उसके माता-पिता से संपर्क करें"

अगली दोपहर लड़के की मां का फोन आया कि (अंकल डिक) ने उनसे बात की है। उनकी ओर से आर्थर लिवरपूल जाना चाहे तो जा सकता है। किराया भी पता कर लिया गया है। वो इतना होता है, क्या मैं उतने पैसे उसे फिलहाल दे दूंगा? दोनों ही फोन स्थानीय फोन-बूथ से किए गए थे उसने अपने वृद्ध अंकल और अपनी मां की आवाजों की हूबहू नकल की थी। उसने मुझे फांस लिया। इससे पहले कि मैं उल्लू बनाया गया हूं, मैं उसे पैसे दे चुका था।

मैंने अपनी पत्नी से इस पर चर्चा की। हम दोनों सहमत थे कि उससे पैसे वापस लेना गलत होगा, क्योंकि यही तो उसके साथ अब तक होता आया था। मेरी पत्नी ने पुरस्कार की बात सुझाई। मैं देर रात उसके कमरे में गया।

"आज तो तुम्हारा भाग्य बड़ा अच्छा है?" मैंने कहां

"बेशक" उसका जवाब था।

मैंने कहा,"लेकिन जितना तुम सोच रहे हो, उससे भी ज्यादा अच्छा दिन, तुम्हारे लिए रहा है।"

"क्या मतलब?" उसने जानना चाहां

"अरे, तुम्हारी मां का दुबारा फोन आया था," मैंने सहजता के साथ जोड़ा। "उन्होंने कहा कि किराए के बारे में उनसे गलती हो गई है, और मैं तुम्हे दस पाउंड और दूं।" यह कहकर मैंने उसके बिस्तर पर दस पाउंड का नोट उछाला और वो कुछ कहे इससे पहले ही चलता बना।

अगली सुबह वो लिवरपूल गया। जाते वक्त वो एक खत छोड़ गया जो मुझे उसके जाने के बाद दिया जाना था। उसकी शरुआत थी, (प्रिय नील, तुम मुझसे बेहतर अभिनेता हो।) घटना के कई सप्ताह बाद तक वो मुझसे पूछता रहा कि मैंने उसे और पैसे क्यों दिए थे।

एक दिन मैंने उसे जवाब दिया, "जब मैंने पैसे दिए तो तुम्हें क्या लगा," वो कुछ देर ध्यान से सोचता रहा, फिर धीमे से बोला, "पता है, मुझे जबरदस्त धक्का लगा। मैंने खुद से कहा कि मेरी जिंदगी में यह पहला इंसान है जो मेरे पक्ष में है।" यह उदाहरण है उस लड़के का जिसे उस प्रेम का अहसास हुआ, जिसमें अनुमोदन का पुट था। अमूमन यह चेतना काफी देर से आती है। जिसका इलाज किया जा रहा हो उसे इलाज के प्रभाव का अक्सर कुछ हल्का सा अहसास ज़रूर होता है। पर वो कई महीनों बाद होता है।

पिछले दिनों मेरा बिगड़ैल बाल-अपराधियों से काफी पाला पड़ा। मैंने उन्हें हमेशा चोरी के बाद पुरस्कृत किया। कई बच्चों को, जब वे सुधर गए, तो इस बात का अहसास हुआ कि मेरी ओर से जो अनुमोदन जताया गया उससे उन्हें मदद मिलीं

बच्चों के साथ काम करते समय मनोवैज्ञानिक गहराइयों में उतरना पड़ता हैं उसके आचरण के पीछे छिपे गहरे उद्देश्य तलाशने पड़ते हैं। कोई लड़का असामाजिक है, पर आखिर क्यों? स्वाभाविक ही है कि उसके हरकतें आड़े आती हैं, हमें उनसे खीज होती है। संभव है वह दादागिरी करता हो, शायद चोर हो, शायद दूसरों को पीड़ा देने में उसे मजा आता हो। पर क्यों भला? शिक्षक खीज कर उस पर चीखेगा, उसे सज़ा देगा, उसे बुरा-भला कहेगा। पर शिक्षक की खीज ज़ाहिर हो जाने के बावजूद समस्या जस की तस बनी रहेगी। कठोर अनुशासन द्वारा शिक्षा की जो मांग फिलहाल फिर से सिर उठा रही है, उससे केवल लक्षणों का इलाज हो सकेगा, पर अंततः उसका प्रभाव शून्य रहेगा।

मां-बाप एक बच्ची को समरहिल लाते हैं, जो झूठ बोलती है, चोरी करती है, जो दूसरों की बुराई करती है, चुगली लगाती है। वे उसके दोषों की लंबी फेहरिस्त मुझे बताते हैं। पर बच्ची को यह जताना भारी भूल होगी कि मुझे उसके बारे में कुछ बताया गया है। मुझे उस वक्त तक धीरज रखना होगा, जब वह बच्ची खुद स्कूल के, मेरे व दूसरों के प्रति आचरण से, अपने बारे में बताए।

सालों पहले एक लाइलाज, समस्यात्मक बच्चा मेरे पास लाया गया। उसके माता-पिता का जोर था कि उसे किसी मनोचिकित्सक के पास जांच के लिए ले जाया जाए। मैंने विशेषज्ञ से अलग से आधा घंटा बात की उन्हें सब कुछ विस्तार समझाया। तब बच्चे को अंदर बुलाया गया। विशेषज्ञ महोदय ने भिड़ते ही कहा, (नील साहब बता रहे हैं कि तुम एक बेहद खराब लड़के हो।) यह उनकी मनोचिकित्सा थी।

इसी तरह की अज्ञानी, पूरी तरह गलत विधि का सामना मुझे बार-बार करना पड़ा है। एक मेहमान ने एक बार एक बच्चे से, जो अपने कद को लेकर कुंठित था कहा, (उम्र के हिसाब से तुम्हारा कद काफी कम है।)

किसी दूसरे मेहमान ने एक लड़की से कहा, (तुम्हारी बहन तो बड़ी चतुर है, है ना?) बच्चों से व्यवहार की कला की परिभाषा है 'यह जानना, कि क्या नहीं करना चाहिए'।

पर दूसरी ओर बच्चे को यह जताना भी ज़रूरी है कि आपको उल्लू नहीं बनाया जा सकता। आप किसी बच्चे को लगातार अपनी टिकटें चुराने दें, तो यह निरर्थक होगा। कि 'तुम्हारी मां ने बताया था कि तुम टिकट चुराते हो' से फर्क है 'मैं जानता हूं कि तुमने मेरी टिकटें ले ली हैं'।

बच्चों के माता-पिता को उनके बारे में कुछ भी लिखने से मैं घबराता हूं। डरता हूं कि कहीं वह पत्र इधर-उधर पड़ा न रह जाए और छुटियों में घर आए बच्चे के हाथ लग जाए। पर इससे भी ज्यादा डर इस बात का लगता है कि कहीं वे बच्चे को खत में यह न लिखें कि, (नील ने बताया है कि तुम कक्षाओं में बिल्कुल नहीं जा रहे हो, और तुमने सबकी नाक में दम कर रखा है।) अगर ऐसा होता है, तो बच्चा मुझ पर कभी भी विश्वास नहीं करेगा। सो अमूमन मैं जितना कम बता सकता हूं, उतना बताता हूं। केवल जब मां-बाप बिल्कुल भरोसेमंद और जागरूक होते हैं, तब ही मैं कुछ विस्तार से चर्चा करता हूं।

मैं सामान्यत: बच्चे के पक्ष में सही काम करता हूं, क्योंकि मेरे लंबे अनुभव ने मुझे सही रास्ता भी बताया है। इसमें मेरी कोई चतुराई नहीं है, न यह कोई जन्मजात गुण है। यह केवल अभ्यास की बात है। शायद कहीं इस बात का भी सर पड़ता हो कि मैं जो अनावश्यक चीजें हैं, उनकी ओर से आंखें मूंद लेता हूं।

बिल एक नया लड़का है। वो किसी लड़के के पैसे चुराता हैं पीड़ित लड़का मुझसे पूछता है, (अगली आम सभी में मैं उस पर आरोप लगाऊं?) बिना सोचे मैं कहता हूं, (ना, मुझ पर छोड़ दो।) मैं उससे बाद में तर्क-वितर्क कर सकता हूं। बिल के लिए आज़ादी की बात नई है। वह इस नए वातावरण का पूरी तरह अभयस्त नहीं हो सका है। वह खूब कोशिश कर रहा है कि वह लोकप्रिय हो, उसके साथी उसे स्वीकार करें। इसी चक्कर में वह शान बघारता है, दिखावा करता, फिर रहा है। उसकी चोरी की बात सार्वजनिक करने का मतलब होगा, उसमें शर्म और भय जगाना। संभव है कि इससे बच्चे में विरोध भावना जगे और तब असामाजिक व्यवहार भड़क उठे। इसके विपरीत अगर वह अपने पिछले स्कूल में, गुंडा नेता रहा हो जिसे शिक्षकों के विरुद्ध अपनी खुराफ़ातों पर नाज़ हो तो वह आरोप लगने के बाद और अधिक इतरा सकता है। यह जताने की कोशिश कर सकता है कि वह कितना महान है।

किसी दूसरे समय कोई बच्चा कहता है, (मैं मेरी पर आरोप लगाऊंगा कि उसने मेरे क्रेयॉन चुराए हैं,) तो मैं कोई खास रुचि नहीं लेता हूं। इसलिए, क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरी स्कूल में दो वर्षों से है और परिस्थिति से खुद निपटने की ताकत उसमें है।

तेरह साल का एक नया लड़का जो हमेशा से पढ़ाई से नफ़रत करता रहा है, समरहिल आता है। कुछ हफ्ते वह जी भरकर मटरगश्ती करता है। तब ऊब कर मेरे पास आता है और कहता है, (मैं पढ़ाई के लिए जाऊं?) मैं जवाब दे सकता हूं, (इससे मेरा क्या लेना-देना?) यह मैं इसलिए कहता हूं क्योंकि उसे अपनी आंतरिक इच्छाओं को तलाशना हैं पर संभव है कि किसी दूसरी बच्ची से मैं कहूं, (हां, अच्छा विचार है,) क्योंकि संभव है कि उसका घरेलू और स्कूली जीवन एक समय-सारिणी के इर्द-गिर्द चला हो और वह तय नहीं कर सकती हो कि वह क्या चाहती है। मुझे उस वक्त तक इंतजार करना होगा, जब तक वह स्वावलंबी नहीं बन जाती। पर जवाब देते समय मैं इन व्यक्तिगत पक्षों पर कोई सचेत सोच-विचार नहीं करता।

प्रेम का अर्थ है उसके पक्ष में होना। प्रेम का अर्थ है अनुमोदन। मैं जानता हूं कि बच्चे यह धीरे-धीरे समझते हैं कि आज़ादी का मतलब स्वेच्छाचारिता से भिन्न है। पर यह सच्चाई वे समझ सकते हैं, समझते भी हैं। अंतत: आज़ादी हमेशा कारगर होती है - प्राय: हरेक दृष्टान्त में।

प्रसन्नता की राह

फ्रायड ने कहा था कि हर तरह का मनोरोग दरअसल यौन भावनाओं के दमन से जन्मता है। सो मैंने खुद से कहा, (मेरे स्कूल में ऐसा नहीं होगा।) फ्रायड ने कहा कि अवचेतन मन, चेतन मन से कहीं अधिक ताकतवर होता है। मैंने कहा, (मेरे स्कूल में हम बुराई नहीं करेंगे, सज़ा नहीं देंगे, नैतिक उपदेश नहीं देंगे। हरेक बच्चे को उसकी अंत: प्रेरणा के अनुरूप जीने का मौका देंगे।)

धीरे-धीरे मैं समझ पाया कि फ्रायड को मानने वाले ज्यादातर लोग, बच्चे की स्वतंत्रता को न तो समझते हैं और न ही उसमें विश्वास करते हैं। वे आज़ादी को स्वेच्छाचारिता मानने की गलती करते हैं। जिन बच्चों को अपने सा बने रहने की इजाजत ही नहीं मिली, जिन्होंने दूसरों की आज़ादी का सम्मान करना भी नहीं सीखा, ऐसे बच्चों का वे इलाज कर रहे थे। मेरा पक्का विश्वास है कि फ्राइडियनों ने अपने सिद्धांत ऐसे ही गड्ड-मड्ड बच्चों पर आधारित किए।

मैंने धीरे-धीरे पाया कि मेरा क्षेत्र, इलाज का न होकर, रोगनिरोध का है। इसका पूरा अर्थ समझने में मुझे सालों लगें तब पता चला कि समरहिल में आने वाले बच्चे इलाज की वजह से नहीं, बल्कि आज़ादी की वज़ह से सुधरते हैं। मैंने पाया कि मेरा मुख्य काम है चुपचाप बैठे रहकर, उस सब का अनुमोदन करना है जिसे बच्चा अपनी कमी मानकर नफरत करता है। अर्थात बच्चे पर लादा गया विवेक जो उसमें खुद के प्रति नफरत जगाता है, उसको मुझे तोड़ना है।

जब कोई नया बच्चा आता है और गालियां देता है तो मैं मुस्कुरा कर कहता हूं, (जारी रखो, गाली देने में कोई बुराई नहीं हैं) यही मैं झूठ बोलने, चोरी करने और उनकी तमाम दूसरी खुराफ़ातों के लिए भी कहता हूं जो सामाजिक रूप से गलत मानी जाती हैं

कुछ समय पहले एक नन्हा हमारे पास आया। वो मुझपर सवालों की झड़ी बरसाने लगा : (उस घड़ी की क्या कीमत दी थी आपने?) (कितने बजे हैं?) (स्कूल का सत्र कब खत्म होगा?) वो बच्चा बड़ा तनावग्रस्त रहता था और कभी अपने सवालों के जवाब तक नहीं सुनता था। मुझे पता था कि वो उस अहम सवाल से लगातार कतरा रहा था जिसका जवाब दरअसल उसे चाहिए था।

एक दिन वो मेरे कमरे में आया और उसने तमाम सवाल पूछे। मैंने एक भी जवाब नही दिया और पढ़ता रहा। दर्जन भर सवालों के बाद मैंने नज़रें उठाई और सहज भाव से कहा, "यह पूछा तुमने? बच्चे कहां से आते हैं?"

वो उठ खड़ा हुआ, उसका चेहरा लाल हो गया। "मुझे यह नहीं जानना है कि बच्चे कहां से आते हैं," इतना कह कर वो कमरे से भाग गया।

दस मिनट बाद वो फिर लौटा। "यह टाइपराईटर आपने कहां से खरीदा? इस सप्ताह सिनेमाघर में कौन सी फिल्म चल रही है? आपकी उम्र क्या है? (कुछ देर चुप्पी के बाद) बता भी दीजिए कि बच्चे आते भला कहां से हैं?"

मैंने उसे सही जवाब दियां उसके बाद वो मुझसे कोई सवाल पूछने नहीं आया।

दिमागी कचरे की सफाई मेहतन का काम है। इस तरह का काम इसलिए सहनीय बन जाता है क्योंकि किसी दुखी बच्चे को सुखी, और आज़ाद बच्चे में बदलते देखना आनंददायक है। पर इसका एक दूसरा पहलू भी है। जहां अथक परिश्रम के बाद भी सफलता हाथ नहीं लगती। साल भर एक बच्चे के साथ काम करें और खुश हों कि उसकी चोरी की आदत छूट गई है। और तब अचानक वह फिर से चोरी करे और शिक्षक पूरी तरह से हताश हो जाए। मैंने किसी छात्र के सुधरने पर खुद को बधाई दी ही होगी कि कोई शिक्षक पांच मिनट बाद ही दौड़ता हुआ आया और उसने बताया कि, (टॉमी ने फिर चोरी करना शुरू कर दी है।)

मनोविज्ञान कुछ-कुछ गौल्फ के खेल जैसा है। वहां आप एक चक्कर में दो सौ बार गेंद को मारते हैं, आप नाराज होते हैं, गुस्से में उसका बल्ला भी तोड़ डालते हैं, पर जैसे ही धूप से चमकती अगली सुबह सामने आती है, आप फिर से दिल में नई आशा खेलने पहुंचते हैं।

अगर आप किसी बच्चे को कोई अत्यावश्यक सच्चाई बताते हैं, या वह अपनी परेशानियां आपको बताता है तो आप दोनों के बीच एक अंतरंग रिश्ता बनता है। यानि वह अपनी सारी भावनाएं आप पर न्यौछावर करता है। जब मैं किसी छोटे बच्चे के जन्म के बारे में भ्रांतियां दूर करता हूं तो एक खास और मजबूत रिश्ता हमारे बीच बनता हैं किसी एक समय यह अंतरण नकारात्मक भी बन सकता है। तब वो नफरत का अंतरण होता हैं पर किसी भी सामान्य बच्चे के साथ यह नकारात्मक चरण अधिक समय नहीं चलतां उसके बाद जल्दी ही प्रेम का अंतरण प्रारंभ हो जाता है। बच्चे के अंतररण जल्दी ही विलय हो जाते हैं। वह कुछ समय बाद मेरे बारे में सब कुछ भूल जाता है और दूसरे बच्चों के साथ भावनात्मक रिश्ते बनाने लगता है।

समरहिल में मैं चिकित्सक भी था और मनोवैज्ञानिक भी। पर मुझे जल्दी ही समझ आ गया कि इन दोनों भूमिकाओं को एक साथ नहीं निभाया जा सकता है। अपने अधिकांश छात्रों के साथ, जो मुझे अपने राज बताते हैं, काम किया जा सकता है। वे मुझसे खीजने लगते हैं और मेरी आलोचना से भी डरते हैं। अगर मैं किसी एक के बनाए चित्र की तारीफ़ करता हूं तो दूसरों को जलन होती है। सच्चाई यह है कि मनोचिकित्सक को स्कूल में रहना ही नहीं चाहिए। उससे सामाजिक मेलजोल रखने में बच्चों की कोई रुचि नहीं होनी चाहिए।

मनोविज्ञान की सभी शाखाओं में अवचेतन की परिकल्पना को स्वीकारा गया है। अर्थात वे यह मानकर चलते हैं कि हम सबमें दबी हुई इच्छाएं, प्रेम और नफरत होती हैं, जिनके बारे में हमें पता तक नहीं होता। इसलिए किसी भी व्यक्ति का चरित्र चेतन आचरण और अवचेतन आचरण का मिश्रण होता है।

चोरी के मकसद से घर में घुसा नौजवान यह जानता है कि वह पैसे और कीमती चीजें पाना चाहता है। पर वह अपने गहरे अवचेतन उद्देश्य को नहीं जानता, जिसके चलते वह पैसे कमाने के बदले चुराने का रास्ता चुनता है। यह उद्देश्य दबा हुआ होता है इसलिए नैतिक भाषण या सज़ा उसे कभी सुधार नहीं सकते। डांट-फटकार उसके कानों तक पहुंचती है, और सज़ा उसका शरीर झेलता है। ये उपदेश और सज़ाएं बच्चे के अवचेतन उद्देश्यों तक नहीं पहुंचते जो उसके आचरण को नियंत्रित करते हैं।

इसलिए धर्म, उपदेशों के द्वारा बच्चे के अवचेतन मानस तक नहीं पहुंचता। पर अगर उसी बच्चे का पादरी, किसी रात उसके साथ चोरी करने जाए तो जो आत्म-घृणा उसके असामाजिक आचरण के लिए जिम्मेदार है, वह पिघलने लगे। ऐसा सहानुभूतिपूर्ण रिश्ता उसे दूसरी तरह से सोचने पर मजबूर करेगा। एक से ज्यादा बच्चों का इलाज उस समय संभव हुआ जब मैंने उनके साथ मिलकर पड़ोसियों की मुर्गी चुराई थी या स्कूल की तिजोरी से पैसे चुराए। जहां शब्द नहीं पहुंचते वहां कर्म पहुंचता है। यही कारण है कि बच्चे की कई समस्याएं प्रेम और अनुमोदन से सुलझती हैं। मैं यह नहीं कहता कि जिसे चोरी करने की या दूसरों को पीड़ा देने की बीमारी है वे लोग भी प्यार से सुधर जाएंगे, पर अमूमन प्यार से बच्चों में चोरी, झूठ बोलना और तोड़फोड़ को सुधारा जा सकता है। मैंने यह करके सिद्ध किया है कि आज़ादी और नैतिक अनुशासन के न होने से ऐसे तमाम बच्चों को सुधारा जा सका है जिनका भविष्य जेल ही लगता था।

वास्तविक आज़ादी जो सामुदायिक जीवन में उतरी हो, जैसे समरहिल में कई लोगों पर वही असर करती है जो किसी व्यक्ति पर मनोविश्लेषण का होता है। इससे वह उभर आता है जो अब तक छुपा था। आज़ादी ताजी हवा का वह झोंका है जो उसकी आत्मा के खुद के और दूसरों के प्रति नफरत को साफ कर देता है।

नौजवानों की इस जद्दोजहद में कोई निष्पक्ष नहीं रह सकता। हमें कोई न कोई पक्ष चुनना ही पड़ता है : सत्ता या आज़ादी, अनुशासन या स्वशासनं आधे-अधूरे कदमों से काम नहीं चलेगा। इसलिए, क्योंकि स्थिति काफी खराब है।

हरेक बच्चे को उसके माता-पिता और शिक्षक विरासत में दो में से एक स्थिति दे सकते हैं। एक वह जहां उसकी आत्मा मुक्त हो, काम में वह प्रसन्न रहे, दोस्ती में खुश हो, प्रेम में आनंदित हो। दूसरी स्थिति वह जहां वह संघर्षों से जूझता हो, खुद से, मानवता से नफरत करता हो।

प्रसन्नता कैसे दी जा सकती है? मेरा अपना जवाब है : सत्ता खत्म करें। बच्चे को उसकी तरह बनने दें। उसे इधर-उधर नहीं धकियाएं। उसे न सिखाएं। उसे भाषण न पिलाएं। उसे सुधारने की कोशिश न करें। कुछ भी करने का दबाव उस पर न डालें। संभव है आपका जवाब यह न हो। पर अगर आप मेरे जवाब को नकारेंगे तो एक बेहतर जवाब तलाशने की जिम्मेदारी भी आप पर ही है।

खण्ड 6
माता पिता की समस्याएं

प्रेम व नफ़रत

बच्चे को उसका विवेक उसके मां-पिता, शिक्षक, पादरी यानि उसके वातावरण से मिलता है। उसकी उलझनें दरअसल मानवीय स्वभाव और विवेक के बीच संघर्ष का परिणाम है। फ्रायड के पारिभाषिक शब्दों में कहें तो उसके 'सुपर ईगो' और उसके 'इड' के बीच का संघर्ष विवेक इस कदर हावी हो सकता है कि बच्चा सन्यासी बन जाए, संसार और शरीर दोनों त्याग दे। अधिकांश दृष्टान्तों में एक तरह का समझौता होता है। यह समझौता इस कहावत में झलकता है। (सप्ताह में छह दिन शैतान की चाकरी और इतवार को भगवान की।)

प्रेम और नफरत एक दूसरे के विलोम नहीं हैं। प्रेम का विलोम है उदासीनता। घृणा प्रेम का ही दूसरा पहलू है, जो दमन के कारण घृणा में बदल जाती है। घृणा में हमेशा भय का पुट होता है। यह हम उस बच्चे में देख सकते हैं जो अपने छोटे भाई से नफरत करता है। उसकी नफरत की जड़ इस भय मेंहै कि वो मां का प्यार खो देगा। साथ ही वह भाई के प्रति मनमें उठी बदले की भावना से भी डरता है।

चौदह वर्षीय अंशी, एक विद्रोही स्वीडिश लड़की थी। जब वह समरहिल आई तो उसने शरुआत में मुझे लतियाने से की, तामि मैं नाराज हो जाऊं। दरअसल मैं उसके पिता की जगह था जिससे वो नफरत करती थी, डरती थी। उसे कभी अपने पिता की गोद नहीं मिली थी। न ही पिता ने उसके प्रति अपना प्यार ही कभी जताया था। जब उसके सहज प्यार के बदले उसके पिता ने प्रेम नहीं दिया, तो उसका प्यार नफ़रत में बदल गया। उसे समरहिल में अचानक एक नया पिता मिला जो सख्ती से व्यवहार नहीं करता था। पिता, जिससे वह डरती नहीं थी। ऐसे में उसकी नफरत उभर कर सामने आई। यह तथ्य कि अगले ही दिन उसका व्यवहार कोमल और स्नेहमय था, इस बात का प्रमाण है कि उसकी नफ़रत दरअसल परिवर्तित प्यार ही था।

अंशी द्वारा मुझ पर किए गए हमले का महत्व समझने का मतलब होगा उसके विकृत दृष्टिकोण को समझना। अंशी एकबालिका विद्यालय से आई थी जहां लड़कियां अंधेरे कोनों में लुक-छिप कर यौन चर्चा करती थीं। अपने पिता के प्रति नफरत आंशिक रूप से इसलिए भी थी क्योंकि उचित यौन-शिक्षा का कोई स्थान नहीं था। अपनी मां के प्रति भी उसके मन में नफरत थी क्योंकि उसने इस दिशा में स्वभाविक जिज्ञासा को सज़ा देकर दबाया था।

अधिकांश माता-पिता यह नहीं समझते कि सज़ा देकर वे अपने बच्चों के प्यार को नफ़रत में बदल रहे हैं। बच्चों में नफ़रत को पहचानना आसान नहीं होता। पीटने के बाद बच्चे में जो कोमल भावना दिखाई पड़ती है वह दरअसल नफरत को दबाने का नतीजा है, यह बात माताएं नहीं समझतीं। दबाई गई भावनाएं मरती नहीं हैं, केवल उस वक्त के लिए सो जाती हैं।

किशोरों के नीति उपदेश नाम से मारकस की एक पुस्तक है। मैं उसकी एक कविता की कुछ पंक्तियां प्रयोग के रूप में बच्चों को अक्सर पढ़ कर सुनाता हूं। उन पंक्तियों का भावर्थ है :

(टॉमी ने अपना घर जलते देखा
मां को लपटों मे खत्म होते देखा,
देखा कि गिरती ईंट से पिता मर गया है,
और टॉमी हंसा, और हंसता गया। तब तक, जब तक वह बीमार न हो गया।)

यह पंक्तियां बच्चों की पसंदीदा पंक्तियां हैं। जब वे इन्हें सुनते हैं, या पढ़ते हैं तो बड़े जोर से हंसते हैं। वे बच्चे भी जो अपने माता-पिता को खूब प्यार करते हैं। वे इसलिए हंसते है, क्योंकि उनके मनमें नफरत दबी होती है। वह नफरत जो पिटाई, आलोचना और सज़ा की वजह से भड़कती और दबाई जाती रही है।

अमूमन ऐसी नफरत काल्पनिक घटनाओं में उभरती हैं जिनमें माता-पिता प्रत्यक्ष रूप से जुड़े नहीं होते। एक किशोर छात्र जो अपने पिता को बेहद प्यार करता था, अक्सर यह कल्पना करता था कि वह एक शेर को गोली दाग रहा है। मैंने कहा कि वो शेर का वर्णन करे। उसे जल्दी ही यह लगने लगा कि वह शेर दरअसल उसके पिता से जुड़ा हुआ बिंब है।

एक सुबह मैंने हरेक छात्र-छात्रा को एक-एक कर बुलाया और उन्हें अपनी मृत्यु की कहानी सुनाई। हरेक चेहरे पर उस वक्त एक चमक दिखी जब मैंने अपनी शव यात्रा का वर्णन किया। वह पूरा समूह उस दोपहर बेहद खुश नज़र आया। विशाल दैत्यों के मरने की कहानियां बच्चों को इसलिए पसंद आती हैं क्योंकि वह दैत्य अमूमन पिता का बिंब होता है।

आखिर वह क्या है जो बच्चों को मनोरोगी या स्नायुरोगी बना डालता है? कई उदाहरणों में साफ़ नज़र आता है कि जब माता-पिता एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, तो बच्चे पर विपरीत असर पड़ता है। एक मनोरोगी बच्चा प्यार का भूखा होता है। वह मां-बाप को हमेशा एक-दूसरे पर गुर्राते सुनता है। संभव है कि मां-बाप अपने मन-मुटाव को बच्चे से दूर रखने की कोशिश भी करते हों। पर घर के वातावरण में, उनके बीच का तनाव हमेशा तैरता है, जिसका बच्चे को पूरा अहसास होता है। वह जो सुनता है, उससे कहीं ज्यादा वो हाव-भाव से समझता है। 'प्यारी गुड़िया', 'आंख के तारे' जैसे प्यार के संबोधनों से बहका नहीं सकते। तमाम उदाहरणों के अलावा मेरे पास ऐसे भी बच्चे आए हैं। एक पंद्रह साल की लड़की जिसे चोरी की आदत थी। उसकी मां, पिता के प्रति वफादार नहीं थी और बच्ची यह बात जानती थी।

एक चौदह वर्षीय लड़की थी, दुखी और खोई-खोई रहने वाली बच्ची। उसका रोग उस दिन से शुरू हुआ जब उसने अपने पिता को उनकी प्रमिका के साथ देखा।

एक बारह वर्षीय लड़की थी जो सबसे नफ़रत करती थी। उसके पिता नपुंसक थे और मां बदमिजाज।

एक आठ वर्षीय लड़का जो चोर था उसके माता-पिता खुल्लम-खुल्ला लड़ते थे।

नौ साल का लड़का जो काल्पनिक दुनिया में रहता था। उसके माता-पिता एक-दूसरे के प्रति अपनी नाराजगी को छुपाए रखने की कोशिश करते रहते थे।

चौदह वर्षीय लड़की, जो बिस्तर गीला करती थी उसकी मां और पिता अलग-अलग रहते थे।

नौ वर्षीय लड़का जिसे घर में बदमिजाजी के कारण संभालना असंभव था, कल्पना में खुद को महान समझता था। उसकी मां अपने विवाह से बड़ी दुखी थी।

मुझे अहसास हुआ कि किसी बच्चे को उसके मनोरोग से छुटकारा दिलाना उस वक्त कितना कठिन है, जब उसके घर का वातावरण प्रेमविहीन हो। जब कोई मां मुझसे पूछती है कि (मैं अपने बेटे/बेटी का क्या करूं?) तो मेरा जवाब होता है, (आप स्वयं मनोविश्लेषक के पास जाएं।)

कई बार दम्पत्ति मुझसे आकर यह कहते हैं कि अगर बच्चा न होता तो वे जुदा हो जाते। यह सच है कि एक-दूसरे से असंतुष्ट माता-पिता अगर जुदा हो जाएं तो अक्सर बेहतर रहता है। स्थितियां हजार गुना अधिक बेहतर होतीं। जिस विवाह संबंध में प्यार न हो तो घर-परिवार दुखी ही होता है। दुख और तनाव से भरा वातावरण बच्चे की आत्मा को मार डालता है।

दुखी वैवाहिक जीवन बिता रही माता का बच्चा अक्सर उसके प्रति घृणा दर्शाता है। वह अपनी मां को खूब तकलीफ देता है, और इसी में उसे मजा आता है। एक लड़का अपनी मां को काटता और नोचता था।

सताने के दूसरे तरीके होते हैं हमेशा मां का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना।

जो मां अपने विवाहित जीवन में खुश नहीं होती वह अपने बच्चों से पक्षपात करती है। वह अपना पूरा स्नेह किसी एक बच्चे पर उड़ेलती है। ज़ाहिर है कि एक बच्चे के लिए प्रेम बेहद महत्वपूर्ण होता है। पर असंतुष्ट मां या पिता अपने प्यार में संतुलन नहीं रख पाते। वे या तो बहुत अधिक प्यार उड़ेलते हैं या बहुत कम। यह कहना बड़ा मुश्किल है कि बहुत ज्यादा या बहुत कम में कौन सी स्थिति ज्यादा खतरनाक है।

जो बच्चा प्यार का भूखा है वह सबसे नफरत करता है वह असामाजिक होता है, सबकी आलोचना करता है। और जो आकण्ठ प्यार में डूबा रहता है वह मां की लाड़ली या लाड़ला तो बनता है पर उसकी अंतरात्मा दब्बू बन जाती है। मां एक संस्थान का प्रतीक भी बन सकती है। (जैसा एग्रोफोबिया में होता है, मातृगिरजा, मातृभूमि की अवधारणाएं इसके उदाहरण है।

मेरा तलाक कानून से कोई सरोकार नहीं है। मैं वयस्कों को कोई सलाह नहीं देना चाहता। पर बच्चों का अध्ययन करना मेरा सरोकार है। इसलिए माता-पिता को यह सलाह ज़रूर देना चाहता हूं कि एक मनोरोगी बच्चे को फिर से स्वस्थ बनाना हो तो घर के वातावरण को बदलना ज़रूरी होगा। मां-बाप को इतनी हिम्मत करनी होगी कि वे यह समझें कि बच्चों पर उनका प्रतिकूल असर पड़ रहा है। एक मां ने मुझे एक बार कहा था (अगर मैं अपने बच्चे से दो साल नहीं मिलूंगी तो मैं उसे खो दूंगी।)

(मेरा जवाब था आप उसे पहले ही खो चुकी हैं।) और सच, वे अपने बच्चे को खो चुकी थीं, क्योंकि वह घर में बेहद दुखी था।

माता-पिता की दुश्चिंताएं:

कहा जा सकता है वह मां या पिता दुश्चिंताग्रस्त हैं, जो दे नहीं सकते। यानि जो अपना प्यार, सम्मान, विश्वास अपने बच्चों को नहीं दे सकते।

हाल में एक मां अपने बेटे के पास समरहिल आई। पूरे शनिवार- इतवार उन्होंने उसका जीना दूभर कर दिया। वह भूखा नहीं था, पर वे तब तक उसके सिर पर सवार रहीं जब तक उसने पूरा खाना ठूंस न लिया। वह पेड़ पर लकड़ी का घर बना कर गंदा होकर आया, उन्होंने तुरंत उसे नहानघर में ले जाकर रगड़-रगड़ कर साफ कर दिया। उसने अपने जेब खर्च से आइसक्रीम खरीद कर खाई तो उन्होंने भाषण दे डाला कि आइसक्रीम उसके पेट को नुक्सान पहुंचाएगी। जब बच्चे ने मुझे मेरे नाम से पुकारा तो उन्होंने तुरंत टोका कि मुझे मिस्टर नील पुकारा जाए।

मैंने उनसे कहा (जब आप इतनी ही चिंताग्रस्त, रहती हैं तो आपने अपने बेटे को इस स्कूल में क्यों दाखिला दिलवाया?)

उन्होंने बेहद मासूमी से जवाब दिया (क्यों? इसलिए क्योंकि मैं चाहती हूं कि वह मुक्त और खुश रहे। मैं चाहती हूं कि वह बड़ा हो कर आत्मनिर्भर बने, उस पर बाहरी चीजों का बुरा असर न पड़े।

मैं ने जवाब में कहा, (ओह।) और सिगरेट सुलगा ली। सच उस महिला को कतई यह इल्म नहीं था, कि वे अपने बेटे पर ज्यादती कर

ही हैं, या बेवकूफ में अपने कुंठाग्रस्त जीवन की समूची दुश्चिंताएं अपने बेटे की ओर उड़ेल रही हैं।

मेरा सवाल यह है कि (इस बारे में क्या किया जा सकता है? दरअसल कुछ भी नहीं। सिवा इसके कि माता-पिता की दुश्चिंताओं से बच्चों को जो नुकसान) पहुंचता है उसके कुछ उदाहरण सामने रख दूं। इस आशा के साथ कि शायद लाख में एक मां या पिता उन्हें पढ़ कर यह कहे (अरे, ऐसे तो मैंने कभी सोचा ही नहीं। मैं तो यह माने बैठा हूं कि मैं बिल्कुल सही व्यवहार कर रहा हूं। शायद मैंने गलती की है।)

एक परेशान मां ने मुझे लिखा 'मुझे समझ ही नहीं आता कि मैं अपने बेटे का क्या करूं? वह बारह साल का है और उसने अचानक वुलवर्थ की दुकान से चोरी करना शुरू कर दिया है। कृपया मुझे बताएं कि मुझे क्या करना चाहिए।' यह बात कुछ ऐसी है कि कोई आदमी बीस साल से हर दिन दारू की एक पूरी बोतल गटकता रहा हो और तब उसे पता चले कि उसका जिगर पूरी तरह बर्बाद हो गया है। उस समय उसे यह सलाह देना निरर्थक होगा कि भाई दारू को हाथ न लगाना। इसलिए बाल व्यवहार की समस्या से ग्रस्त बच्चे की मां को मैं यही सुझाता हूं कि वे बाल-मनोचिकित्सक के पास जाए या बच्चों की क्लिनिक का पता ढूंढ वहां संपर्क करें।

यह भी संभव है कि उस पेरशान मां को जवाब में लिखूं कि (देवीजी, आपका बेटा इसलिए चोरी करता है क्योंकि उसके घर का वातावरण असंतोषजनक है। वह बड़ा दुखी है। उसे बढ़िया घरेलू वातावरण उपलब्ध करवाएं।) पर ऐसा करने पर मैं उसमें अपराधबोध जगा दूंगा। अगर वह नेक नियत रखती होगी तब भी वह अपने बेटे को अनुकूल वातावरण नहीं दे सकेगी, क्योंकि उसे पता ही नहीं होगा कि वह वातावरण को कैसे बदले। और अगर वह यह जानती भी हो तो उसमें ऐसा कर पाने के लिए आवश्यक भावनात्मक क्षमता नहीं होगी।

पर एक बात मनोचिकित्सक के दिशानिर्देश में, एक इच्छुक मां, काफ़ी कुछ बदल सकेगी। संभव है कि मनोचिकित्सक उसे अस्नेही पति से बच्चे को दूर रखने की, या सख्त, दादी-नानी, से उसे अलग करने की सलाह दे। पर जो मनोचिकित्सक बदल नहीं सकेगा, वह है उस महिला का अंतस। वह अंतस जो लगातार नीति उपदेश देने पर उसे बाध्य करता है, जो हमेशा बच्चे के पीछे पड़ी रहती है। ज़ाहिर है कि सिर्फ बाहरी वातावरण बदलने की अपनी ही सीमा होती है।

मैंने एक डरी मां का जिक्र तो कर दिया, पर मुझे एक दूसरे किस्म की मां के साथ एक साक्षात्कार याद आ रहा है, वह हमारी सात वर्षीय भावी छात्रा की मां थी। उसने जितने सवाल पूछे सभी दुश्चिंता से उपजे थे। (क्या यहां कोई इस बात का ध्यान रखता है कि बच्ची ने सुबह और रात मंजन किया है या नहीं? कोई इस पर नज़र तो रखेगा ना कि वह कहीं सड़क पर न चल दे? कोई उसे हर रात उसकी दवा तो पिलाएगा ना?) ऐसी चिंताग्रस्त मांएं अचेतन ही अपने बच्चों को अपनी अनसुलझी समस्याओं का हिस्सा बना देती हैं। एक और मां थी जो हमेशा अपनी बिटिया के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित रहती थी। वह मुझे लगातार लंबी-लंबी चिट्ठियां लिखती थी जिसमें हमेशा निर्देश होते थे कि बच्ची को क्या खाना है, क्या नहीं, कैसे कपड़े पहनाने हैं आदि-आदि। मेरे पास चिंतित माता-पिता के तमाम बच्चे रहे हैं। मैंने हमेशा पाया है कि चितित माता-पिता के बच्चे उनकी चिंताएं विरासत में पा लेते हैं। अक्सर इसका परिणाम रोगग्रस्त (हाइपोकोंड्रिया) बच्चा होता है।

मार्था का एक छोटा भाई था। माता-पिता दोनों ही हमेशा दुश्चिंताग्रस्त रहते थे। मैं अभी भी सुन पा रहा हूं कि मार्था बाग में अपने भाई को चिल्ला कर नसीहत दे रही है, 'अरे ताल में न जाना, पैर गीले हो जाएंगे।' या 'रेत में मत खेलो, तुम्हारी नई पैंट गंदी हो जाएगी।' मैंने लिखा कि मैं सुन पा रहा हूं, दरअसल मुझे लिखना चाहिए था कि जब वह हमारे स्कूल आई उस वक्त मैं सुना करता था। आजकल अगर उसका भाई, चिमनी साफ़ करने वालों जैसा लगे तो भी उसे फर्क नहीं पड़ता। पर अब भी सत्र समाप्ति के सप्ताह भर पहले उसकी पुरानी चिंताएं लौट आती हैं। क्योंकि उसे यह अहसास होता है कि वह घर के लगातार चिंताग्रस्त वातावरण में लौटने वाली है।

कभी कभी मुझे लगता है कि कठोर अनुशासन वाले स्कूल इसलिए लोकप्रिय होते हैं, क्योंकि तब छात्र-छात्राएं छुटियों में घर लौटने से बेहद खुश होते हैं। उस समय माता-पिता, बच्चों के खुश और खिले चेहरों में घर के प्रति प्यार देख पाते हैं। जबकि स्कूल के लिए उनके मन में नफरत ही होती है। पर बच्चे की नफ़रत सख़्त और कठोर शिक्षकों की ओर पलट जाती है, और उसका प्यार माता-पिता पर उमड़ता है। यहां वही मनोविज्ञान काम करता है जब मां बच्चे के मन में यह कहकर पिता के प्रति नफरत जगाती है ठहरो, 'रात पापा को लौटने दो। वे ही तुम्हें ठीक करेंगे।'

मैं अक्सर चिकित्सकों और दूसरे व्यवसायों से जुड़े पुरुषों को कहते सुनता हूं 'मैं अपने बेटों को एक बड़े निजी स्कूल मे पढ़ा रहा हूं, ताकि उनका उच्चारण बढ़िया हो और वह ऐसे लोगों से मिले, जो बाद में उसके काम आ सकें।''वे यह मान कर चलते हैं कि हमारे सामाजिक मूल्य ठीक वैसे ही बने रहेंगे जैसे पिछली पीढ़ियों के थे। भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में एक निहायत वास्तविक भय होता है।

माता पिता कठोर अनुशासन वाले स्कूल तब चाहते हैं, जब उनके घर में भी कठोर अनुशासन हो। ताकि बच्चों के दमन की घर की परंपरा स्कूलों में जारी रहें। वे बच्चे को शांत, सम्मान करने वाले और नपुंसक बनाते हैं। और फिर ऐसे स्कूल बच्चे के दिमाग को प्रशिक्षित करने का बेहतरीन काम भी करते हैं। वे उसके भावनात्मक जीवन और रचनात्मक इच्छाओं पर अंकुश लगाते हैं। ऐसे स्कूल बच्चों को सिखाते हैं कि उन्हें सभी तानाशाहों और बॉस का हुक्म मानना है। शिशुशाला से ही बच्चे के मन में डर के बीज रोपे जाते हैं। वे सत्तालोलुप कठोर शिक्षकों के अनुशासन में पनपते हैं। औसत माता-पिता बच्चे का बाहरी रूप देखते हैं। वे उसके स्कूल ब्लेजर, सतही शिष्टाचार और फुटबॉल भक्ति से खुश होते रहते हैं। वे मानते हैं कि उनका लाडला उम्दा शिक्षा पा रहा है। इस तथाकथित शिक्षा की बलिवेदी पर बच्चे के जीवन को चढ़ते देखना तकलीफ़ देता है। कठोर स्कूल केवल सत्ता की मांग करते हैं और भयभीत माता-पिता इससे खुश होते हैं।

हरेक अहं- केंद्रित सत्ता की चाह के अनुरूप एक शिक्षक का अहं भी बच्चों को अपनी ओर खींचता है। पर जरा सोचें कि शिक्षक किस कदर माटी का देवता है। वह हमेशा केंद्र में रहता है, वह आज्ञा देता है उसकी अनुपालना की जाती है। वह न्याय करता है। कक्षा में

वही बोलता है। एक मुक्तशाला में सत्ता का विचार ही खत्म कर दिया जाता है। समरहिल में यह गुंजाइश नहीं है कि शिक्षक अपने अहं का प्रदर्शन करे। वह बच्चों के मुखर अहं भाव से टक्कर नहीं ले पाता। अक्सर बच्चे मेरे प्रति आदर भाव दर्शाने के बदले मुझे 'बेवकूफ' या 'गधा' कहते हैं। अमूमन ये नाम उनके स्नेह का प्रतीक होते हैं। एक मुक्त शाला में स्नेह और प्रेम का भाव महव्पूर्ण होता है। शब्द गौण बन उठते हैं।

समरहिल में आने वाला बच्चा अमूमन एक कठोर दुश्चिंताग्रस्त घर से आता है। उसे यहां मनचाहा करने की छूट मिलती है। उसकी कोई आलोचना नहीं करता। कोई उसे शिष्टाचार बरतने को नहीं कहता। कोई उसे यह नहीं कहता कि वह इस कदर चुप रहे कि वह दिखे तो पर सुनाई न दे। ज़ाहिर है कि बच्चे को यह स्कूल स्वर्ग समान लगता है। क्योंकि एक लड़के के लिए स्वर्ग वही है जहां वह अपने समूचे अहं को अभिव्यक्त कर सके। स्वयं को अभिव्यक्त कर पाने की खुशी अक्सर उनके मनमें मुझ से जुड़ जाती है। उनकी नज़र में मैं ही वह व्यक्ति हूं जो उन्हें आज़ादी देता है। मैं वह पिता बन जाता हूं जैसा पिता होना चाहिए। दरअसल वह लड़का मुझसे प्यार नहीं करता। बच्चा असल में प्यार करता नहीं है वह तो बस प्यार चाहता है। उसके विचार जो शब्दों का रूप नहीं लेते दरअसल यह होते हैं (मैं यहा खुश हूं। वह बुढ़ऊ नील खासा भला आदमी है। वह कभी टांग नहीं अड़ाता। ज़रूर वह मुझसे प्यार करता है, नहीं तो वह मुझ पर हुकुम न चलाता।)

जब छुट्टियां होती है बच्चा स्कूल से घर जाता है। घर में वह पिता की सर्चलाइट इस्तेमाल करता है और उसे किसी कोने में भूल आता है। पिता नाराज़ होते हैं बच्चा समझ लेता है कि घर में आज़ादी नहीं है। एक लड़का मुझसे अक्सर कहा करता था 'मेरे घरवाले पुराने विचारों के हैं। मैं यहां की तरह घर पर आज़ाद नहीं हूं। मैं जब घर लौटूंगा तो मैं अपनी मां और अपने पिता को सब सिखा दूंगा।''उसने शायद यही किया होगा, क्योंकि उसका स्कूल बदल दिया गया।

मेरे कई छात्र-छात्राओं को 'रिश्तेदाराइटिस' का रोग है। फिलहाल मेरा मन है कि मैं अपने छात्र छात्राओं के कुछ रिश्तेदारों से बहसबाजी कर लूं। इनमें से दादा-नाना हैं (धार्मिक वृत्ति के), चार चाचियां-मासिंयां- बुआएं या मामियां हैं जो धार्मिक वृत्ति की होने के साथ कपट-लजालू भी हैं, दो चाचा-मामा हैं जो अधार्मिक पर नीति उपदेश देने वाले। मैंने अपने एक छात्र को उसके दादाजी के पास भेजने से मना कर दिया था क्योंकि वे हमेशा बड़े उत्साह से नरक की ज्वाला से उसे डराते थे। पर उसके मां-बाप ने कहा कि ऐसा करना संभव नहीं होगा। बेचारा बच्चा।

मुक्तशाला में बच्चे अपने रिश्तेदारों से बच जाते हैं। आजकल मैं उन्हें फटकने नहीं देता। दो साल पहले एक चाचाजी पधारे और अपने नौ साल के भतीजे को घुमाने ले गए। लड़का लौटा और भोजनागार में डबलरोटी फेंकने लगा। मैंने कहा (लगता है बाहर जाकर तुम्हें बहुत बुरा लगा है। तुम्हारे चाचा ने क्या बातें कीं।)

उसने बड़े हल्केपन से कहा 'ओह, चाचा तो ईश्वर की बात करते रहे। ईश्वर और बाइबल।'

'क्या उन्होंने बाइबल से वे पंक्तियां सुनाई जहां अपनी रोटी पानी में फेंकने का उल्लेख है?''यह पूछते ही वह हंसने लगा। तब उसने ब्रेड फेंकना बंद किया। अब जब चाचाजी पधारेंगे तो बच्चा 'अनुपलब्ध' होगा।

अपने बच्चों के माता-पिता से मुझे खास शिकायत नहीं है। हमारी खासी पटती भी है। अधिकांश माता-पिता सभी चीजों मे पूरा साथ देते हैं। कुछेक के मनमें आशंकाएं उठती हैं, पर वे फिर भी विश्वास करते हैं। मैं उन्हें अपनी पत्नी की बात साफ़ बताता हूं। मैं हमेशा साफ कहता हूं कि यही चलेगा, इसे पूरी तरह स्वीकारना होगा। मान्य न हो तो बच्चे को दाखिल ही न कराओ। जो पूरा साथ देते हैं, उनके मन में जलन का भाव नहीं उपजता। क्योंकि ऐसे में बच्चे घर में भी उतने ही आज़ाद होते हैं जितना स्कूल में।

पर जिन बच्चों के माता-पिता समरहिल के तौर-तरीकों में पूरा विश्वास नहीं करते, वे छुट्टियों में घर जाने से कतराते हैं। उनके माता-पिता उनसे काफी अपेक्षाएं रखते हैं। वे यह नहीं समझते कि एक आठ साल का बच्चा मुख्यत: सिर्फ खुद में रुचि लेता है। उसके मन में न तो सामाजिक भावना होती है न ही जिम्मेदारी का कोई भाव। समरहिल में हम उसे उसके आत्मकेंद्रितपन को अभिव्यक्ति करने का पूरा मौका देते हैं, ताकि वह उस चरण से उबर सके। हम मानते हैं कि एक दिन वह खुद-ब-खुद बदल जाएगा, क्योंकि वह दूसरों के अधिकारों और मतों का सम्मान करना सीख चुका होगा। बच्चों की नज़र से देखें तो स्कूल और घर में जो अंतर है वह काफ़ी खतरनाक होता है। विरोधाभासी विचार व अवधारणाएं उसमें द्वन्द्व पैदा करते हैं। सही भला कौन है, घर या स्कूल? बच्चे के विकास और शांति के लिए ज़रूरी है कि घर और स्कूल का उद्देश्य एक ही हो, दृष्टिकोण साझा हो।

माता-पिता और शिक्षकों में मतभेद का मुख्य कारण मुझे डाह लगता है। एक पंद्रह वर्षीय छात्रा ने एक बार मुझे कहा था (अगर मुझे अपने पापा को भयानाक रूप से खिझाना या गुस्सा दिलाना हो तो उनसे सिर्फ इतना भी कहना काफी होता है 'नील साब फलां-फलां कहते हैं।') चिंताग्रस्त माता-पिता उन सभी शिक्षकों से जलते हैं जिन्हें बच्चा प्यार करता है। और यह स्वाभाविक भी है, आखिर बच्चे भी एक तरह से आपकी संपत्ति ही होते हैं। वे माता-पिता के अहं भाव का ही हिस्सा होते हैं।

और फिर शिक्षक भी वैसे ही होते हैं, मानवीय कमज़ोरियों से भरे हुए। कई शिक्षकों के अपने बच्चे भी नहीं होते। वे अचेतन रूप से अपने छात्र-छात्राओं को गोद ले लेते हैं। अक्सर वे अजाने ही माता-पिता से बच्चा छीनने की कोशिश में जुट जाते हैं। यह ज़रूरी है कि शिक्षकों का विश्लेषण भी किया जाए। ऐसा नहीं है कि मनोविश्लेषण इन सब फसादों की रामबाण औषधि है। उसका असर सीमित ज़रूर होता है। फिर भी उससे कम से कम जमीन तैयार हो सकती है। इसका मुख्य फायदा यह है कि इसके सहारे दूसरों को समझाना आसान बन जाता है। व्यक्ति में उदारता बढ़ती है। सिर्फ इसी कारण मैं इसे शिक्षकों के लिए उपयोगी मानता हूं। जिस शिक्षक का विश्लेषण हो चुका है वह बच्चों के प्रति अपने नजरिए को समझने लगता, उसका सामना कर, खुद को सुधार सकता है।

जिस घर में भय और द्वन्द्व उपजें वह खराब है। जो चिंताग्रस्त माता-पिता अपने बच्चे के बहुत धकियाते हैं वे नाराज रहने लगते हैं। अचेतन रूप से उसके मन में यह धारणा बस जाती है कि उनका बच्चा उन्हें किसी कीमत पर नहीं जीतने देगा। पर जिस बच्चे की

पालन-पोषण दुश्चिंताओं और द्वन्दों के बीच न हुआ हो वह जीवन को एक साहसिक अभियान के रूप में स्वीकारता है।

माता-पिता की जागरूकता

जागरूकता होने का मतलब है पूर्वाग्रहों से, बचकाने दृष्टिकोणों से मुक्त होना। या कहें यथासंभव आज़ाद होना। क्योंकि बचपन में जो अनुकूलन हो जाता है, उससे पूरी तरह आज़ाद भला कौन हो पाता है? जागरूक होने का मतलब है चीजों की गहराई से समझना, सतही चीजों को छोड़ देना। बच्चों के प्रति भावनात्मक जुड़ाव के चलते यह आसान नहीं होता। 'मैंने अपने बच्चों की जिंदगी किस कदर उलझा दी है' यह रोना सैंकड़ों खतों में मैं सुनता हूं। पर शिक्षक स्वाभाविक रूप से बच्चों से कुछे दूरी बनाए रख सकता है। बच्चों को आज़ादी के मार्ग पर चला पाने में सफल होने की संभावना उसकी कहीं अधिक रहती है।

कई बार मुझे किसी पिता को खत लिखकर भी समझाना पड़ा है कि उसके समस्यात्मक बेटे को सुधारने की संभावना केवल तभी बनेगी जब वे स्वयं अपने तौर-तरीकों में भी कुछ फेरबदल करें। मुझे यह समझाना पड़ा है कि अगर टॉमी को समरहिल में न नहाने की, कपड़े न धोने की, न पढ़ने-लिखने में मन आया तो, गाली बकने आदि की छूट है, पर घर पर इस सब कारणों से उसकी पिटाई होती है, तो स्थिति असंभव बन जाती है।

मैंने कभी किसी बच्चे को उसके घर के विरुद्ध नहीं भड़काया है। अगर इन परेशान बच्चों में कोई सुधार हुआ है तो वह आज़ादी की वजह से ही हुआ है। गैर-जागरूक घर में इस चुनौती का सामना करना संभव नहीं होता। क्योंकि वहां आज़ादी का क्या असर हो सकता है, इसकी समझ ही नदारद होती है।

मैं कुछ उदाहरणों से माता-पिता और बच्चें के बीच गलत रिश्ते को उजागर करना चाहूंगा। जिन बच्चों की बात मैं यहां लिख रहा हूं वे किसी रूप में असामान्य नहीं है। वे तो बस एक ऐसे वातावरण मे मारे हैं जहां बच्चों की वास्तविक ज़रूरतों की कोई समझ नहीं है।

एक लड़की है मिलाड्रिड। वह जब भी छुट्टियों के बाद लौटती है तो वह द्वेष भरा, लड़ाका और कपट भरा, व्यवहार करती है। वह दरवाजे भड़ाक से बंद करती है, अपने कमरे की शिकायत करते हैं, अपना बिस्तर उसे ठीक नहीं लगता। और भी हजारों शिकायतों से भर जाती है। तकरीबन आधा सत्र बीतने के बाद ही उसे झेलना कुछ आसान हो पाता है। पूरी छुट्टियों वह अपने मां के, और उसकी मां उसके, पीछे पड़े रहते हैं। उसकी मां ने दरअसल एक गलत इंसान से विवाह किया है। दुनिया भर की स्कूली आज़ादी इस बच्ची को स्थाई संतोष नहीं दे सकती। सच्चाई यह है कि अगर छुट्टियों में उसका अनुभव बेहद तकलीफदेह रहा हो तो वह स्कूल लौटने पर छोटी-मोटी चोरियों भी करती है। मां को इस स्थिति के प्रति सचेत करने पर भी उसका घरेलू वातावरण बदला नहीं जा सकता। जहां जगरूकता नहीं है और घृणा पटी पड़ी है। जहां हर पल बच्ची की जिंदगी में दखलंदाजी होती है। कई बार समरहिल आने के बाद भी बच्चा अपने घर के प्रभाव से बच नहीं सकता। ऐसा प्रभाव जिसमें न तो कोई मूल्य हों, ना ही बच्चे क्या सोचते या महसूस करते हैं उसका कोई ज्ञान हो। दुर्भाग्य यह है लोगों को मूल्य सिखाए नहीं जा सकते।

आठ साल का जॉनी जब स्कूल लौटता है उसके चेहरे का हाव-भाव ही बिगड़ा होता है। वह अपने से कमजोर बच्चों को छेड़ता है, उन पर धौंस जमाता है। उसकी मां समरहिल में विश्वास करती है, पर उसके पिता कठोर अनुशासन वाले इंसान हैं। उनका हुक्म होते ही उसे उछल कर आदेश का पालन करना होता है। जॉनी बताता है कि पिता अक्सर उसे चपतियाते हैं। उनका क्या किया जाए? मुझे पता नहीं।

मैंने एक पिता को खत लिखा (आप अपने बेटे की किसी भी बात पर आलोचना न करें। ऐसा करना घातक होगा। उस पर नाराज न हो उसे डपटें नहीं। और सबसे ज़रूरी यह है कि उसे कभी कोई सज़ा न दें।) पर यही लड़का जब छुट्टियों में घर जाता है तो पिता उसे स्टेशन पर लेने आते हैं। लड़के से सबसे पहले कहते हैं (तन कर तो खड़ा हो, कुबड़ाए क्यों जा रहा है।)

पीटर की मां ने उसे जब-जब उसका बिस्तर सूखा मिलें एक अठन्नी देने की वादा किया। मैंने इसके विपरीत कदम उठाया और कहा कि बिस्तर गीला मिलने पर उसे तीन अठन्नियां मिलेंगी। पर बच्चे के मन में मेरे और मां की बात को लेकर द्वन्द्व न पैदा हो इसलिए मैंने मां को समझाया कि वह मेरे इनाम के पहले अपना 'इनाम' बंद कर दे। अब पीटर का बिस्तर स्कूल से ज्यादा घर पर गीला होता है। उसकी मानसिक परेशानी का एक हिस्सा यह है कि वह बच्चा बने रहना चाहता है। वह अपने नन्हें भाई से बेहद जलता है। उसे अस्पष्ट रूप से यह भी समझ आता है कि उसकी मां उसका इलाज करना चाहती है। पर मैं उसे यह जता देना चाहता हूं कि उसका बिस्तर गीला भी हो जाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरी तीन अठन्नियां उसे जब तक उसकी बच्चा बने रहने की ज़रूरत हो, बच्चा बने रहने को प्रोत्साहित करती हैं। उस समय तक, जब वह स्वाभाविक रूप से इस चरण से खुद-ब-खुद उबर नहीं जाता। अगर अनुशासन या घूस के सहारे उसे सुधारने की कोशिश की जाती है तो उसके मन में, इस आदत को लेकर अपराध बोध जगता है। इस बात को लेकर ही एक नैतिक मूल्य उस पर लाद दिया जाता है। एक नैतिक उपदेश झाड़ने वाला बनने से बेहतर है कि बच्चा बिस्तर गीला करे।

नन्हा जिमी छुट्टियों से लौटकर एलान करता है 'मैं इस बार एक भी कक्षा से गायब नहीं होऊंगा।' ज़ाहिर है उसके माता-पिता उस पर हाई-स्कूल परीक्षा दे डालने का दबाव डालते रहे होंगे। वह सप्ताह भर कक्षाओं में नियमित जाता है, उसके बाद वह महीने भर गोल कर जाता है। बातचीत से डाले गए दबाव की निरर्थकता इसी से सिद्ध हो जाती है। पर इससे भी खतरनाक बात यह है कि इस तरह की बातचीत बच्चे के विकास में आड़े आती है। जैसा पहले ही मैंने कहा ये बच्चे समस्याग्रस्त बच्चे नहीं हैं। एक तार्किक वातावरण और माता-पिता की सूझबूझ से वे सभी सामान्य बच्चे बन सकते हैं।

मेरी माता-पिता से शिकायत यह है कि वे सीखते ही नहीं हैं। बच्चों के साथ मेरा ज़्यादातर काम माता-पिता की भूलों को सुधारने का होता है। मेरे मन में उन माता-पिता के प्रति सहानुभूति भी है और प्रशंसा का भाव भी, जो पूरी ईमानदारी से पूर्व में की गई अपनी गल्तियों को देखने-समझने की कोशिश करते हैं और अपने बच्चों के प्रति अपने व्यवहार को सुधारने की कोशिश भी करते हैं। पर आश्यर्चजनक बात यह है कि शेष माता-पिता बच्चों के हिसाब से बदलने के बदले पुराने, निरर्थक और खतरनाक तौर-तरीकों को अपनाए रहना, पसंद

करते हैं। और भी आश्चर्यजनक बात यह है कि वे मेरे प्रति बच्चों के स्नेह से जलते हैं।

दरअसल बच्चे मुझसे इतना प्यार नहीं करते जितना वे मेरी दखलअंदाजी न करने की नीति को पसंद करते हैं। मैं उनके दिवास्वप्नों का पिता जो हूं। जबकि उनके खुद के पिता (खबरदार, शोरगुल इसी पल बंद करो।) की घोषणा करते हैं। मैंने कभी सभ्य व्यवहार या शिष्ट भाषा की मांग नहीं की। कभी यह नहीं पूछा कि हाथ-मुंह धोये गए हैं या नहीं। मैंने उनसे कभी हुकुमपरस्ती की, या श्रृद्धा की, या गौरव की रक्षा करने की मांग नहीं की। संक्षेप में मैंने बच्चों से वैसा ही सम्मानजनक बर्ताव किया जिसकी वयस्क अपने प्रति अपेक्षा करते हैं। और फिर मैं यह भी समझता हूं कि उनके पिता और मेरे बीच कोई वास्तविक स्पर्धा हो ही नहीं सकती। उनका काम है परिवार के लिए पैसे कमाना। और मेरा काम है बच्चों का अध्ययन करना, उन्हें अपना पूरा समय और रुचि देना। अगर माता-पिता बाल मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं करते ताकि वे अपने बच्चे के विकास के प्रति जागरूक रहे, तो वे पिछड़ जाएंगे। और सच यह है कि माता-पिता अक्सर काफी पीछे रह जाते हैं।

एक पिता ने मेरे स्कूल में पढ़ने वाली अपनी बच्ची को लिखा 'अगर तुम्हारे हिज्जे इतने कमजोर हैं, तो बेहतर हो कि तुम खत ही न लिखो।' और यह उस लड़की को लिखा गया, जिसके बारे में हम यह तय नहीं कर पाए थे कि वह मानसिक रूप से कमज़ोर है या नहीं। कई बार मुझे किसी शिकायती पिता या मां को डपटना पड़ा है। कहना पड़ा है (आपका बेटा चोरी करता है, अभी तक बिस्तर गीला करता है। वह असामाजिक है, दुखी है, खुद को कमतर समझता है। और आप इस बात को रो रहे हैं कि वह जब स्टेशन पर उतरा तो उसका चेहरा और हाथ गंदे थे।) वैसे मुझे गुस्सा जल्दी नहीं आता। पर जब मैं ऐसी मां या ऐसे पिता से मिलता हूं जिन्हें यह पता नहीं चलता कि बच्चे के आचरण में क्या ज़रूरी है, और क्या सतही, तो मैं नाराज हो जाता हूं। शायद इसीलिए मुझे माता-पिता अपना विरोधी भी मान सकते हैं। पर जब कोई मां अपने बच्चे से मिलने आती है और उसे बगीचे में गंदा और फटेहाल देखने पर भी चहक कर मुझसे कहती है 'बेटा कितना स्वस्थ और खुश दिख रहा है।' तो मेरा मन खुशी से भर उठता है।

मैं जानता हूं कि यह बात बेहद कठिन है। आखिर हम सबके अपने-अपने मानक होते हैं, अपने व्यक्तिगत मूल्य होते हैं, जिनके हिसाब से हम दूसरों को नापा करते हैं। शायद मुझे इस बात के लिए माफ़ी मांगनी चाहिए कि मैं बच्चों के बारे में बड़ा कट्टर हूं। उन माता-पिता के प्रति धीरज खो बैठता हूं, जो बच्चों को मेरी नज़र से नहीं देखते। पर अगर मैं माफी मांग लूं तो मैं ढ़ोंगी ही कहलाऊंगा। क्योंकि सच्चाई यह है कि मैं जानता हूं कि जहां तक बच्चों का सवाल है मेरे ही मूल्य सही हैं।

जो मां-बाप अपने बच्चे के साथ अपने खराब रिश्तों को सचमें सुधारना चाहते हैं, उन्हें खुद से कुछ सीधे-सच्चे सवाल करने चाहिए। दर्जनों सार्थक सवाल मैं सुझा सकता हूं। क्या मै अपने बच्चे से इसलिए नाराज हूं कि आज सुबह मेरा अपने पति द्धया पत्निऋ से झगड़ा हुआ था? क्या मेरी नाराज़गी का कारण यह है कि रात को सहवास में मुझे तृप्ति का अनुभव नहीं हुआ? या फिर इसलिए कि पड़ौसन का कहना है कि मैं अपने बेटे को बिगड़ैल बना रही हूं? या इसलिए कि मेरा वैवाहिक जीवन असफल है? या फिर इसलिए कि दफ्तर में बॉस ने मुझे फटकार लगाई है? इस तरह के सवाल अगर खुद से पूछे जाएं तो सचमें फायदेमंद होंगे।

पर जो गहराई से जुड़े सवाल है, जिनका ताल्लुक जीवन भर के अनुकूलन और पूर्वाग्रहों से हैं, वे तो हमारी चेतना के दायरे से भी बाहर हैं। यह कल्पना करना असंभव है कि एक खीझा हुआ पिता थम कर खुद से पूछे कि क्या बेटे के गाली बकने से मैं इसलिए नाराज़ हूं क्योंकि मेरा पालन-पोषण डंडे के जोर पर, नीति उपदेशों के साथ किया गया था? मेरे मन में खुदा का और निरर्थक सामाजिक तौर तरीकों का खौफ़ बैठाया गया था? मेरी स्वाभविक यौन-इच्छाओं को पूरी ताकत से दबाया गया था? इन सवालों के जवाब तलाशने का मतलब होगा आत्मविश्लेषण करना, जो हममें से अधिकांश लोगों के बूते के बाहर है। दुर्भाग्य है, क्योंकि अगर इनका जवाब मिलता तो कई बच्चों को मनोरोग और दुख से बचाया जा सकता।

बाइबल के जिस उदाहरण को पीढ़ियों से भौतिक अर्थ में समझा जाता रहा है वह यह है कि पिता के पापों के फल बच्चों को झेलने पड़ते हैं। अशिक्षित लोग भी नाटककार इब्सन की रचना 'भूत' (घोष्टस्) की यह बात बाखूबी समझ लेते हैं कि नाटक में पिता के यौनरोगी होने के कारण बेटे का जीवन बर्बाद हो जाता है। पर जो बात समझी नहीं जातीं वह यह है कि अक्सर पिता के मानसिक पापों के कारण बच्चे का सर्वनाश होता है। कम आयु में ही बच्चों पर अपने तौर-तरीके लादने से जो चारित्रिक विकृतियां पैदा होती हैं उनसे बच्चों को बचाने का एक ही तरीका है। वह है जागरूक माता-पिता द्वारा प्रारंभ से ही बच्चे को स्वनिर्देशन की राह पर चलना।

इस बात पर ज़ोर देना होगा कि स्वनिर्देशन का मतलब है हमारे तयशुदा तौर-तरीकों के परे बहुत कुछ देना। माता-पिता को अपने काफ़ी समय और स्वार्थों की कम से कम प्रारंभिक दो वर्षों तक आहुति देनी होगी। उन्हें अपने शिशु का प्यार और कृतज्ञता पाने के लिए, उससे खेलना बंद करना होगा। जब रिश्तेदार मिलने आएं तो शिशु से मुस्कान या करतब दिखाकर प्रदर्शन करने की मांग करना बंद करना होगा। इस बात पर मैं ज़ोर इसलिए दे रहा हूं क्योंकि मैंने नौजवान माता-पिता को यह सोचते पाया है कि वे बच्चे को स्वनिर्देशन की राह पर चला रहे हैं, जबकि दरअसल वे उसे अपनी सुविधाओं के अनुरूप ढाल रहे होते हैं। जब उन्हें रात को सिनेमा, देखने जाना हो तो वे उसे जल्दी सोने पर मजबूर करते हैं। कुछ बाद में वे बच्चे को ऐसा मुलायम, बिना शोर करने वाला खिलौना देते हैं जिससे पापाजी के आराम में खलल न पड़े।

'बस भी कीजिए,' मां-बाप प्रतिवाद करते हैं, 'यह सब आप हमसे कैसे कह सकते हैं? आखिर हमारे भी जिंदगी में कुछ अधिकार हैं।' पर मेरा जवाब है - नहीं, बच्चे के शुरुआती दो चार सालों तक आपके कोई अधिकार नहीं हैं। क्योंकि ये साल सतत निगहबानी के हैं। क्योंकि हमारा समूचा वातावरण ही स्वनिर्देशन के खिलाफ़ है। इसलिए सचेत रह कर बच्चे के हित में एक कड़ी लड़ाई लड़नी पड़ती है।

जो माता-पिता अपने बच्चों को स्वनिर्देशन और आज़ादी की राह पर चलाना चाहते हैं उनके लिए मेरे कुछ दूसरे सुझाव भी हैं।

बच्चे को बच्चा गाड़ी में डाल, घंटों तक बाग में छोड़ आना खतरनाक काम है। किसी को पता ही नहीं चल सकता कि इस दौरान अगर शिशु अचानक जग जाए, और खुद को एक अनजान जगह पा कर डर जाए, या उसे अकेलापन महसूस हो, तो क्या होगा? जिन

लोगों ने ऐसे में बच्चों की चीखें सुनी हैं, उन्हें इस बेहूदा तरीके का कुछ अंदाज़ तो ज़रूर हुआ होगा।

अगर आप चाहते हैं कि आपका बच्चा बिना मनोरोगी बने बड़ा हो, तो खबरदार, उससे दूरी मत बनाएं। ज़रूरी है कि आप उससे खेलें केवल उससे खेल ही नहीं, बल्कि उसके साथ खेलें। बच्चा बन कर खेलें। उसके जीवन में घुल जाएं, उसकी रुचियों को स्वीकारें। अगर आपमें बेवकूफी भरा आत्म-सम्मान का भाव ठूंस-ठूंस कर भरा है तो आप यह नहीं कर पाएंगे।

अगर बच्चे दादा-दादी या नाना-नानी से अलग रहें तो बेहतर रहता है। क्योंकि अक्सर बुजुर्गवार बच्चों को पालने-पोसने के कायदे-कानून, खुद बनाना चाहते हैं। वे सिर्फ उसकी अच्छाइयां या कमियों पर नज़र रखते हैं। इस तरह के घरों में बच्चों के दो नहीं चार-चार बॉस होते हैं। बढिया से बढ़िया घरों में भी नाना-दादा बचपन के बारे में अपने बासी विचार लागू करना चाहते हैं। अक्सर दादा-दादी, नाना-नानी अपने मालिकाना लाड़-प्यार से बच्चों को बिगाड़ते हैं।

ऐसा खासतौर से तब होता है जब दादी-नानी के पास, अपनी पारिवारीक ज़िम्मेदारियों से फारिग हो चुकने के कारण, कोई निजी मकसद नहीं रह जाता। तीसरी पीढ़ी उन्हें फिर से काम शुरू करने का मौका देती है। वे यह मानने लगतें हैं कि उनकी बहू या बेटी अकुशल मां है, सो दादी या नानी लगाम संभाल लेती हैं। इससे बच्चा दो दिशाओं में खिंचने लगता है। संभावना यह बनती है कि वह दोनों ही पक्षों से दूरी बना ले। बच्चे के लिए बहसबाजी का मतलब होता है प्रेम की नामौजूदगी। फिर चाहे यह बहस मां और दादी/नानी में हो या पति-पत्नि में। लाख कोशिशें के बावजूद आपसी मनमुटाव बच्चे से छुपा नहीं रह पाता। वह अचेतन रूप से ही यह समझने लगता है कि उसके घर में प्यार नामौजूद है।

कई बार स्कूल का सवाल भी पेशानी का कारण बनता है। संभव है आपकी पत्नी बच्चे को एक प्रगतिशील सहशिक्षण वाले स्कूल में पढाना चाहती हैं। और आपकी इच्छा यह हो कि वह किसी पब्लिक स्कूल में पढ़े। संभव है इस कारण आप दोनों में टकराव हो। इस स्थिति से निपटने के मेरे पास कोई ठोस सुझाव नहीं है। पर मैं यह ज़रूर जानता हूं कि मेरे सबसे मुश्किल छात्र-छात्राएं वे बच्चे रहे हैं जिनके माता-पिता के बीच शिक्षा को लेकर मतभेद था। हमारा एक छात्र था जिसके पिता समरहिल के विचारों के पूरी तरह खिलाफ़ थे। पर घर में शांति बनाए रखने के नाम पर उन्होंने घुटने टेक दिए। वह बच्चा यहां कोई प्रगति नहीं कर सका। इसलिए, क्योंकि वह जानता था कि उसके पिता स्कूल से नाखुश थे। बच्चे के लिए ऐसी स्थिति भारी परेशानी खड़ी करती है। ऐसे में वह यहां जड़े नहीं जाम पाता। उसे डर रहता है कि उसके पिता किसी भी दिन यह तय कर उसका दाखिला किसी अनुशासन वाले स्कूल में करवा सकते हैं।

माता-पिता और शिक्षकों के बची थोड़ा बहुत तनाव तो रहता है। कई शिक्षक यह बात समझते हैं। कुछ तो शिक्षकों और माता-पिता के बीच होने वाली बैठकों के द्वारा दोनों पक्षों को पास लाने की कोशिश भी करते हैं। यह बहुत ही बढ़िया बात है। हर जगह यह होना चाहिए। शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि बच्चों के जीवन में उनकी भूमिका कभी भी उतनी प्रभावशाली नहीं हो सकती है जितनी माता-पिता की होती है। यही कारण है कि अगर बच्चा घरेलू वातावरण के कारण एक समस्याग्रस्त बच्चा बना है तो उसे सुधारना इतना कठिन बन जाता है।

मां-बाप को यह समझना चाहिए कि आज नहीं तो कल, बच्चे उनसे छिटकेंगे और दूर होंगे। ज़ाहिर है मैं यह नहीं कह रहा कि बच्चों को माता-पिता से दूर रहना चाहिए, या कभी उनसे मिलना ही नहीं चाहिए। मेरा मतलब है मानसिक और आत्मिक दूरी से। एक शिशु की अपने घर पर जो निर्भरता होती है, उससे कट जाने से स्वाभाविक है कि मां अपने बच्चे को खुद पर निर्भर बनाए रखना चाहती है। मैं तमाम परिवारों से परिचित हूं जहां कोई बेटी अपने बूढ़े माता-पिता की देखभाल के नाम पर वहीं बनी रहती है। ऐसे अधिकांश उदाहरणों में उनका परिवार सुखी नहीं होता।

बेटी के चित्त का एक भाग उसे दुनिया में निकलने और खुद की जिंदगी अपनी तरह से जीने को उकसाता है। पर उसका दूसरा हिस्सा, जिम्मेदार हिस्सा, उसे अपने माता-पिता के पास रहने को मजबूर करता है। उसके अंतस में लगातार एक द्वन्द्व चलता है। (ज़ाहिर है मैं मां को खूब प्यार करती हूं, पर सच में वे कई बार इतना थकाती हैं, कि बस।)

आज हजारों - लाखों महिलाएं दुनिया का सबसे उबाऊ काम करती हैं। वे रोटी पकाती हैं बर्तन मांजती हैं, कपड़ें धोती और इस्तरी करती हैं, झाड़ू-बुहारू करती हैं वे घर की देखभाल करने वाली नि:शुल्क दासियां हैं और उनका जीवन उबाऊ और थकाऊ है। और तब बच्चे बड़े हो जाते हैं। नन्हें चूजे घोंसले से एक दिन उड़ जाते हैं। वह घोंसला वीरान हो जाता है। मां को शिकायत की नहीं, हमदर्दी की अपेक्षा रहती है। स्वाभाविक है कि वह चाहती है कि यह स्थिति जब तक संभव हो बनी रहे। फिर चाहे इस प्रक्रिया में उसके बच्चों को नुकसान ही क्यों न पहुंचे। इससे एक संकेत तो यह मिलता है कि हरेक महिला का अपना कोई न कोई काम-धंधा तो होना ही चाहिए, ताकि बच्चों के बड़े होने के बाद वह उसे फिर से अपना सके।

माता-पिता खुदा की जगह होते हैं। यह खुदा ढाह करने वाला खुदा है। माता-पिता के पास कानूनी रूप से यह अधिकार है कि वे यह कह सकें कि 'मैं अपने बच्चे को इसी तरह ढालूंगा।' मां-बाप चाहें तो बच्चों को पीट सकते हैं। उन्हें डरा सकते हैं, उसका जीना हराम कर सकते हैं। इस स्थिति में कानून सिर्फ तभी दखल दे सकता है, जब बच्चे को गंभीर शारीरिक नुकसान पहुंचे। पर अगर यह नुकसान मानसिक हो, तो कितना भी गंभीर नुकसान क्यों न हो कानूनी दखल संभव नहीं होती। त्रासदी यह है कि माता-पिता का पक्का विश्वास यह होता है कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं, अपने बच्चे के भले के लिए ही कर रहें हैं।

समूची मानवता इसी आस पर टिकी है कि अगर माता-पिता सजग हों, और बच्चों के मुक्ति, ज्ञान और प्रेम की दिशा में बढ़ाने के पक्ष में हों, तो वे जो कुछ करेंगे वह उसके हित में ही होगा।

अगर इस किताब से एक भी माता-पिता को यह समझ आ सके कि वे अपने बच्चे पर किस तरह, और किस हद तक अच्छा या बुरा असर डाल सकते हैं तो इसे लिखने का मकसद हासिल हो जाएगा।

खण्ड 7

सवाल-जवाब

आप मानवता को जीवन विरोधी कहते हैं। इससे आपका क्या मतलब है? मैं जीवन विरोधी नहीं हूं न ही मेरे मित्र।

मैंने अपने जीवन में दो भयावह विश्वयुद्ध देखे हैं। संभव है कि मैं एक तीसरा और अधिक भयानक युद्ध भी देखूं। कई करोड़ नौजवान इन दो युद्धों में मरे हैं। जब मैं छोटा सा लड़का था तो तमाम सैनिक 1914 और 1918 के बची दक्षिण अफ्रीका में उस साम्राज्यवादी युद्ध में खप रहे थे जो युद्ध तमाम युद्धों को खत्म करने के नाम पर लड़ा जा रहा था (वॉर टु एण्ड ऑल वॉरस्)। 1939 से 1945 के दौरान फासीवाद को खत्म करने के नाम पर वे जान गंवा रहे थे। कल वे शायद साम्यवाद के दमन के नाम पर मरें। इस सबका मतलब यह है कि कुछ केंद्रीय ताकतों के हुक्म पर, लोग उन मुद्दों के नाम पर अपने और अपने बच्चों के जीवन की आहुति दे डालते हैं, जो उनके व्यक्तिगत जीवन को छूते तक नहीं हैं।

अगर हम राजनीतिज्ञों, व्यापारियों या शोषकों के मोहरे बने रहे तो हम जीवन विरोधी और मृत्यु प्रेमी ही रहेंगे। हम मोहरे इस अर्थ में हैं कि हमें जीवन को नकारात्मक रूप में तलाशने को प्रशिक्षित किया गया है। हमें प्रशिक्षित किया गया है कि हम निरीह भाव से सत्ता-लोलुप समाज के अनुरूप खुद को ढालते चलें। अपने मालिक के हुकुम पर, उसके आदर्शों के लिए जान गंवाने को तैयार रहें। रूमानी उपन्यासों में ही लोग प्रेम के नाम पर जान देते हैं। वास्तविक जीवन में लोग घृणा के लिए मरते हैं।

यह तो था भीड़ का पक्ष। पर व्यक्तिगत रूप से भी मानव अपने रोजमर्रा की जिंदगी में जीवन विरोधी है। उसका वैवाहिक जीवन असंतोषजनक होता है, उसकी सारी मौज मस्ती घटिया किस्म की और सच्चाई से भागने की होती है। वह नैतिकता का नाड़ा पकड़े रहता है, हर तरह की स्वाभाविकता को वह गलत या अपर्याप्त मानता है। और यही सब वह अपने बच्चों को भी सिखाता है।

जीवन प्रेमी बच्चे में शारीरिक सुख या पढ़ने-लिखने के प्रति, ईश्वर, शिष्यचार या सम्य व्यवहार के प्रति अपराध बोध पैदा नहीं किया जा सकता। जो माता-पिता या शिक्षक जीवन प्रेमी हैं वे अपने बच्चों को मारते-पीटते नहीं हैं। कोई जीवन प्रेमी नागरिक हमारी दण्ड संहिता को, फांसी की सज़ा को, समलैंगिकों को दी जाने वाली सज़ाओं को, गैर-कानूनी औलाद के प्रति हमारे दृष्टिकोण को, झेल ही नहीं सकता। कोई भी जीवन-प्रेमी इंसान गिरजे में बैठ कर यह घोषण नहीं कर सकता कि वह एक आधम पापी है।

मैं साफ कर दूं कि मैं स्वेच्छाचारिता का हिमायती नहीं हूं। मेरे लिए चीजों को जांचने का सीधा सा तरीका है। जो अगला आदमी कर रहा है, क्या वह सचमें किसी दूसरे को नुकसान पहुंचाने वाला है? अगर इस सवाल का जवाब नकारात्मक मिलता है तो आपत्ति उठाने वाला इंसान जीवन विरोधी है।

इस तरह दूसरा पक्ष प्रस्तुत करते समय कहा जा सकता है कि युवावर्ग जब नाचता-गाता है, खेलता-कूदता है, घूमने फिरने या फिल्में देखने, संगीत सभा में या नाटकों में जाता है, तो अपना जीवन प्रेम प्रदर्शित करता है। इस तर्क में दम है। क्योंकि यूवावर्ग हमेशा उस सबकी चाहना रखता है जो जीवन प्रेमी है। वे इस कदर जीवन्त और आशावादी होते हैं कि सत्ता के हजार दमन के बावजूद अपनी मौज-मस्ती तलाश लेते हैं। उम्र के साथ यह भावना बनी रहती है, पर व्यक्ति का नज़रिया अस्पष्ट बनता जाता है। वह मौजमस्ती चाहता तो है, पर उससे डरता भी है।

जब मैं किसी को जीवन विरोधी कहता हूं तो मेरा मतलब यह नहीं कि वे मृत्यु तलाशते हैं। मेरा मतलब यह है कि वे जीने से ज्यादा डरते हैं, और मौत से कम। जीवन विरोधी होने का अर्थ मौत के पक्ष में होना भी नहीं है। पर जीवन विरोधी होने का मतलब है सत्ता के पक्ष में, गिरजे द्वारा बनाए गए धर्म के पक्ष में, दमन के पक्ष में, शोषण के पक्ष में होना। या कम से कम इनसे निर्यंत्रित होना।

मैं बात समेट कर कहता हूं : जीवन हितैषी होने का मतलब है आनंद, खेल-कूद, प्रेम, रोचक काम, पसंदीदा, गतिविधियां, हंसी, संगीत, नृत्य, दूसरों का खयाल रखना और मानव में आस्था रखना। जीवन-विरोधी होने का अर्थ है- दायित्व, आज्ञापालन, लाभ और सत्ता के पक्ष में होना। मानव इतिहास में हमेशा ही जीवन विरोधी तत्व जीतते रहे हैं, और आगे भी तब तक जीतते रहेंगे जब तक हम अपने युवा वर्ग को वर्तमान वयस्कों की अवधाराणाओं के अनुरूप ढ़ालते रहेंगे।

क्या आप यह नहीं मानते कि अगर दुनिया के करोड़ों-करोड़ लोगों की आर्थिक समस्याओं का समाधान हो जाए तो मानवता की अधिकांश तकलीफ़ें दूर हो जाएंगी?

यह अहसास बड़ा असंतोषजनक है कि हमारा घरेलू और स्कूली प्रशिक्षण अधिकांश लोगों को बेहद उबाऊ जिंदगियों की दिशा में ले जाता है। सच है कि दुकानों और दफ्तरों के निहायत उबाऊ काम भी आवश्यक हैं। पर जो कतई अनावश्यक है, वह है उन लोगों की मुर्दानगी जो अपनी काम की मेज़ों या बिक्री काउन्टरों से घृणा करते हैं। जिन्हें अतृप्त भावनाओं को शांत करने के लिए बेहूदी फिल्में, कुत्ता दौड़ों, घटिया सचित्र मैगजीनों और अपराधों का सहारा लेना पड़ता है।

बड़ी गाड़ियों के करोड़पति मालिकों का आंतरिक जीवन की रेलगाड़ी के कुलियों से अधिक सुखी नहीं होता। मेरा जवाब यह है कि अगर व्यक्ति की आत्मा जीवन-विरोधी, प्रेम-विरोधी हो तो वह आर्थिक सुविधाओं या सुरक्षा का सुख भी नहीं भोग सकता। गरीब और अमीर दोनों में ही एक बात समान होती है, वह यह कि दोनों ही एक ऐसी दुनिया के लिए तैयार किए जाते हैं जहां प्रेम को नापसंद किया जाता है, जो प्रेम से डरता है, और जो प्रेम को एक अश्लील मजाक बना डालता है।

कई लोग जो यह मानते हैं कि दुनिया के अधिकांश लोग दुखी हैं, वे यह कहेंगे कि अगर आर्थिक समस्याओं का समाधान कर दिया जाए तो जो जिंदगी संतोषजनक और आज़ाद बन जाएगी। मैं इस बात में विश्वास नहीं कर पाता। हमने आर्थिक मुक्ति की जितनी सी झलक देखी है वह खास उत्साहजनक नहीं है। ऐसी आर्थिक मुक्ति जो हर घर में बिजली से चलने वाले उपकरणों से भरा रसोईधर उपलब्ध करवा दे, वह आवश्यक रूप से खुशहाली और ज्ञान की दिशा में ले जाए ऐसा नहीं हैं। हाँ, उससे कुछ सुविधा ज़रूर हासिल होती है जो कुछ समय बाद यांत्रिक रूप से स्वीकार ली जाती है। उसका भावनात्मक मूल्य भी तब खो जाता है।

चरित्र-निर्माण के हमारे तौर-तरीकों ने इंग्लैण्ड को भौतिक रूप से सफल देश ज़रूर बनाया है। हमारा जीवन स्तर उनके कारण बढ़ा है। पर हमारी सफलता यहीं तक सीमित है। ज्यादातर लोग आज भी दुखी हैं। जी नहीं, अकेले आर्थिक समाधान से दुनिया का दुख, उसके अपराध, उसके कलंक, मनोरोग और बीमारियां खत्म नहीं होंगे।

दुखी दाम्पत्य का हमें क्या करना चाहिए?

कुछ मध्यवर्गीय माता-पिता ऐसी स्थिति में मनोविश्लेषण का सहारा लेते हैं जिससे अक्सर विवाह टूटते हैं। पर विश्लेषण अधिक सफल हो जाएं तो भी हम दुनिया भर का विश्लेषण नहीं कर सकते। व्यक्तियों के इलाज के नाम पर जो कुछ किया जाता है वह छुट-पुट स्तर पर है और उसका आम जनता पर कोई असर नहीं पड़ता।

मानवता के लिए एक ही समाधान है। वह है बच्चों का सही तरह पालन-पोषण, न कि मनोरोगियों का इलाज करना। मुझे स्वीकारना पड़ेगा कि आज की वैवाहिक समस्याओं को सुलझाने का मेरे पास कोई जवाब नहीं है। यह सोचना बड़ा तकलीफदेह है कि श्री और श्रीमती ब्राउन साथ-साथ एक दुखद जीवन इसलिए बिता रहे हैं क्योंकि उनका पालन-पोषण जीवन विरोधी वातावरण में हुआ था। पर सच्चाई यह है कि इस बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता।

यह बात निराशावादी लग सकती है। पर आशावादी हम केवल तब बन सकते हैं जब हम अपने बच्चों की परवरिश इस तरह करें कि वे जीवन विरोधी न बनें। जब-जब मैं किसी बच्चे की पिटाई देखता हूं, यह देखता हूं कि उससे झूठ, बोला जा रहा है, एक ऐसा बच्चा देखता हूं जो खुद के नग्न शरीर से शर्माता है, मैं इस दुखद अहसास से भर जाता हूं कि ऐसा बच्चा बड़ा होकर घृणित पति या पत्नि में बदलेगा।

क्या आप ज़रूरी मानते हैं कि पति-पत्नि का बौद्धिक स्तर एक सा होना चाहिए?

विवाह में बौद्धिक पक्ष गौण होता है। दिमागों का मेल उबाऊ और ठंडा मामला है। पर जहां दिल जुड़ते हैं वहां गर्मी होती है। एक दूसरे को देने का भाव पनपता है। प्रख्रति एक स्त्री और पुरुष को उनकी बौद्धिक क्षमता के कारण प्रेमपाश में नहीं बांधती। पर बाद में जब काम भावना कमजोर पड़ती है तो बौद्धिक रुचियों की समानता हो तो दंपत्ति खुश रहते हैं। सुखी दांम्पत्य का एक नुस्खा शायद असरदार रहता है। वह है एक सी विनोदी वृत्ति।

काम को लेकर चिंताओं का क्या कारण है? आजकल इतने नौजवान लोग आत्महत्या क्यों करते हैं?

मुझे शंका है कि कोई भी बच्चा काम की फिक्र करता है। बाहरी सतह पर जो चिंताएं नज़र आती हैं उसका स्रोत कहीं गहरा है। ये चिंताएं काम भावनाओं को लेकर पाप के अहसास से जन्मती हैं। जिन बच्चों में नैसर्गिक काम भावनाओं को लेकर अपराधबोध नहीं जगाया जाता वे तेज और उत्साही होते हैं।

स्टैकल का कहना था कि 'आत्महत्या भी अंतिम यौन क्रिया है'। जिस बच्चे में काम भावनाओं का दमन किया जाता है वह अपने शरीर और आत्मा से घृणा करने लगता है। उसके लिए आत्महत्या एक तार्किक प्रतिक्रिया होती है। अगर शरीर इतना ही घृणास्पद, है तो जितनी जल्दी उससे छुटकारा पाया जाए उतना ही अच्छा है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं के बारे में आपकी क्या राय है?

जो सामाजिक कार्यकर्ता कच्ची बस्तियों के समस्याग्रस्त बच्चों के घरों मे जाते हैं उनकी मैं श्रृद्धा करता हूं। वे बेहतरीन काम करते हैं पर सवाल यह है कि क्या उनका काम गहराई में जाता है?

उनसे यह अपेक्षा तो कोई नहीं करता कि वे उन बच्चों के माता-पिता का मनोविश्लेषण करें। यह भी सभी जनते हैं कि उनका काम निहायत मुश्किल है। वे उन कच्ची बस्तियों को गायब भी नहीं कर सकते जो बच्चों को आसामाजिक बनाती हैं। न ही वे उन नासमझ माता-पिता को बदल सकते हैं जो गलत खान-पान या वर्जनाओं से अपने बच्चों का विकास रोकते हैं।

समाज कल्याण के काम में जुड़े कार्यकर्ता सच में नायक-नायिका ही हैं। वे को शिश करते हैं कि पीड़ित बच्चों को उनके खराब पारिवारिक जीवन की खामियों से उबार सकें। अगर ऐसे किसी कार्यकर्ता का आज़ादी में पक्का और पूरा विश्वास हो, तो भी वह कच्ची बस्ती के उस घर में उन सिद्धान्तों को कैसे लागू करेगा? क्या उनमें से कोई किसी औरत से यह कह सकेगा 'देवीजी आपका बेटा इसलिए चोरी करता है क्योंकि उसका शराबी बाप उसे आए दिन पीटता है। इसलिए भी, क्योंकि जब वह दो साल का था तब आपने उसे पीटा था। इसलिए भी कि आपने कभी उसके प्रति प्यार नहीं जताया। 'क्या वह मां यह सब समझ सकेगी?

मैं यह नहीं कहता कि माता-पिता को फिर से शिक्षित नहीं किया जा सकता। पर इतना ज़रूर कहता हूं कि एक सामाजिक कार्यकर्ता या किसी दूसरे व्यक्ति की बातचीत में से स्थिति को बदला नहीं जा सकता। इन स्थितियों में समस्या का एक हिस्सा आर्थिक है। इसलिए कच्ची बस्तियों के उत्थान द्वारा समस्याओं को जड़ से हटाने के कदम उठाने होंगे।

समरहिल के बारे में

समरहिल प्रणाली में बच्चे की इच्छाशक्ति कैसे विकसित होती है? अगर उसे हमेशा मनमर्जी से चलने दिया जाए तो उसमें आत्मनियंत्रण कैसे पनपेगा?

समरहिल में बच्चे को हमेशा मनचाहा करने की छूट नहीं मिलती। बच्चों द्वारा बनाए गए नियम ही उन्हें चारों ओर से सीमा में बांधते हैं। उसे केवल वही चीजें अपनी मर्जी से करने दी जाती है जो केवल उसे प्रभावित करती हैं, किसी दूसरे को नहीं। वह चाहे तो सारे दिन खेल सकता है, क्योंकि पढ़ना, और खेलना सिर्फ उसे प्रभावित करते हैं। पर उसे कक्षा में पूपाड़ी बजाने की छूट नहीं होती क्योंकि ऐसा करना दूसरों को भी प्रभावित करेगा।

इच्छाशक्ति भला है क्या? मैं दृढ़ संकल्प करूं तो तंबाकू पीना छोड़ सकता हूं। पर इच्छाशक्ति से प्रेम नहीं कर सकता, न ही वनस्पतिशास्त्र का विषय पसंद करने लग सकता हूं। कोई भी व्यक्ति संकल्प कर खुद को अच्छा या फिर बुरा व्यक्ति ही बना सकता है।

किसी व्यक्ति को दृढ़ इच्छाशक्ति वाला इंसान बनने के लिए प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता। अगर आप बच्चों को आज़ादी में शिक्षित करते हैं तो उन्हें स्वयं के प्रति अधिक सजग ज़रूर बना सकते हैं क्योंकि आज़ादी से अवचेतन मन की ज्यादातर चीजें चेतन स्तर पर उभर आती हैं। यही कारण है कि समरहिल के बच्चों में जीवन को लेकर शंकाएं कम होती हैं। उन्हें पता होता है कि वे दरअसल क्या चाहते हैं। और मुझे लगता है कि वे उसे हासिल भी कर पाते हैं।

ध्यान रहे कि जिसे हम अक्सर कमजोर इच्छाशक्ति कहते हैं, वह दरअसल अरुचि का संकेत होता है। कोई भी कमजोर इंसान, जिसे रुचि के बिना भी टैनिस खेलने पर बाध्या किया जा सकता है, दरअसल एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी खुदकी रुचियों को ही नहीं जानता। गुलामी थोपने वाला अनुशासन ऐसे व्यक्ति को हमेशा कमजोर इच्छाशक्ति वाला और निरुपाय बनाए रखता है।

अगर समरहिल में कोई बच्चा कोई खतरनाक काम करता है तो क्या आप इसकी इज़ाज़त देते हैं?

बिल्कुल नहीं। एक बात लोग अक्सर नहीं समझते कि बच्चों को आज़ादी देने के अर्थ यह कतई नहीं होता कि उन्हें बेवकूफी करने की छूट मिले। हम अपने छोटे बच्चों को उनके सोने का समय खुद तय नहीं करने देते। हम उन्हें मशीनों, गाड़ियों, टूटे कांच या गहरे पानी के खतरों से बचाते हैं। किसी बच्चे को ऐसी कोई जिम्मेदारी नहीं सौंपी जानी चाहिए जिसे निभाने के लिए वह तैयार न हो। पर एक बात ध्यान रहे कि बच्चे जिन खतरों का सामना करते हैं उनमें से ज्यादातर गलत शिक्षा का नतीजा होते हैं। जो बच्चा आग के साथ खतरनाक हरकतें करता है उसे आग की सच्चाई जानने से दरअसल रोका गया है।

क्या समरहिल के बच्चों को घर की याद सताती है?

मैंने पाया है कि जब कभी कोई दुखी मां किसी नए बच्चे के समरहिल लाती है तो बच्चा उससे लिपट कर जारजार रोता है, घर वापस ले जाने की मांग करता है। मैंने यह भी पाया है अगर बच्चा जी भरकर चीखे-चिल्लाए नहीं तो मां झल्लाती है। वह चाहती है कि उसके बच्चे को घर की याद आए। जितनी बार घर को याद करेगा, सिद्ध यह होगा कि बच्चा उससे उतना ही प्यार करता है। अक्सर होता यह है कि मां के जाने के पांच मिनट बाद ही वह बच्चा खुशी से खेलता नज़र आता है।

यह कहना कठिन है कि एक दुखी घर से आए बच्चे को स्कूल शुरु करते समय घर की क्यों याद आती है। संभावना तो यही है कि घर में उसे दुश्चिंताएं घेरे रहती होंगी। वह शायद यह सोचता हो कि इस समय घर में क्या हो रहा है? ऐसा सोचने का कारण यह हो सकता है कि उसकी मां, जिसे अपने पति का स्नेह नहीं मिलता, अपना पूरा प्यार या घृणा बच्चे की ओर उड़ेलती है।

घर की बेहद याद आना अमूमन इस बात का सूचक है कि बच्चे का घर अच्छा नहीं है, ऐसा घर है जहां घृणा अधिक है। बच्चे को घर की कमी इसलिए नहीं अखरती कि वहां प्रेम है, बल्कि इसलिए कि वहां तकरार है, या उसे सुरक्षा मिलती है। इसमें विरोधाभास की ध्वनि आती है, पर दरअसल विरोधाभास है नहीं। ध्यान रहे कि घर जितना दुखी होगा बच्चा उतना ही संरक्षण तलाशेगा। उसके जीवन को स्थिरता देने वाली कोई चीज नहीं है। इसी कारण वह उस चीज में स्थायित्व तलाशता है जिसे वह 'घर' कहता है। घर से दूर रहने पर वह उसकी एक आदर्श छवि मन में बनाता है। उसे अपने घर की याद नहीं आती, उस घर की याद सताती है जिसकी उसके मन में तलब है।

क्या आप समरहिल में कमजोर बच्चों को भी दाखिला देते हैं?

बेशक। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप किसे कमजोर या पिछड़ा कहते हैं। हम मानसिक रूप से विकलांग बच्चों को नहीं लेते। पर स्कूल में जिन्हें पिछड़ा हुआ कहा जाता है, उनका किस्सा दरअसल कुछ दूसरा ही होता है।

पिछड़ेपन को समरहिल के मानदण्ड का परीक्षाओं, जोड़- बाकी या अंकों से कोई लेना देना नहीं है। कई बार पिछड़ेपन का बस इतना भर अर्थ होता है कि बच्चे के अंतस में एक अचेतन द्वन्द्व है या फिर उसे अपराधबोध घेरे हुए है। अगर वह लगातार इस सवाल का सामना कर रहा हो कि (मैं सचमें दुष्ट हूं या नहीं?) तो वह गणित या इतिहास में रुचि भला कैसे ले सकता है?

मैं इस सवाल का जवाब निजी अहसास के साथ देता हूं क्योंकि बचपन में मैं सीखने में कोई रुचि नहीं लेता था। मेरी जेबों में लोहे या पीतल के टुकड़े या पुर्जे भरे रहते थे। मेरी नज़रें पाठ्यपुस्तक पर होतीं पर मन हमेशा मेरे कल-पुर्जों में भटकता था।

मैंने बिरले ही कोई कमजोर लड़के या लड़की को देखा है जिसमें रचनात्मक काम करने की संभावनाएं न हों। और फिर स्कूली विषयों में प्रगति के आधार पर किसी छात्र या छात्रा को पिछड़ा मानना न केवल निरर्थक है बल्कि घातक भी है।

अगर कोई बच्चा स्कूल की आम सभा द्वारा लगाए गए जुर्माने को न भरे तो क्या किया जाता है?

बच्चे ऐसा कभी करते नहीं हैं। पर हां, अगर उन्हें यह लगे कि उनके साथ अन्याय हुआ है तो शायद वे ऐसा करें। पर हमारे यहां अपील की प्रणाली है जो इस अन्याय के भाव से निपटने में मदद करती है।

आप कहते हैं कि समरहिल के बच्चों के दिमग बड़े स्वच्छ हैं। इससे आपका मतलब क्या है?

स्वच्छ दिमाग का मतलब है वह व्यक्ति जिसे किसी बात से धक्का न पहुंचे। धक्का पहुंचने का मतलब है कि कि कुछ भावनाओं का दमन किया गया है। क्योंकि जो चीज इतना चौंका देती है उसमें बेहद रुचि जगती है।

विक्टोरियन युग में महिलाएं पैर का नाम सुनते ही चौंक जाती थीं। ज़ाहिर है कि पैर से जुड़ी चीजों में उनकी असमान्य रुचि थी। पैर उनके लिए यौन से जुड़े थे। और यौन भावनाओं की बातचीत को लेकर तमाम वर्जनाएं थीं। इसलिए समरहिल ने जहां तंबाकू या काम भावनाओं को पाप की धारणा से जोड़ कर नहीं देखा जाता बच्चे इन विषयों पर गुपचुप बातें नहीं करते। गंदी फुसफुसाहट यहां नहीं होती। हमारे बच्चे जिस तरह शेष सभी चीजों के बारे में संजीदा हैं, उतने ही संजीदा वे इन तथाकथित वर्जित बातों में भी हैं।

सात साल का विली जब समरहिल में पहला सत्र बिता कर आया तो उसकी भाषा इतनी खराब हो चुकी थी कि

पड़ौसियों ने अपने बच्चों को उससे खेलने से ही मना कर दिया। इस बारे में मैं क्या करूं?

विली के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है, दुखदायी है। पर विकल्प क्या है? अगर आपके पड़ौसी 'साला' या 'ज़ाहिल' से सकते में आ जाते हैं तो उन्होंने अपने आप को बेहद दबा कर रखा हुआ है। ऐसे लोगों से विली का दूर रहना ही बेहतर है।

समरहिल के बच्चे फिल्मों के बारे में क्या सोचते हैं?

वे सभी तरह की फिल्में देखते हैं। हमारे यहां कोई सैंसरशिप नहीं है। इसका नतीजा यह होता है कि जिस समय वे स्कूल से निकलते हैं, तब तक फिल्मों के बारे में उनकी समझ अच्छी हो जाती है। अक्सर बड़े बच्चे यह कह कर फिल्म देखने जाने से मना कर देते हैं कि फिल्म खास मजेदार नहीं लग रही। बडे बच्चों ने फ्रांस, इटली और जर्मनी की तमाम फिल्में देख रखी हैं, और वे हॉलीवुड की बनी औसत फिल्मों की आलोचना करते हैं। छोटे बच्चे प्रेम कथाओं की फिल्में देखना पसंद नहीं करते।

जो बच्चा पलट कर जवाब दे, जबान लड़ाए, उसका क्या किया जाए?

समरहिल के बच्चे बदतमीज़ी से पलट कर जवाब नहीं देते। बच्चा ऐसा तभी करता है जब कोई 'सम्माननीय व्यक्ति' उसे निहायत नीचा मान कर पेश आता है। समरहिल में हम बच्चों की भाषा ही बोलते हैं। अगर कोई शिक्षक पलट कर जवाब देने की शिकायत करे, तो हम समझ जाएंगे कि वह बेकार है।

जो बच्चा दवा न ले उसका आप क्या करते हैं?

मैं नहीं जानता। समरहिल में कोई ऐसा बच्चा नहीं रहा जो अपनी दवा नहीं लेना चाहता हो। हमारे यहां खाना-पीना संतुलित होता है सो बीमारी हमारी समस्या नहीं है।

क्या समरहिल के बड़े बच्चे अपने से छोटे बच्चों का ध्यान रखते हैं?

जी नहीं। छोटे बच्चों पर ध्यान देने की कोई ज़रूरत नहीं होती। वे अपने ही ज़रूरी मामलों में उलझे रहते हैं।

क्या समरहिल में कमी अश्वेत बच्चे भी पढ़ने आए हैं?

हां, हमारे यहां दो अश्वेत बच्चे थे। और जहां तक हमने देखा, दूसरे बच्चे उनकी चमड़ी के रंग के प्रति सचेत नहीं थे। एक अश्वेत बच्चा कुछ दादा किस्म का था। बच्चे उसे नापसंद करते थे। पर दूसरा बड़ा लोकप्रिय था।

क्या सरमहिल में बॉय स्काउट हैं?

नहीं, मुझे नहीं लगता कि हमारे बच्चे हर दिन एक भला काम करने के विचार को हजम, भी कर पाएंगे। हर दिन सचेत होकर एक 'भला काम' करने में बनावटीपन की बू आती है। बॉय स्काउट आंदोलन में कई अच्छी बातें हैं, पर नैतिक उत्थान, सही-गलत, और शुद्धता के बुर्जुआ विचारों से इसे काफ़ी नुकसान पहुंचा है।

अपने स्कूल में बॉय स्काउटों पर कोई मत कभी ज़ाहिर नहीं किया गया है। दूसरी ओर किसी बच्चे मे भी उसमें कोई रुचि नहीं दर्शाई है।

एक धार्मिक पारिवारिक परिवेश में पले बच्चे के बारे में आपकी क्या राय है? क्या आप समरहिल में बच्चों को अपने धर्म को पालने की इज़ाज़त देते हैं?

जी हां, बच्चा बिना डर, शिक्षकों या बच्चों की टीका-टिप्पणी के ऐसा कर सकता है। पर मैंने पाया है कि मुक्त वातावरण में बच्चे धार्मिक क्रियाएं या प्रार्थना आदि करना ही नहीं चाहते।

कुछ नए बच्चे चंद इतवार तक गिरजे जाते हैं और तब जाना बंद कर देते हैं। गिरजा बेहद उबाऊ है। मुझे ऐसा कोई संकेत नहीं मिला है पूजा-अर्चना की वृत्ति बच्चों में स्वाभाविक रूप से, होती है। जब पाप की भावना धुल जाए, तो प्रार्थना का इस्तेमाल भी नहीं होता।

धार्मिक परिवारों के बच्चे अमूमन पूरी तरह ईमानदार नहीं होते। वे दमित होते हैं। किसी भी ऐसी धार्मिक प्रणाली में ऐसा ही होना है, जहां जीवन के प्रति प्रेम का मूल भाव नष्ट हो गया और जो अपना पूरा ध्यान मौत के डर पर केंद्रित रखता हो। बच्चों में खुदा का खौफ तो बैठाया जा सकता हे उसके प्रति प्रेम नहीं। आज़ाद बच्चों को धर्म की दरकार इसलिए नहीं होती क्योंकि उनका जीवन आध्यात्मिक रचनात्मकता से भरपूर होता है।

क्या समरहिल के बच्चे राजनीति में रुचि लेते हैं।

नहीं। शायद इसलिए क्योंकि वे सभी मध्यवर्गी परिवारों से हैं जिन्होंने कभी गरीबी का अनुभव नहीं किया है। मैंने नियम यह बनाया हुआ है कि कोई भी शिक्षक बच्चों को राजनीतिक रूप से प्रभावित नहीं करेंगे। धर्म की तरह राजनीति भी व्यवक्तिगत चुनाव का मामला हैं बच्चे को बड़े होकर यह चुनाव खुद करना चाहिए।

क्या समरहिल के छात्र बाद में सेना में भी गए हैं?

अब तक केवल एक छात्र ही वायु सेना में गया है। संभव है कि आजद बच्चों को सेना निहायत रचनात्मकता विहीन लगती हो। आखिर युद्ध का मतलब है विनाश। समरहिल के बच्चों शायद अपनेदेश के लिए उसी सहजता से लड़े जैसे दूसरे बच्चे, परसंभव है कि वे यह साफ-साफ समझना चाहें कि आखिर वे लड़ किस लिए रहे हैं।

हमारे पूर्व छात्रों ने द्वितीय विश्व युद्ध में हिस्सा लिया और कुछ ने अपनी जान भी दी।

बच्चों के पालन के विषय में

जो माता-पिता आपको किताबें पढ़ते हैं या आपके भाषण सुनते हैं, क्या वे कुछ बातें समझने के कारण अपने बच्चों से भिन्न और बेहतर व्यवहार करते हैं? क्या माता-पिता को अधिक जानकारी दी जाए तो क्षतिग्रस्त बच्चों का इलाज हो सकेगा?

जिस मां में मिल्कियत का भाव बेहद ज्यादा है वह इस किताब को पढ़कर अपराध-बोध से भर सकती है। वह झल्ला कर कह सकती है मेरा खुद पर बस नहीं चलता। मैं अपने नन्हें का जीवन बर्बाद नहीं करना चाहती। आपके लिए परेशानी को पहचानना बड़ा आसान है, पर इसका इलाज आखिर क्या है?

वह सच ही कहती है। इलाज भला क्या है? या कहें क्या इलाज है भी। यह सवाल बड़ा टेढ़ा है।

जिस महिला का जीवन उबाऊ हो तमाम किस्म के खौफों से भरा हो, उसका क्या इलाज हो सकता है? ऐसे पुरुष का क्या इलाज है जो अपने बदतमीज बेटे को फन्ने खां समझता हो? पर इससे भी टेढ़ी सवाल यह है कि उस मां या पिता का क्या इलाज है जो अपने कृत्यों से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं? और अगर उन्हें सुझाया जाए कि वे कुछ गलत कर रहे हैं तो वे भड़क उठते है।

अकेले जानकारी से कुछ नहीं होता। जब तक माता-पिता इस ज्ञान को स्वीकारने को भावनात्मक रूप से तैयार न हों और उनमें यह क्षमता न हो कि नए ज्ञान के अनुरूप कुछ कर सकें, तबतक कुछ नहीं हो सकता।

आप बच्चे के खुश रहने की ज़रूरत पर इतना क्यों बोलते हैं? क्या सच में कोई भी सुखी है?

यह सवाल बड़ा टेढ़ा है, क्योंकि शब्द बड़ा भरमाते हैं। यह सच है कि हममें से कोई भी हमेशा सुखी नहीं हमारे दांतों में दर्द हो सकता है, हमारा प्रेम प्रसंग खटाई में पड़ सकता है, हमें अपना काम बेहद उबाऊ भी लग सकता है।

सुख शब्द का अगर कोई अर्थ हैं तो वह है आर्तरिक कल्याण का बोध। एक संतुलन का अहसास। जीवन से संतोष का भाव। ये तमाम भाव तभी होते हैं जब व्यक्ति आज़ादी का अनुभव करता है।

आज़ाद बच्चों के चेहरे भयमुक्त होते हैं। अनुशासित बच्चे दबे, दुखी और सहमें-सहमें लगते हैं।

सुख को हम एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसमें दमन का अहसास कम से कम हो। एक सुखी परिवार ऐसे घर में रहता है जहां प्यार बसता हो। दुखी परिवार तनावग्रस्त रहता है।

मैं सुख को सबसे महत्वपूर्ण इसलिए मानता हूं क्योंकि मैं विकास को सबसे ज़रूरी मानता हूं। आज़ादी और संतुष्टि के भाव के साथ दशमलव के भिन्न से बेखबर रहना बेहतर है, न कि स्कूली परीक्षाएं दे चेहरे को मुहांसों से भर लेना। मैंने किसी भी प्रसन्न और आज़ाद बच्चे के चेहरे पर मुहांसे नहीं देखे हैं।

अगर किसी बच्चे को पूरी आज़ादी दी जाए तो उसे यह अहसास होने में कितना समय लगेगा कि स्व-अनुशासन जीने के लिए बेहद ज़रूरी है? या उसे यह अहसास कभी होगा भी या नहीं?

पूरी आजदी जैसी कोई चीज होती ही नहीं है। जो कोई किसी को हर समय उसकी मनमर्जी करने देता हैं वह एक खतरनाक डगर पर बढ़ रहा है।

किसी भी इंसान को पूरी सामाजिक आज़ादी नहीं होती क्योंकि हरेक को दूसरों के अधिकारों का भी सम्मान करना पड़ता है। पर व्यक्तिगत आज़ादी हरेक को सिलनी चाहिए। इसे साफ-साफ कहें तो बात यूं होगी किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी बच्चे को लैटिन पढ़ने पर मज़बूर करे। इसलिए क्योंकि यह व्यक्तिगत चुनाव की बात है। पर अगर लैटिन भाषा की कक्षा चल रही हो और उसमें कोई हर समय गढ़बढ़ करे तो उसे कक्षा से बाहर कर देना चाहिए क्योंकि उसी आज़ादी तब दूसरों की आजदी में बाधा पहुंचा रही होगी।

जहां तक आत्म-अनुशासन की बात है वह कुछ अस्पष्ट सी चीज है। क्योंकि अवसर इसके मतलब होता है वयस्कों द्वारा लादे गए नैतिक विचारों केअनुसार खुद को अनुशासित करना। जो वास्तविक आत्म-अनुशासन है उसमेंन तो दमन होता है न ही दूसरों के विचारों की स्वीकृति उसमें दूसरों के अधिकारों और खुशी का पर्याप्त सम्मान होता है। यह व्यक्ति को उस दिशा में ले जाता है जहां वह दूसरों के नजरिए के सम्मान में कुछ चीजें समझबूझ कर त्यागता है, ताकि वह सबके साथ शांति से रह सके।

क्या आप सचमें यह मानते हैं कि जो लड़का स्वभाव से आलसी हो उसे अपनी ढीली-ढाली चाल से जो चाहे करने देना और यों समय बर्बाद करने देना चाहिए? जब उसे पढ़ाई लिखाई करना ही नापसंद हो तो आप उसे काम पर कैसे लगाते हैं?

सच यह है कि आलस बच्चों में होता ही नहीं आलसी बच्चा या तो शारीरिक रूप से बीमार है या उसकी उन कामों में कोई रुचि नहीं है जो वयस्कों को लगता है उसे करने चाहिए।

मैंने ऐसा कोई बच्चा नहीं देखा जो बारह साल की उम्र से पहले समरहिल आया हो और जिस आलसी कहा जा सकता हो। हां, दूसरे अनुशासित स्कूलों से समरहिल में 'आलसी' बने रहते हैं, जब तक वे अपनी शिक्षा-दीक्षा से पूरी तरह उबर नहीं जातें मैं कभी उन्हें ऐसे काम पर नहीं लगता हूं जो उन्हें नापसंद हो या जिसके लिए वे तैयार न हों। हमारे आपकी ही तरह उसे भी बाद में तमाम ऐसे काम करने पड़ेंगे जो उसे सख्त नापसंद हैं पार अगर उसे इस समय अपने खेल-कूद का चरण भरपूर जी लेने दिया जाए तो वह बाद में हर तरह की परेशानी का सामना कर सकेगा। जहां तक मुझे पता है समरहिल का कोई भी पूर्व छात्र पर आलसी होने का आरोप नहीं लगाया गया है।

क्या आपको लगता है कि बच्चों को दुलारा-पुचकारा जाना चाहिए?

जब मेरी बिटिया जोए बहुत छोटी थी वह दरवाजे के बंद होने की आवाज से एक बार चौंक गई और रोने लगी। मेरे पत्नि ने उसे गोदी में उठाया और प्यार से गले लगाया। उसे कुछ ऐसे पकड़ा कि वह हाथ-पैर मार सके।

जब भी बच्चे में किसी तरह की जकड़न दिलाई दे तो माता-पिता को उसके साथ खेलना चाहिए। यह खेल ऐसा हो जिससे वह अपनी

मांसपेशियां हिलाए-डुलाए। चार-पांच साल के बच्चों के साथ नकली कुश्ती बड़ी असरकार रहती है। इस कुश्ती में मैं हमेशा हारता हूं। इसी तरह भावनात्मक या शारीरिक जकड़न को खत्म करने में ज़ोर से हंसना भी असरकारी रहता है। स्वस्थ बच्चे किलकारी भरते हैं, खूब हंसते हैं। पसलियों के पास गुदगुदी बच्चों को खुश करती है। हां, यहां यह भी बताना ज़रूरी है कि कुछ बाल-मनोवैज्ञानिक बच्चे को ज्यादा छूने के विरुद्ध हैं। उनके हिसाबसे इससे बच्चा मां या पिता से बंध जाता है, पर यह सब बकवास हैं मुझे लगता है कि मां बाप को बच्चे को खूब दुलारना चाहिए, थपथपाना गुदगुदाना चाहिए।

जीवन से विमुख मनोवैज्ञानिकों की सलाह हमें नही माननी चाहिए जो यह कहते हों कि बच्चे को अपने साथ बिस्तर पर सुलाना या उसे गुदगुदाना ठीक नहीं है।

प्रगतिशील माता-पिता दूसरे बच्चों के लड़ाकापन का क्या करें?

अगर स्व-नियंत्रित विली के माता-पिता उसे किसी पब्लिक स्कूल में भेजते हैं, जहां उसे दूसरे बच्चों के आक्रामक व्यवहार और द्वेष का सामना करना पड़ेगा। क्या ऐसे में विली के माता-पिता विली को खुद यह अनुभव करने देंगे कि घृणा और हिंसा से उसे कितनी चोट पहुंचती है?

जब पीटर तीनेक साल का हुआ तो उसके पिता ने मुझे कहा कि वे उसे मुक्केबाजी सिखाने वाले हैं, ताकि वह दूसरों की नफ़रत का सामना कर सके। हम एक तथाकथित ईसाई दुनिया में रहते हैं जहां चांटा लगाने पर दूसरा गाल सामने करना प्रेम और उदारता का नहीं बल्कि कायरता का प्रतीक माना जाता है। ज़ाहिर है कि पीटर के पिता सही कह रहे थे। अगर हम कुछ सकारात्मककदम नहीं उठाते तो हमारे स्व-नियंत्रित बच्चे कई तरह की परेशानियों का सामना करेंगे।

शारीरिक सज़ा के बारे में आपकी क्या राय है?

शारीरिक दण्ड खराब है क्योंकि इसमें धृणा और क्रूरता शामिल है। इससे सज़ा देने वाले और पाने वाले में नफ़रत जन्मती है। यह एक अवचेतन विकृति है। धर्म भीरू इलाकों में शरीर के प्रति घृणा शारीरिक दण्ड को बड़ा लोकप्रिय बनाती है।

दरअसल शारीरिक सज़ा हमेशा ही अपनी भावनाएं दूसरों पर आरोपित करने का कृत्य होता है। सज़ा देने वाला खुद से नफरत करता है, और वही नफरत वह बच्चों की दिशा में आगे बढ़ाता है। जो मां या बाप बच्चों की ठुकाई करते है। वे खुद से नफ़रत करते हैं। यही कारण है कि वे अपने बच्चों से भी नफरत करते है। जब कोई शिक्षक बड़ी कक्षा में डंडे का इस्तेमाल करता है तो मामला नफ़रत से ज्यादा सुविधा का होता है। एक साथ ढेरों बच्चों को अनुशासित करने का यही तो आसान तरीका है। होना यह चाहिए कि ऐसी बड़ी कक्षाओं पर पाबंदी लगनी चाहिए जहां बच्चे बहुत ज्यादा हों। अगर स्कूल ऐसे हों जहां खेलने कूदने, सीखने या न सीखने की आजदी हो तो वहां धुनाई स्वत: ही बंद हो जाएगी। जिन स्कूलों में शिक्षक अपना काम ठीक से जानते समझते हैं वहां कभी भी शारीरिक सज़ा नहीं दी जाती।

क्या आप सचमें यह मानते हैं कि गलत आदतें छुड़ाने का सबसे अच्छा तरीका है उन्हें दुराचार करते रहने दिया जाए?

दुराचार? किसकी राय में दुराचार? गलत आदतें? कौन सी गलत आदतें। किसी आदत कोजबरन छुड़ाने की कोशिश उसका इलाज नहीं है। किसी भी आदत को छुड़ाने का एक ही तरीका है बच्चे को उसकी उस आदत में रुचि को जीलेने देना।

मार-पिटाई से आदतें लंबी खिंचती हैं। तथाकथित **बुरी आदते** माता-पिता की अज्ञानता और नफरता का नतीजा होती हैं।

क्या स्कूल में गलत तरीकों से पढ़ाने के असर को घर में सही पालन-पोषण से सुधारा जा सकता है?

मोटे तौर पर यह बात सही है। अगर घर में डर और सज़ा न हो तो बच्चा यह विश्वास नहीं करेगा कि स्कूल में जो कुछ होता है या कहा जाता है तो वह सच है।

माता-पिता को स्कूल में जो कमियां लगती है उनके बारे में बच्चों से बातचीत करनी चाहिएं माता-पिता अक्सर खराब से खराब शिक्षकों के प्रति भी एक बेवकूफी भरी निष्टा जताते हैं।

परी-कथाओं और सांटा क्लॉज आदि के प्रति आपका क्या नज़रिया है?

बच्चों को परी-कथाएं बेहद पसंद हैं, उन्हें समर्थन देना का यही कारण पर्याप्त है। और सांटा क्लॉज की खास चिंता करने की ज़रूरत है नहीं क्योंकि बच्चे जल्दी ही उसकी सच्चाई जान जाते हैं। मैं खुद कभी बच्चों को सांटा की सच्चाई नहीं बताता। अगर मैं यह कोशिश करूं तो हरेक चार साल का बच्चा मुझ पर हंसे।

आप रचनात्मकता को मिल्कियतसे बड़ा मानते हैं। फिर भी जब खुद कुछ बनाता है तो वह चीज उसकी मिल्कियत बन जाती है। वह उसे ज़रूरत से ज्यादा मूल्यवान समझने लगता है। इस बारे में आप क्या कहते हैं?

सच्चाई यह है कि ऐसा होता नहीं है। बच्चा जो खुद बनाता है उसे एक दिन या एक सप्ताह भर के लिए कीमती मानता है। बच्चे में स्वामित्व का भाव बहुत मजबूत नहीं होता। वह अपनीनई साइकिल बरसात में भीगते छोड़ सकता है, अपने कपड़े इधर-उधर पटक सकता है। असली मजा तो कुछ बनाने में है। एक सच्चा कलाकार कृति के समाप्त होने पर उसमें कोई रुचि नहीं लेता। रचनाकार को अपनी कलाकृति कभी बहुत पसंद नहीं आती क्योंकि उसका लक्ष्य तो श्रेष्ठता है।

आप ऐसे बच्चे का क्या करते हैं, जो किसी भी चीज में स्थाई रूप से नहीं लगता? कुछ समय वह संगीत में रुचि लेता है, तब नृत्य में फिर किसी तीसरी चीज में?

मैं कुछ नहीं करूंगा। जिंदगी इसी का नाम है। अपने समय में मैंने पहले फोटोग्राफी तब जिल्द बंधाई लकड़ी का काम और पीतल का काम किया है। जीवन हमारी छोटी-बड़ी रुचियों का मेल है। कई सालों तक मैं स्याही से रेखा चित्र बनाता रहा और तब मुझे पता चला कि मैं दसवें दर्जे का कलाकार भी नहीं हूं। और मैंने यह काम छोड़ दिया।

बच्चे की रुचियां विविध होती हैं। वह तरह-तरह कीचीजें करता है। इसी तरह वह सीखता भी है। हमारे लड़के दिनों दिन तक नावें बनाते है। पर अगर कोई विमान चालक सकूल में आ जाए तो वे अधूरी नावें छोड़ हवाई जहाज बनाने लगते है। हम कभी बच्चे को अपने कामपूरा करने का सुझाव नहीं देते। अगर उसकी रुचि ही मर गई हो तो काम खत्म करने का दबाव डालना गलत होगा।

क्या बच्चों पर कटाक्ष करना चाहिए? क्या इससे बच्चे में विनोद-प्रियता विकसित करने में मदद मिलेगी?

जी नहीं कटाक्ष और विनोद में कोई रिश्ता नहीं है। विनोद प्यार का मामला है और कटाक्ष का रिश्ता नफरता से होता है। बच्चे के प्रति कटाक्ष करने से उसमें हीन भावना जगती है। वह अपमानित महसूस करता है। बेहूदा शिक्षक या माता-पिता ही बचचे पर ताने कस सकते हैं।

मेरा बच्चा हमेशा पूछता है मैं क्या करूं क्या खेलूं? मैं क्या जवाब दूं? क्या बच्चे को खेल सुझाना गलत है?

अगर कोई बच्चे को नई और रोचक काम करने को दे तो अच्छा है। पर ज़रूरी नहीं है। जो काम वह खुदके लिएतलाशता है वही उसके लिए सबसे बढ़िया हैं। इसलिए समारहिल का कोई भी शिक्षक बच्चे को कुछ भी करने की सलाह नहीं देता। हमारे शिक्षक उन बच्चों की मदद करते हैं जो किसी चीज को कैसे किया या बनाया जाए की तकनीकी जानकारी चाहते हैं।

क्या बच्चे के प्रति अपना प्रेम जताने के लिए उपहार देने चाहिए?

नहीं। प्रेम को बाहरी प्रदर्शन की ज़रूरत नहीं होती। पर बच्चों को उनके जन्मदिन, क्रिसमस आदि पर तोहफे ज़रूर दिए जाने चाहिए। पर उससे कृतज्ञता की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

मेरा बेटा स्कूल से गोत मारता है। इस बारे में मैं क्या करूं?

मेरा अनुमान है कि उसका स्कूल उबाऊ है और आपका बच्चा सक्रिय। अमूमन स्कूल से ोते मारने का मतलब है कि स्कूल ठीक नहीं है। संभव है तो बच्चे को ऐसे स्कूल में भेजे जहां अधिक आज़ादी, रचनात्मकता और प्रेम हो।

क्या मैं बच्चे को एक गुल्लक दे बचत की अवधारणा सिखाऊं?

नहीं। बच्चे आज से आगे नहीं देख सकते। जब वह कुछ बड़ा हो जाए और कोई मंहगी चीज लेना चाहे तो वह बिना किसी के सिखाए समझाए भी पैसा बचाना सीखेगा।

मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहूंगा कि बच्चों को अपनी गति से बढ़ने देना चाहिए। कई माता-पिता इस रफ्तार को तेज करनेकी भारी गलती करते हैं। बच्चे की कभी उस काम में कोई मदद न करें जो वह खुद कर सकता हैं जब कोई नन्हीं कुर्सी पर चढ़ने की कोशिश करती है, तो स्नेहाल मां या पिता उसे झट उठा कर कुर्सी पर बिठा देते हैं। ऐसा करने के साथ वे उसकी सबसे बड़ी खुशी भी छीन लेते हैं। वह है किसी बाधा को लांघने की खुशी।

अगर कोई नो वर्षीय लड़का मेरी मेज़ कुर्सी पर कीलें ठोकना चाहे तो क्या करूं?

उससे हथौड़ा ले लें। उसे बताएं कि मेज़ कुर्सी आपकी है और उसे दूसरों की चीजों को नुकसान पहुंचाने का हक नहीं है। और अगर बच्चा फिर भी यह बंद न करे तो अपना फर्नीचर बेच दें और उस पेसे से मनोचिकित्सक के पास जाएं। ताकि वह आपको समझा सके कि आपने अपने बेटे को समस्याग्रस्त कैसे बनाया है। कोई भी प्रसन्न बच्चा फर्नीचर को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहेगा, बशर्ते घर में कीलें ठोकने के लिए दूसरी चीजें मौजूद हों। इस तरह के नुकसान को रोकनेका पहला कदम है बच्चे को लकड़ी के टुकड़े और कीलें ला देना। अगर वह फिर भी आपके फर्नीचर में कीलें ठोकना चाहे तो ज़ाहिर है कि वह आपको नापसंद करता है आपको नाराज़ करना चाहता है।

जिद्दी और मुंह फुलाये रहने वाले बच्चे का क्या किया जाए?

मैं नहीं जानता। समरहिल में ऐसे नमूने दिखते ही नहीं। जब बच्चे आज़ाद हों तो जिद का मौका नहीं आता। बच्चों में नज़र आने वाली ढिठाई। की जिम्मेदारी हमेशा वयस्कों की होती है। अगर आपका नज़रिया बच्चों के प्रति प्रेम का है तो आप जो चाहे करें वह जिद्दी नहीं बनेगा। जिद्दी बच्चों की हमेशा कोई न कोई शिकायत होती हैं जिद की स्थिति में मेरा काम होगा उसकी शिकायत की जड़ें तलाशना। मेरा अनुमान है कि तहकीकात करने पर पता यह चलेगा कि उसे लगता यह है कि उसके साथ अन्याय हुआ है।

मैं अपने छह साल के बच्चे का क्या करूं जो अश्लील चित्र बनाता है?

उसे ऐसा करने दें। पर साथ ही अपने घर की सफाई करें। क्योंकि अगर घर में कही अश्लीलता है तो उसके स्त्रोत आप स्वयं हैं। किसी भी छह साल के बच्चे में स्वाभाविक अश्लीलता नहीं होती। उसके चित्रों में अगर आपको अशलीलता नज़र आती है तो दरअसल यह आपकी ही अश्लील जीवन दृष्टि की है। मेरा अनुमान है कि जिसे आप अश्लील चित्र कह रहें हैं उसका ताल्लुक परवाने जाने या गुप्तांगों के चित्रण से होगा। बच्चे को आप अच्छे-बुरे का विचार थोपे बिना, स्वाभावकि मान कर ऐसा करने दें। यह बचकानी और अस्थाई रुचि है, जैसी तमाम अन्य बचकानी रुचियां होती हैं। वह इस दौर से जल्दी ही बाहर निकल जाएगा।

मेरा नन्हा इतना झूठ क्यों बोलता है?

संभव है वह अपने माता-पिता की ही नकल कर रहा है। अगर पांच और सात साल के भाई-बहन लगातार झगड़ते रहें तो उन्हें रोकने का क्या रास्ता अपनाऊं? वैसे वे एक दूसरे से बहुत प्यार भी करते हैं।

सचमें? क्या एक को मां का प्यार दूसरे की तुलना में ज्यादा तो नहीं मिल रहा? क्या वे मां-पापा की नकल तो नहीं कर रहे? क्या उनके मनमें अपने शरीर को लेकर किसी किस्म का अपराध-बोध तो नहीं है? क्या उन्हें सज़ा दी जाती है? अगर इन तामाम सवालों का जवाब नकारात्मक है, तो यह लड़ाई - झगड़ा अपनी सत्ता जमाने की स्वाभाविक लड़ाई है।

पर भाई-बहन को ऐस बच्चों के साथभी रहना चाहिए जिनके प्रति उनका भावनात्मक जुड़ाव नही है। बच्चे को खुद की दूसरों से

तुलना करने का मौका मिलना ही चाहिए। वह खुद का आकलन अपने भाइयों या बहनों को मानदण्ड मानकर नहीं कर सकता। ऐसा करने पर तमाम तरह के भावनात्मक घटक भी उस रिश्ते में जुड़े जाते है। जैसे जलन, पक्षपात आदि।

अपने बच्चे को अंगूठा चूसने से कैसे रोकूं?

कोशिश भी न करें। अगर आप सफल होते हैं तो तो आप उसे अंगूठा चूसने के पहले की स्थिति में धकेल चुके होंगे। इससे फर्क कया पड़ता है? तमाम कार्यकुशल लोग एक समय अंगूठा चूसा करते थे।

अंगूठा चूसना इस बात का संकेत है कि बच्चे की स्तनपान में रुचि अब तक समाप्त नहीं हुई है। ज़ाहिर है कि किसी आठ साल के बच्चे को आप स्तनपान तो नहीं करा सकते। आपको उसकी रचनात्मक रुचि को बांधने वाले तमाम रास्ते सुझाने होंगे। पर ज़रूरी नहीं है कि इससे यह आदत छूट ही जाएं मेरे यहां कई बेहद रचनात्मक छात्र रहे हैं जो परिपक्व बनने की उम्र तक अंगूठा चूसते रहे। इस बात पर बच्चे को न ठोकें।

मेरा दो साल का बच्चा हमेशा खिलौने क्यों तोड़ता है?

शायद इसलिए क्योंकि वह समझदार है। खिलौने अमूमन बिल्कुल रचनात्मक नहीं होते। उसे तोड़कर वह यह जानना चाहता है कि उसके अंदर क्या है?

पर मैं पूरी स्थिति से वाकिफ भी नहीं हूं। अगर बच्चे को मार-पीट कर, उसे अच्छे-बुरे के उपदेश देकर अगर खुद से नफरत करने वाला बच्चा बनाया जा रहा है तो यह बिलकुल स्वाभाविक है कि उसके सामने जो कुछ आएगा वह उसे ज़रूर जोड़ेगा।

बच्चा अगर बहुत फैलावड़ा करता है तो उसे कैसे सुधारा जाए?

इसे सुधारना क्यों ज़रूरी है? अधिकांश रचनात्मक लोग सफाई पंसद नहीं होते अमूमन जो लोग नीरस और निरुत्साही होते हैं उनके ही कमरे चकाचक साफ होते हैं। वे सफाई के आदर्श सामने रखते हैं। मैने पाया है कि सामान्यत: नौ साल तक के बच्चे सफाई से रहते है। नौ से पंद्रह साल की उम्र में वे ही बच्चे सब कुछ फैलाते हैं। इस उम्र के लड़के लड़कियों को गंदगी और फैलावड़ा नज़र ही नहीं आता। इस दौरको पार करने के बाद वे फिर से सफाई पसंद बन जाते है।

हमारा बारह साल का बेटा खाने की मेज़ पर आने के पहले हाथ मुंह नहीं धोता। हम क्या करें?

साफ-सफाई पर इतना महत्व देने की क्या ज़रूरत है? क्या आपने कभी यह भी सोचा है बार-बार हाथ -मुंह धोना भी किसी बात का प्रतीक हो सकता हे? कहीं ऐसा तो नहीं कि उसके साफ रहने के प्रति आपका सरोकार इस वजह से हो कि आप उसे नैतिक रूप से गंदा मान रहे हैं? बच्चे के पीछे न पड़ें। मेरी बात पर विश्वास करें कि गंदगी को लेकर यह ग्रंथि व्यक्तिगत रुचि पर आधारित होती है। अगर आप खुद को गंदा महसूस करते हैं तभी बाहरी सफाई पर इतना ज़ोर डालने की वृत्ति बनती है। अगर यह ज़रूरी हो कि जब वह खाने की मेज़ पर साफ़ चिकना बन कर ही आए मेरा मतलब है कि कोई बुआ या चाची के साथ खाने बैठना हो जो आपके बेटे को अपनी वारिस बनाने वाली हों तो सबसे अच्छा तरीका होगा कि हाथ-मुंह धाने पर बंदिश लगा दें।

हम अपने पंद्रह महीने के बच्चे को चूल्हे से दूर कैसे रखें?

चुल्हे के सामने आड़ लगाएं। पर उसे उसकी सच्चाई भी जान लेने दें, उसकी अंगुलियां अगर हल्के से जलेंगी तो वह दूर रहना सीख जाएगा।

मैं अपनी बेटी को जरा भी टोकू तो आप कहेंगे कि मैं उससे नफ़रत करती हूं, पर ऐसा मैं नहीं करती।

शायद आप खुद से नफरत करती हों। छोटी-छोटी चीजें बड़ी बातों का प्रतीक होती हैं। अगर आपको छोटी बातों पर शिकायत करने की ज़रूरत लगती है तो आप ज़रूर दुखी महिला होंगी।

बच्चों को किस उम्र में शराब पीने की छूट देनी चाहिए?

इस बारे में मैं खुद अनिश्चित हूं, शराब को लेकर मेरी एक निजी ग्रंथि है। मुझे खुद बीयर पसंद है कभी कभार व्हिस्की भी लेता हूं। मुझे दूसरी तरह की शराबें भी पसंद हैं। इसलिए मैं पूर्ण नशाबंदी का समर्थक तो नहीं हूं। फिर भी मैं शराब से डरता हूं। अपनी जवानी में मैंने शराब की तबाही ज़रूर देखी है। यही कारण है कि मैं बच्चों को शराब देना पसंद नहीं करता।

मेरी बिटिया ने छुटपन में मेरी बियर और व्हिस्की में रुचि दिखाई। मैंने उसे घूंट भरने दिए। बीयर का धूंट ले उसने मुंह बिचकाया और कहा 'बड़ा खराब स्वाद है।' पर व्हिस्की के बाद कहा 'बढ़िया' पर और नहीं मांगी। डेनमार्क में मैंने स्व-निर्देशित बच्चों को एक बार स्थानीय शराब मांगते देखा। उन्हें एक-एक गिलास शराब दी गई। उन्हें आखिरी बूंद तक पी डाली पर आगे नहीं मांगी। मुझे एक किसान की याद आती है वह ठंड बरसाती दिनों में अपने बच्चों को लेने एक खुली घोड़ा गाड़ी में आया करता था। वह अपने साथ व्हिस्की की बोतल रखता था। हरेक बच्चे को एक-एक घूंट पिलाता था। मेरे पिता यह देख भविष्यवाणी करते थे 'देखना सब के सब बाद में दारूड़िए बनेंगे।' बड़े होने पर उनमें से एक भी शराब को हाथ नहीं लगता था।

देर-सबेर सभी बच्चों के सामने शराब का सवाल उठता है। केवल वे ही लोग शराबी बनते हैं जो अपने जीवन से निपट नहीं पाते। हमारे पूर्व छात्र जब भी समरहिल आते हैं, सथानीय पब (शराबखाने) में जाकर हमेशा हम प्याला बनते हैं। पर आज तक मैंने नहीं सुना कि उनमें से एक ने भी ज्यादा पी ली हो।

बिल्कुल अतार्किक होते हुए भी मै स्कूल में शराब की अनुमति नहीं देता। ज़ाहिर है कि कुछ लोग कहेंगे कि बच्चों को खुद शराब का अनुभव भी लेने देना चाहिए।

जो बच्चे नहीं खाते उनका आप क्या करते हैं?

पता नहीं। ऐसा कोई बच्चा समरहिल तो आया नहीं। पर अगर कोई ऐसा करता तो मैं समझता कि बच्चा अपने मां-बाप के अपनी ढिठाई जताना चाहता है। कुछ बच्चे इसलिए समरहिल भेजे ज़रूर गए थे कि वे खाना नहीं खाते। पर यहां उन्होंने फाके नहीं किए।

कुछ पेचीदा मामलों में इस संभावना पर भी शायद विचार करूं कि कहीं बच्चा भावनात्मक रूप से अभी भी स्तनपान के स्तर पर तो नहीं है। और ऐसा लगे तो मैं बोतल से दूघ पिलाने का सुझाव दूगां। मुझे यह भी लगेगा कि शायद मां-बाप खाने-पीने के मामले में बच्चे के पीछे पड़ते होंगे। संभव है कि उसे जो नापसंद हो वह खाने पर बच्चे को मजबूर किया गया हो।

धर्म के विषय पर

आप धार्मिक शिखा के विरुद्ध क्यों हैं?

बच्चों के साथ काम करने के लंबे अनुभव में मैंने पाया है कि जिन बच्चों में मनोरोग के लक्षण नज़र आते हैं उनको कठोर धार्मिक वातावरण में पाला-पोसा गया है। कठोर धार्मिक पालन-पोषण यौन भावनाओं को अनावश्यक महत्व देता है।

धार्मिक शिक्षा बालमानस पर इसलिए नुकसान पहुंचाती है क्योंकि अधिकांश धार्मिक लोग मूल पाप के विचार को स्वीकार करते हैं। यहूदी और ईसाई धर्म में शरीर के प्रति नफ़रत का नज़रिया हावी है। परंपरागत ईसाई धम्र बच्चे के मन में स्वयं के प्रति एक असंतोष का भाव भरता हैं स्कॉटलैण्ड में, जहां मेरा बचपन बीता कम उम्र से ही मैं नरक की आग के खतरे से डरता था।

एक बार एक मध्यवर्गीय परिवार का नौ साल का लड़का समरहिल आया। उसके साथ मेरी जो बात चीत हुई वह कुछ यूं थी :

'खुदा कौन है?'

'यह नहीं पता। पर अगर कोई अच्छा बच्चा बने तो वह स्वर्ग जाता है और खराब हो तो नरक।'

'नरक कैसी जगह?'

'बिल्कुल अंधेरी। वहां शैतान है। शैतान बहुत खराब है।'

'अच्छा और नरक में कौन जाता है?'

'खराब लोग जो गालियां बकें या लोगों का खून करे।'

बच्चों को इस तरह की बेवकूफी भरी बातें सिखाने से हम कब बाज आएंगे। गाली गलौज और खून क्या बराबर से गुनाह हैं जिसकी ऐसी सज़ा हमें मिलेगी ही?

जब मैंने उस बच्चे से कहा कि वह खुदा का वर्णन करे तो उसने बताया कि उसे यह पता ही नहीं कि खुदा होता कैसा है। पर वह खुदा से प्यार ज़रूर करता है। उसने यह कहा कि वह खुदा से प्यार करता है, ऐसे खुदा से जिसका वह न तो वर्णन कर सका, न जिसे उसने कभी देखा था। ज़ाहिर है कि वह केवल सुनी-सुनाई बात कर रहा था। सच्चाई यह है कि वह खुदा से खौफ़ खाता है।

क्या आप ईसा मसीह में विश्वास करते हैं?

कुछ साल पहले समरहिल में एक गृहस्थ पादरी का बच्चा दाखिल हुआ। इतवार की रात जब हम सब नाच गाना कर रहे थे, पादरी ने सिर हिलाते हुए कहा 'नील इतनी खूबसूरत जगह है आपकी पर आप सब काफिरों के समान क्यों हैं?'

मेरा जवाब था 'पादरी साब आप उम्र भर साबुन के खाली डिब्बों पर खड़े होकर लोगों को यह उपदेश देते रहे हैं कि उनका उद्धार कैसे होगा। मुक्ति की बात करते हैं। हम मुक्ति में जीते हैं।'

जी नहीं, हम ज़ाहिराना तौर पर इसाई धर्म का पालन नहीं करते। पर अगर व्यापक दृष्टि से देखें तो समूचे इंग्लैण्ड में शायद समरहिल ही अकेला स्कूल है जो बच्चें से ऐसा व्यवहार करता है, ईसामसीह जिसकी तारीफ करतें दक्षिण अफ्रीका के कैल्विनिस्ट संप्रदाय के पादरी अपने बच्चों को पीटते हैं। ठीक उसी तरह रोमन कैथोलिक संप्रदाय के पादरी बच्चों को पीटते है। हम समरहिल में बच्चों को प्यार और प्रशंसा देते हैं।

बच्चों को खुदा के बारे में पहले विचार कैसे दिए जाएं?

खुदा है कौन? मैं तो जानता नहीं। ईश्वर का मतलब मेरी नज़र में है हम सबमें बसी अच्छाईयां। अगर आप किसी ऐसी चीज के बारे में बच्चों को बताते हैं, जिसके बारे में आप खुद भी अस्पष्ट हैं तो आप उसे फायदा नहीं नुकसान पहुंचा रहे होंगे।

.....